भगवत्कृपाके अनुभव

तुलसीदास के पहरेदार

सम्पादक – हनुमानप्रसाद पोद्दार

भगवत्कृपाके अनुभव

सम्पादक

हनुमानप्रसाद पोद्दार

विषय सूची

श्रीहरिः

भगवत्कृपाके अनुभव

श्रद्धाका चमत्कार

जब कभी मुझे स्वर्गवासी रायबहादुर नागरजी (केन्द्रीय सरकारके अपने समयके एक बड़े अफसर) के यहाँ जानेका मौका मिलता था, तब उनके जीवनके अनेक अद्भुत अनुभव तथा उनके उत्तम और बुद्धिमय उपदेश तथा विचारोंकी परंपरा जाननेका अमूल्य अवसर प्राप्त होता था। ईश्वरकी दृढ़ भक्ति और विश्वास उनके जीवनका मुख्य ध्येय था।

एक समय मैं उनके घर (जलालपुर, सूरत जिलेका एक गाँव) गया था। बातचीतके सिलसिलेमें उनके टेबलपर पड़ा हुआ एक लिफाफा मेरे देखनेमें आया। पत्र सुबहकी डाकसे आया था और वह उत्तरप्रदेशके अवकाश प्राप्त सरकारी रसायन-अन्वेषक (Chemical Analyser) श्रीचटर्जी नामक नामक एक बंगाली सज्जनका लिखा हुआ था। रायबहादुरने कहा कि 'पत्र पढ़ो और इससे क्या सूचित होता है उसका निर्देश करो।' पढ़नेके बाद मैंने कहा, 'दादा! यह आदमी आपको बड़े प्रेम और अनुभूतिके साथ पत्र लिखता है। मालूम पड़ता है कि आपने इसके लिये बड़ा काम किया था और यह आभार प्रदर्शन करना अपना कर्तव्य समझता है और उसके बोझसे अपनेको सदा दबा पाता है। आप इसके लिये सदा स्मरणीय हैं।' रायबहादुर सस्मित बोले, 'तुम्हारी कल्पना बिल्कुल ठीक है। चटर्जी साहब बड़े प्रेमी हैं और वे सदा ऐसी ही चिट्ठी लिखते हैं। वे समझते हैं कि मैंने उनको उपकृत किया है और पथ-प्रदर्शनका काम किया है। पर मैंने कुछ नहीं किया। करनेवाले

भगवान् हैं। मनुष्य तो निमित्तमात्र है। आज-कल लोग श्रद्धा और भक्ति-जैसी शक्तिमयी साधन-सामग्रियोंको विश्वासकी दृष्टिसे नहीं देखते हैं और महान् साधकों और भक्तोंकी जीवनीको उपहासकी नजरसे देखते हैं, पर इस मनुष्यका इतिहास, श्रद्धा और प्रेम सदा सत्य और सनातन है तथा महान् कार्य करनेकी क्षमता रखते हैं उसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। सुनो—

जब मैं १९१२–१९१६ में पूसा (जिला दरभंगा, बिहार) स्थित केन्द्रीय सरकारकी कृषिशालाके अध्यक्षका मुख्य सलाहकार (Personal assistant) था, तब वहाँकी रसायनशालाके अधिष्ठाता डाक्टर लेदर (Dr. Leather) की अधीनतामें एक चटर्जी नामक बंगाली सज्जन काम करते थे। लेदर साहब बड़े विद्वान् और कार्यदक्ष थे, पर स्वभावमें दुर्वासाके ही अवतार थे और उनका कोपभाजन बननेका अवसर सदा सभी कार्यकर्ताओंको प्राप्त होता था, पर उनमें मुख्य चटर्जी ही होते थे। अनेक युक्तियों और परिश्रम करनेपर भी वे साहबको प्रसन्न नहीं कर सके और उनको ऐसा प्रतीत हुआ कि शायद यह वैर पूर्वजन्मसे चला आता हो। परिस्थिति सम्भलनेके कोई लक्षण नहीं दीख पड़ते थे और ऐसी विकट हालतमें उनको ऐसा विश्वास हो गया कि पानीमें रहकर मगरसे वैर रखनेकी अपेक्षा छोड़कर चला जाना ही ठीक होगा और वे इसके लिये अवसर ढूँढ़ने लगे। परिवार बड़ा था इसलिये जल्दी करना भी ठीक नहीं था। साहब तो कोई भी बहाना ढूँढ़कर उनको सतानेका अवसर नहीं चूकते थे और यही चाहते थे कि किसी तरह यह आदमी छोड़कर चला जाय तो अच्छा हो। थोड़े ही दिनोंमें यह समस्या स्वयं उपस्थित हो गयी।

संयोगसे चटर्जी महोदयके एकाकी पुत्रने टाइफाइडकी कठिन बीमारी लेकर पिताकी समस्याको चरम सीमापर पहुँचा दिया। उसकी सेवा-शुश्रुषामें रत रहनेके कारण आफिस जानेमें बारंबार देर होती थी और वह अग्निमें घीकी आहुतिका काम करती थी। साहबकी नाराजगी बहुत बढ़ गयी और चटर्जी बारंबार तिरस्कृत और अपमानित होने लगे। भगवान् ही अब त्राण करें तो हो सकता है—ऐसा उनको पग-पग पर लगने लगा। एक दिन पुत्रकी अवस्था अपेक्षाकृत खराब

थी और वे उत्कण्ठापूर्वक डाक्टरकी राह देखने लगे। ऑफिसका समय हो रहा था, पर एकाकी पुत्रको ऐसी दशामें छोड़कर जानेको उनका मन नहीं कर रहा था। डाक्टर आये और गये और जब वे दफ्तर पहुँचे, एक घंटा समय बीत गया था। आज जरूर कोई अनिष्ट होनेवाला है ऐसी आशङ्का उनके दिलमें होने लगी। दफ्तर पहुँचते ही उन्होंने देखा कि साहब अग्निशर्मा बनकर उनके टेबलके पास ही खड़े थे और उनको देखते ही व्याघ्र-गर्जना करते हुए बोले, 'मि० चटर्जी! नियम-भङ्ग और समय पालनकी उपेक्षाके कारण मैं आपको थोड़े दिनोंके लिये नौकरीपरसे हटा रहा हूँ। आप हमेशा देर करते रहते हैं, पर आज तो आपने हद कर दी। यह किसी तरहसे बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। पढ़ा-लिखा आदमी इतना बेसमझ और मन्दबुद्धि हो सकता है, यह मुझे भारत-हीमें देखनेको मिला।'

अपमानसे काँपते हुए चटर्जी बोले, 'साहब! मेरा कोई अपराध नहीं। आज पंद्रह दिनोंसे मेरा लड़का टाइफाइडकी भयंकर बीमारीसे छटपटा रहा है। आज उसकी हालत गम्भीर है। सेवामें दूसरा कोई नहीं था। इसलिये अनिच्छा होते हुए भी डाक्टरके आनेकी राह देखकर मुझे बैठना पड़ा और इसी कारण देर हो गयी। डाक्टर आज कुछ देर करके आये। आप ही कहिये, ऐसी विषम परिस्थितिमें मेरे लिये और क्या चारा था। मेरे अपराधकी ओर नहीं, पर मेरे बच्चोंकी ओर देखिये और ऐसा कठोर दण्ड नहीं दीजिये। मैं आपका तुच्छ सेवक हूँ।' वे आगे बोल न सके और उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया।

साहब ऐसा स्वर्ण-अवसर क्यों चूकने लगे। 'खानगी कामके कारण सरकारी काम रुक नहीं सकता। मेरा निर्णय बदल नहीं सकता। खैर मनाओ कि मैंने तुम्हें नौकरीसे निकाल नहीं दिया। थोड़े महीनोंके लिये हटाये गये हो। भविष्यमें यदि ऐसा हुआ तो फिर नौकरी गयी समझो' कहते-कहते साहब वहाँसे चले गये। अपमान और भर्त्सनाने चटर्जीको बेहाल कर दिया। थोड़े समयके लिये पदच्युत (suspend) होना यह लाञ्छनाका विषय है और सभी सरकारी कर्मचारी जानते हैं। यह तो जिंदगीभरके लिये धब्बा हो गया और ऐसी हालतमें त्यागपत्र देना ही ठीक होगा, यह निश्चित कर उन्होंने

फौरन त्यागपत्र लिखकर दे दिया। साहब तो यही चाहते थे और उन्होंने तुरंत स्वीकार कर लिया।

जब मैंने दफ्तरमें चटर्जीजीके दुस्साहसकी बात सुनी, तब मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कोई भी काम करनेके पूर्व मेरी सलाह लिया करते थे और मेरी रायके बिना कोई भी काम करना उचित नहीं समझते थे। ऐसा अविचारी काम उतावलीमें करनेके कारण मैंने उनको बुलवा भेजा। वे तो त्यागपत्र देकर स्वयं ही मेरे आफिसमें आ रहे थे। मैंने उनको स्निग्ध स्वरमें उपालम्भ देते हुए कहा, 'यह क्या कर डाला? अब क्या होगा तुम्हारा और परिवारका देवेन बाबू! (चटर्जीका नाम) मेरी सलाहके बिना ऐसा करना उचित नहीं था।' वे लगे क्षमा माँगने और कहने लगे, 'दादा! रोज-रोजके झगड़ेसे मैं ऊब गया था। बिना नौकरी बैठा रहना पड़े वह ठीक है मगर इस प्रकारके जीवनसे मैं छुटकारा पाना चाहता था। यह ब्रह्मपाश था। आज मैंने तोड़ डाला। यह सब इतनी जल्दी हो गया कि मैं आपसे पूछ भी न सका। दादा! आपका स्नेहार्द्र स्वभाव मुझे क्षमा करेगा ही, यह मैं जानता हूँ। अब मैं मथुरा जाऊँगा। वहाँ मेरे दूरके सम्बन्धी हैं। उनके यहाँ रहूँगा और दूसरी नौकरी ढूँढ़नेकी चेष्टा करूँगा। मुझे वृन्दावनविहारी श्रीकृष्ण भगवान्‌में अपार श्रद्धा है। वे मुझे भूखों मरने नहीं देंगे।'

मैंने कहा, 'तुम्हें मेरा एक कहना मानना होगा।' वे बोले, 'दादा! आपकी सौ बातें मैं माननेको तैयार हूँ। आपकी स्नेहमयी छत्रछायाके कारण ही मैं यहाँ प्रतिकूल स्थितिमें इतने दिनोंतक रह सका, अन्यथा कबका चला गया होता। आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। कहिये।'

'तो आपको रोज-मथुरा-निवासके समय श्रीद्वारकाधीशके मन्दिरमें जाना पड़ेगा। भगवान्‌की मूर्तिका भाव-निरीक्षण करना और जैसा हो वैसा मुझे लिखना, आपका कर्तव्य रहेगा। उनकी भाव-भंगिमा ही भविष्यकी सूचना देगी। जाओ; परमात्मा सबका मालिक है। घबरानेकी कोई बात नहीं।' 'मैं तो स्वयं ही प्रतिदिन द्वारकाधीशका दर्शन करनेवाला था। यह आपका आदेश मैं अवश्य पालन करूँगा' यह कहकर चटर्जी सपरिवार मथुरा चले गये।

वहाँ पहुँचकर वे प्रतिदिन पत्र लिखने लगे। हरेक पत्रमें भगवान्‌की भाव-भंगिमाओंका वर्णन रहता। 'आज परमात्माकी मुखाकृति गम्भीर थी' 'आज मूर्ति उदास थी' 'आज मूर्ति खिन्न थी' और 'आज वह अन्यमनस्क थी!' इत्यादि। मैं उन्हें उत्साहित करता था कि 'जल्दी ही कोई चमत्कार होगा। घबरानेकी जरूरत नहीं। भगवान्‌में श्रद्धा अविचल रखिये।' एकाएक पंद्रहवें दिन पत्र आया, 'आज मूर्ति मेरी ओर देखकर मन्द-मन्द मुसकरा रही थी। मैं आत्मविभोर हो गया। कुछ क्षण मैं अवाक् खड़ा रहा।'

मैंने प्रत्युत्तर दिया, 'भगवान्‌ने भक्ति स्वीकार की है। एक हफ्तेमें तुम्हें नौकरी जरूर मिलेगी। द्वारकाधीश अब प्रसन्न हैं।' ठीक छठे दिन उनको उत्तरप्रदेशके रसायन-अन्वेषककी जगह मिल गयी जो चार सौ रुपयेसे प्रारम्भ होती थी! चटर्जी विस्मयमुग्ध हो गये। उन्हें सब स्वप्नवत लगा। डेढ़ सौ रुपयेके पदपर रहकर जो साहबद्वारा बार-बार अपमानित होता था उसे एकदम चार सौकी नौकरी मिली! यह चमत्कार नहीं तो और क्या था। करुणावरुणालय परमात्मा तो सदा भक्तवत्सल हैं ही, केवल दृढ़ विश्वास चाहिये। चटर्जीने मुझे लिखा, 'दादा! यह सब आपका ही प्रताप है। भगवान् आपकी वजहसे मेरेपर प्रसन्न हैं। मैं तुच्छ प्राणी वृन्दावनविहारीके अनुग्रहका पात्र होने लायक नहीं हूँ। मेरी परमात्माके प्रति आस्था दृढ़तर हो गयी है। इस आशातीत सफलताके लिये मैं आपका सदैव अनुगृहीत रहूँगा।'

रायबहादुर कहने लगे कि इस घटनाके बाद चटर्जीकी मेरे प्रति ममता बढ़ गयी है। महीनेमें उनकी दो चिट्ठियाँ जरूर आती हैं। मैं जवाब दूँ या न दूँ! किया तो परमात्माने परंतु चटर्जी श्रेय मुझे भी देते हैं। भगवान्‌ने निमित्त बनानेके लिये शायद मुझे प्रेरणा दी थी।

मैंने उत्तर दिया, 'करते तो भगवान् ही सब कुछ हैं, परंतु वे तो निष्काम ठहरे इसलिये किसीको निमित्त बनाते ही हैं। लोग निमित्तको ही कारण समझ बैठते हैं। रहीमने कहा भी है—

देनहार भगवान हैं, देते हैं दिन रैन।
लोग भरम मुझ पर धरैं, याते नीचे नैन॥

भगवान्‌की लीला अपरम्पार है।

रायबहादुर स्निग्ध कण्ठसे बोले, 'श्रद्धाकी महिमा अपार है।

आशाको श्रद्धा अमरत्व प्रदान कर भक्तिके आवरणसे ओतप्रोत करती है। यह आशा ही कलियुगमें भक्तिका वेष पहनकर श्रद्धारूपी पुष्पाञ्जलिसे परमात्माको प्रसन्न करनेकी कोशिशमें रहती है। शास्त्र भी कहते हैं—

'या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।'

देवी सर्वभूतोंमें श्रद्धारूपमें रहती है।

रायबहादुरका दीर्घायुके बाद थोड़े दिन हुए स्वर्गवास हो गया। श्रीदेवेन चटर्जी अभी जीवित हैं और हरिभक्तिमें काल-यापन करते हैं।

(कल्याण वर्ष २९/३/९२०, श्रीअमृतांशु देसाई)

****

दैवी घटना

आजके इस नास्तिक युगमें लोगोंकी परम पिता परमात्माके प्रति श्रद्धा और विश्वास घटता जा रहा है। धर्म और प्रभु अधिकांश लोगोंके लिये जैसे कुछ रह ही नहीं गये हैं; लेकिन उनका विचार निर्मूल है। परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है और समय-समयपर अपना चमत्कार दिखाकर ऐसी विचित्र-विचित्र घटनाएँ दर्शा देता है जिससे दाँतों-तले उँगली दबाकर आखिर उसको किसी-न-किसी रूपमें मानना ही पड़ता है। नीचे हम सच्ची कुछ घटनाओंका उल्लेख करते हैं, जिनसे प्रभु और उसकी आश्चर्यजनक लीलापर चकित होना पड़ता है।

(१)

अभी बिहारके एक गाँवकी घटना है, एक किसानकी पत्नीने अपने पतिकी अनुपस्थितिमें अपने छोटे सौतेले बेटेको मारकर उसके कलेजेका मांस पकाया और पतिके आनेपर थालमें उसे परोसा। पतिदेवने ज्यों ही खानेके लिये हाथ लगाया, त्यों ही ठीक ऊपरसे एक छिपकली थालीपर गिरकर अन्यत्र निकल गयी। इससे उसके चित्तमें कुछ क्षणिक शङ्का पैदा हुई, पर देहाती लोग इतना विचार नहीं करते। फिर उसने दो मिनट बाद ज्यों ही खानेके लिये हाथ बढ़ाना चाहा, तत्क्षण एक काला साँप फुफकारता हुआ उस थालीपरसे गुजरकर सामने पुआलमें कहीं घुस गया। अब तो कृषक बहुत

ही क्रुद्ध होकर बल्लम लेकर साँपको ढूँढ़ने लगा। दैवी गति देखिये, साँपका तो कहीं पता नहीं लगा, पर उसी पुआलके ढेरमें उसे अपने पुत्रके कटे हुए अङ्ग मिले। यह देख वह यह भाँप गया कि यह सारी करतूत उसकी पत्नीकी है जो कि अपने सौतेले बेटेसे बराबर ईर्ष्या-डाह रखती थी। आखिर कृषकने हल्ला-गुल्ला मचाया जिससे आस-पास पड़ोसके लोग इकट्ठा हो गये और कृषक-पत्नीको सबके सामने मानना पड़ा कि वह नृशंस कार्य उसका ही है। देखिये, प्रभुकी लीला! साँप और छिपकली भेजकर किसानकी पत्नीका सारा भंडाफोड़ कर दिया।

(२)

वह घटना मेरे शहर मिरजापुर जिलेके एक समीपवर्ती गाँवकी है। एक चमार बंबईमें मजदूरी करके कुछ कमाई कर रातके समय अपने गाँव आया और चूँकि रातका समय था अतः उसने रात अपने गाँवके रेलवे स्टेशनपर अपनी बहिनके यहाँ काटनेकी ठानी। उसकी बहन और उसका पति वहीं स्टेशनमें नौकरी करते थे।

रुपयेकी गठरी देखकर स्त्रीकी नीयत बदल गयी। उसने अपने भाईके सोनेके लिये समीप ही एक अलग खाटका इन्तजाम किया और अपने पतिके लिये दूर दूसरी खाटकी व्यवस्था की।

मध्य रात्रि होनेपर वह उठी तथा छुरा लेकर समीप खाटपर सोनेवाले व्यक्तिका खून कर दिया और रुपयेकी थैली पीसे निकालकर अपने पास रख ली तथा अपने इरादेमें प्रसन्न होकर सुबह होनेका इंतजार करने लगी।

सुबह होनेपर जो उसने काण्ड देखा तो उसके होश उड़ गये और वह रुदन करने लगी। समीपवाली खटिया जो उसने भाईके सोनेके लिये तैयार की थी उसपर उसका भाई न सोकर संयोगवश पति ही सोया था, जिसे अन्धकारमें धोखेसे अपना भाई समझकर मार डाला। रुदन सुनकर भाईकी आँख खुली और वह सारा काण्ड समझ गया। उसने रुपयेकी थैली भी बहिनसे ले ली तथा उसे अपनी नीच करतूतका फल मिल गया। यद्यपि भाईको उसने अपने समीप ही सोनेके लिये कहा था फिर भी भाई दैवी प्रेरणाके अनुसार दूर पड़ी खटियापर सो गया। विवश हो पतिको

समीपवाली खटियापर सोना पड़ा; क्योंकि पतिदेवको अपनी स्त्रीकी कुचेष्टाका कोई आभास न था। दैवी गति देखिये, स्त्रीको दूसरेके लिये गड्ढा खोदकर गिरानेमें खुद ही गिर जाना पड़ा।

(३)

गोरखपुरका समाचार था कि एक पूर्णरूपेण अपंग व्यक्ति जो न तो खड़ा हो सकता था और न चल सकता था, इस जिलेमें सिसवां बाजारके एक ग्रामके एक मन्दिरमें रात्रिको सोते समय आश्चर्यजनक रूपसे चंगा हो गया।

उस अपंगका नाम रघुनाथ कोयरी है और वह चम्पारन जिलेके नरईपुरका निवासी है। वह किसी प्रकारसे ३० अगस्तको खड्डासे सिसवाँ आनेवाली ट्रेनमें चढ़ गया। संध्या-समय गाड़ी बाहरी सिगनलके पास रुक गयी, गार्डको उसका पता चल गया और वह उतार दिया गया। उस समय पानी बरस रहा था। वह किसी प्रकार सवाया ग्रामतक पहुँच गया और कुछ भीख लोगोंसे प्राप्तकर पासके एक मन्दिरमें आश्रयके लिये चला गया। भींगा और थका हुआ होनेके कारण उसे शीघ्र निद्रा आ गयी।

स्वप्नमें उसे एक स्त्री और एक पुरुष दिखायी दिये। उन्होंने उससे उठ खड़े होनेके लिये कहा। उसने ऐसा करनेसे इनकार कर दिया; क्योंकि वह एकदम अशक्त था। उन्होंने कहा कि वह पूर्णरूपेण चंगा है, अतः वह खड़ा हो जाय। वह जाग पड़ा और यह देखकर उसे आश्चर्य हुआ कि वह पूर्णरूपेण स्वस्थ हो गया है और चल सकता है। उसने उन दोनोंकी तलाश की पर उनका कोई पता नहीं चला। आसपासके गाँवोंके लोग उक्त मन्दिरको जहाँ यह घटना हुई, देखनेके लिये एकत्र हुए।

(४)

सीतामढ़ीकी कोटबाजार मुहल्लेमें नवनिर्मित राममन्दिरमें भगवान्‌की मूर्तिका छत्र दस नवम्बर १९५४ से हिलता रहा और कई दिनोंतक हिलता रहा। जिससे लोगोंने आश्चर्य प्रकट किया है। बताया जाता है कि भगवान् रामकी मूर्तिका छत्र तो शान्त रहा; किंतु लक्ष्मणजी एवं सीताजीका छत्र जोरोंसे हिल रहा था। इससे अतिरिक्त पासकी एक फूसकी झोंपड़ीकी भी छत हिल रही थी।

(५)

रोसड़ा थानेके अन्तर्गत बाघोपुरके निकट भड़रिया गाँवके एक घरमें सेंध लगाते समय एक चोरकी विचित्र ढंगसे मृत्यु हो गयी। यह दरभंगाके पास है।

जब वह सेंध लगाकर घरमें घुस रहा था कि दीवाल बैठ गयी जिससे चोर दबकर मर गया। दीवालके धँसनेकी आवाज सुनकर लोग वहाँ आ धमके तथा चोरको उसके नीचे दबा हुआ पाकर उसकी सूचना पुलिसको दे दी और बादमें वह लाश निकाली गयी।

(६)

अभी हालमें ही हैदराबाद राज्यके मेंडव जिलेमें लिंगपुर गाँवमें एक अत्यन्त रोमाञ्चकारी और चमत्कारी आश्चर्यजनक घटना घटी है।

एक भाई अपनी बहिनको उसकी ससुराल पहुँचाने जा रहा था। एकाएक एक सुनसान जगहपर भाईकी नीयत बिगड़ी और उसने बहिनसे ५ तोला सोना माँगा जो उसके पास था। बहिनने सोना नहीं दिया। इसपर भाईने क्रुद्ध होकर उसे मारनेके लिये कुल्हाड़ी उठायी जो संयोगवश ऊपरके दरख्तकी टहनीपर लगी, जहाँ एक विषधर नाग बैठा था। कुल्हाड़ीसे साँपको थोड़ी चोट लगी जिससे उसने क्रुद्ध होकर उसे लिपटकर डँस लिया, वह तत्क्षण मर गया।

कुछ देर बाद जब लोग वहाँ पहुँचे तो स्त्री बेहोश थी और साँप उस शख्से लिपटा पड़ा था। किसी प्रकार साँपको हटाया गया। वहाँके लोगोंको इसका पूर्ण विश्वास हो गया है कि ईश्वरने साँपके रूपमें स्त्रीकी जान बचायी।

(७)

उस दिन श्री जी०एन पाटिल नामक एक सज्जन यहाँ पधारे थे, उन्होंने पुष्करराजकी एक घटना सुनायी। किसीने एक दूसरे भाईसे पाँच रुपये उधार लिये। बहुत दिन हो गये, बार-बार माँगनेपर भी लौटाये नहीं और अन्तमें एक दिन कह दिया-'कौनसे रुपये? मैंने तुमसे रुपये कब लिये थे।' उसने कहा-'न लिये हों तो तुम पुष्करसरोवरका जल हाथमें लेकर कह दो कि मैंने नहीं लिये हैं।' उसने कहा-'चलो कह देता हूँ।' दोनों गये। सौ-डेढ़-सौ आदमी

और भी एकत्र हो गये थे। उसने पुष्करका जल हाथमें लिया और कह दिया कि रुपये मैंने नहीं लिये, यों कहकर वह जल हाथसे फेंकने लगा, इतनेमें ही एक साँपने कहींसे आकर उसको डँस लिया और तुरंत वहीं उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार साँपने आकर मानो असत्यका उसे दण्ड दिया।

(कल्याण वर्ष, २१/५/१०३७)

****

क्या कोई पीछे खड़ा है?

घटनाएँ प्रत्येक क्षण मनुष्यके जीवनमें घटती रहती हैं। उनमें कुछ तो मनुष्यके अपने ही इहलौकिक कर्मोंके फलस्वरूप होती हैं और कुछ ईश्वर-प्रेरित होती है। ईश्वर-प्रेरित घटनाओंसे कुछ लोग तो चकित होकर रह जाते हैं; कुछ श्रद्धालु उन्हें भगवान्‌की लीला समझकर चुप रहते हैं और कुछ समझते ही नहीं।

मेरे जीवनमें कई घटनाएँ ऐसी घटी हैं, जिनका अमिट प्रभाव मेरे विचारोंपर पड़ा है। उन्हें मैं ईश्वरप्रेरित समझता हूँ । उनमेंसे एक यह है, जो अभी आठ-दस वर्ष पहले की है-

पचीस-तीस वर्ष पहले एक घनिष्ठ मित्र थे। मित्र तो वे अब भी हैं; पर घनिष्ठता नहीं है। उन्होंने अपने एक कुटुम्बीपर धनके लिये मुकदमा चलाया। मुकदमा जोरोंसे चला। कुटुम्बीने अपने गवाहोंमें मेरा भी नाम लिखा दिया। उसे विश्वास था कि मैं सच ही बोलूँगा। मित्रको भय हुआ कि मैं सच ही बोलूँगा और उससे उनकी हानि होगी। मुझे अपने ही पक्षका समर्थक बना लेनेका साहस उन्हें नहीं हुआ होगा। यद्यपि उनके कुटुम्बीको मैंने स्पष्टत: कह दिया था कि मैं किसी पक्षकी ओरसे गवाही न दूँगा; पर कुटुम्बीने इस बातको छिपा रक्खा। मित्रने यही उचित समझा होगा कि वह मुझे गवाही देने योग्य ही न रहने दे तो उसका काम बन जाय।

अब मित्रके यहाँ मैं रोज बुलाया जाने लगा। मित्र मुझे नदीके किनारे टहलाने ले जाते; भक्ति और ज्ञान-वैराग्यकी बातें कहते; किसी संतका कोई पद या साखी सुनाते-सुनाते भक्तिविह्वल हो जाते और आँसू भी गिराते। आँसू गिरानेकी दवा ओवरकोटकी

जेबमें डालकर ले जाते और नकली भावावेशमें आकर जेबमें हाथ डालते और दवाकी ट्यूबके मुँहपर उँगली रगड़कर उसे आँखें पोंछनेके बहाने नाककी जड़के पास फेर-फार लेते और आँसू जोरसे चूने लगते। मैं सब समझता और फिल्म देखने-सा मजा लेता रहता। मित्रका स्वभाव कुछ नाटकीय था भी।

हम टहलकर लौटते तो बैठने भी न पाते कि मित्रका नौकर दो प्यालोंमें बढ़िया मलाई लिये हुए सामने खड़ा हो जाता। एक तो बढ़िया मलाई, दूसरे मैं ब्राह्मण; धनी भक्तोंकी डाली हुई पुश्तैनी आदत, ब्राह्मण मलाईके लिये है कि मलाई ब्राह्मणके लिये, यह निर्णय करनेमें असमर्थ। चार दिनोंतक मित्रके साथ टहलकर आनेके बाद संध्या-समय मैं छककर मलाई खाता रहा। मित्रने पहले ही दिन खाया था। फिर तो वे प्रशंसा कर-करके खिलाते ही रहे। इसके बाद रामचरितमानस तो और भी सरस लगने लगता।

पाँचवाँ दिन आया। जाड़ेकी रात थी; जनवरीकी आठवीं तारीख थी। सात बज रहे होंगे। मित्रने नौकरको आवाज देकर कहा-मलाईमें वह दवा भी डाल देना जो जर्मनीसे आयी है। पंडितजीको बहुत पंसद आयेगी!

नौकर मलाई लाया। सचमुच मलाईमें स्वाद आ गया था। सत्कार, श्रद्धा और प्रेमके वचनोंसे वातावरण भी मोहक और दिङ्मूढ़ बनानेवाला बना ही था। मलाई समाप्त करते ही मेरी तो आँखें झपकने लगीं। मैं शिथिल-सा पड़ने लगा। मैंने मित्रसे कहा-मेरी तबियत खराब है; मैं घर जाऊँगा। अन्य दिनों तो मित्र अपने नौकरको लालटेन लेकर पहुँचाने भेजते थे। उस दिन इतना भी नहीं किया कि सीढ़ीतक तो पहुँचा जाते। मैं उठा और अँधेरेमें सीढ़ियाँ टटोलता हुआ नीचे उतरा। सड़कपर आया तो पलकें उठती ही न थीं। मुश्किलसे एक बार पलक उठाकर देख लेता तो बीस-पचीस कदम आँखें बंद किये हुए ही चलता।

जैसे स्वाध्यायी व्यक्तिके जीवनमें कभी-कभी ज्ञानकी चमक आ जाती है और फिर अन्धकार हो जाता है, वैसे ही मैं एक बार जरा-सा रास्ता देखकर फिर अंधेकी तरह चलने लगता। इस तरह दो-तीन फर्लांगका अँधेरा रास्ता मैंने पैंतालीस मिनटोंमें पार किया।

घर पहुँचकर मैं सीधे अपने कमरेमें चला गया और बिछौनेपर लेट गया। किसीको बुलानेकी शक्ति ही न थी।

लगभग नौ बजे मेरी कन्या मुझे बुलाने आयी, भोजन ठंडा हो रहा था। मेरे कमरेमें अँधेरा था; क्योंकि रोशनी कर लेने या करा लेनेके लिये मैं बिल्कुल असमर्थ हो चुका था। किवाड़ खुले देखकर कन्या कमरेमें आ गयी और अँधेरेमें उसने मुझे बिछौनेपर पड़ा पाया। उसने पुकारा। मैं सुनता था, पर उत्तर नहीं दे सकता था। वह दौड़कर अपनी माँको बुला लायी। उसकी माँने शरीर छूकर देखा तो कमरतक पैर बरफ-जैसा ठंडा हो गया था। उसने मुझे जगाना चाहा; पर मैं मृत्युकी मीठी-मीठी नींदमें डूबता जा रहा था। सुनता सब कुछ था; पर बोलना नहीं चाहता था। स्त्रीके बार-बार पूछनेसे उद्विग्न होकर मैंने शक्ति समेटकर कहा—मैं इस वक्त खाना नहीं खाऊँगा, मुझे सोने दो।

स्त्रीको शान्ति कहाँ? अपने भविष्यका चित्र देखकर तो वह काँप उठी। वह दौड़कर रसोई-घरमें गयी और काफी बनाकर ले आयी तथा मुझे हाथसे जबरदस्ती उठाकर बैठाया। उसने काफीका प्याला मेरे ओठोंसे लगा दिया। मेरी कुछ भी खाने-पीनेकी इच्छा बिल्कुल नहीं थी, पर किसी भी विवादमें भाग लेनेकी भी रुचि नहीं थी। मैंने काफी पी लिया और लेटकर मृत्युकी नींद लेने लगा।

स्त्री तो पहरेपर थी ही। वह जाती कहाँ? रातमें ग्यारह बजे उसने मुझे फिर जगाया और एक गिलास गरम दूध पिला दिया।

रातभर मैं मीठी नींदमें सोता रहा। सबेरे जागा तो इच्छा हुई कि बिछौनेसे उठकर खड़ा होऊँ। उठते ही चक्कर खाकर गिर पड़ा। गिरनेकी आवाज सुनकर स्त्री और कन्या दौड़कर आयीं। मुझे उठाकर बिछौनेपर लिटा दिया। स्त्री फिर काफी बनाकर ले आयी और दो प्याले काफी पिला गयी। मैं फिर सो गया और दिनके ग्यारह बजे जगा। तबियत कुछ होशमें थी, स्त्रीने दातुन आदि कराके दो प्याले काफी फिर पिला दिये। मैं फिर सो गया और एक बजे दोपहरको जागा। हालत पहलेसे अच्छी थी। पैर भी अब ठंडे नहीं रह गये थे। मैं फिर सो गया और तीन बजे जागा। तब भला-चंगा हो चुका था। मैंने नहानेको पानी माँगा। नहाकर और

कपड़े पहनकर मैं खड़ा हुआ तो मुझे यह विचित्र अनुभव होने लगा कि बहुतसे मनुष्योंकी बोली सुने बिना रहा नहीं जाता था। मैंने कुछ मुँहमें डालकर एक प्याला काफी ली और स्टेशनकी तरफ चल पड़ा, जो पास ही था।

प्लेटफार्मपर पहुँचकर और कुछ मनुष्योंको बोलते बतलाते सुनकर मुझे एक प्रकारकी तृप्ति-सी बोध होने लगी। वहाँ मुझे रेलवेके डाक्टर मिले। मैंने उनसे अपने इस आकस्मिक रोगकी चर्चा की। उन्होंने सुनते ही कहा—किसीने आपको मार्फिया दिया है। वे मुझे अपने अस्पतालमें ले गये। पूछनेपर भी मैंने मित्रका नाम उनको नहीं बताया, डाक्टरीकी पुस्तक खोलकर उन्होंने मार्फिया विषके सब लक्षण पढ़ सुनाये। सबसे आश्चर्यकी बात जो उन्होंने सुनायी वह यह थी कि मार्फियाकी दवा काफी है। काफीकी केटली-की केटली मार्फियाके विषमें पिला देनी चाहिये। वैसे ही चाय मार्फियाके विषको तत्काल घातक बना देती है।

मैं भगवान्‌की लीलापर आश्चर्य-चकित हो गया। यह प्रश्न उसी समय उत्पन्न हुआ था कि क्या कोई पीछे खड़ा है? भगवान् तो पंद्रह दिन पहलेहीसे इस विषके शमनका प्रबन्ध कर चुके थे। उनके प्रबन्धका खुलासा यह है—

मेरे घरमें चाय ही पियी जाती है। उत्तर-भारतमें प्रायः सर्वत्र चायका ही चलन है। मैं दक्षिण-भारत दो-तीन बार घूम आया हूँ; इससे मुझे काफी भी रुचने लगी है। मैं दिल्ली गया था और वहाँसे काफीका एक बंडल लेता आया था। उक्त घटनाके पंद्रह दिन पहले घरमें चाय चुक गयी और पत्नीने दूसरा बंडल मँगा लेनेको कहा; तब मैंने कहा था कि काफी रक्खे-रक्खे खराब हो जायगी, अब उसे खतम कर लो तब चाय आयेगी। घटनाके पंद्रह दिन पहलेसे ही चाय घरमें थी ही नहीं, नहीं तो, चाय ही बनकर आती; क्योंकि काफी तो मेरे कहनेपर ही बनती थी और मेरी मृत्यु निश्चित थी। पत्नीको विवश होकर काफी बनानी पड़ी थी। यह पीछे खड़े भगवान्‌की चौकसी थी, जो वे मेरे पीछे खड़े होकर कर रहे थे।

पीछे खड़ी कोई महान् शक्ति मुझे बचानेमें लगी थी, तब

मुझे मार कौन सकता था? मेरे प्राण बच गये। इस खुशीमें मैंने मित्रके प्रति जो मनमें द्वेष-भाव उत्पन्न हो गया था, उसे निकाल दिया। पर फिर उनसे मिलने नहीं गया। महीने-दो-महीने बाद वही मित्र स्टेशनके प्लेटफार्मपर खड़े अपने कुछ मित्रोंसे बातें कर रहे थे। मैं अखबार लेने गया था। उनकी बगलसे निकला; पर मेरी दृष्टि उनपर नहीं पड़ी। उन्होंने कहा—'प्रणाम।' मैंने नहीं सुना। तब फिर उन्होंने जरा जोरसे कहा—'मिलना-जुलना छोड़ दिया तो क्या प्रणाम लेना भी बंद कर दिया? उनकी आवाज पहचानकर मैंने लौटकर कहा—'किसे आप प्रणाम कर रहे हैं?' उन्होंने मेरा पूरा नाम लिया। मैंने कहा—'वह तो मर गये; मैं तो उनका प्रेत हूँ, घूम रहा हूँ।' यह कहकर मैं आगे चला गया।

संसारकी सारी घटनाएँ पूर्व निश्चित-सी हैं। किसीके लिये हर्ष, किसीके लिये विषाद करना मनुष्यका अज्ञान ही है। यह बात सच न हो तो भी इसे मान रखनेमें यह लाभ तो है ही कि मनमें किसीके लिये द्वेष नहीं रह जाता। मेरे मित्र अब भी मित्र ही हैं। हम साथ बैठते और हँसते-बोलते हैं; पर खान-पानमें मैं थोड़ा सावधान रहने लगा हूँ। द्वेष करता तो मैं ज्यादा जलता और वे कम। और फिर द्वेषाग्निमें तो प्रत्येक वाक्यका ईंधन पड़ने लगता और वह कभी बुझती ही नहीं।

पीछे खड़ी शक्तिका उस घटनासे क्या अभिप्राय था? यह न कोई जान सकता है, न बता सकता है। मैंने जो स्वयं समझ लिया है, वह यह है कि सावधान रहो और अपने सच्चे शुभचिन्तकको पहचानो और उसकी सङ्गति करो। मित्रको उसके दुष्कृत्यमें निष्फल बनाकर और बदनामीका भय दिखलाकर उसे भी यह दिखाना अभीष्ट हो सकता है कि पापकी प्रवृत्तियोंका परिणाम अच्छा नहीं होता। उन्हें छोड़ दो, पुण्यमय जीवन बिताओ।

मेरे विचारोंपर इस घटनाका बहुत प्रभाव पड़ा है और कुछ-कुछ चिरस्थायी भी हो गया है। 'कल्याण' के पाठकोंके भी जीवनमें ऐसी घटनाएँ घटती होंगी। घटनाओंके तो नाना रूप होते हैं, पर विचारोंपर परिणाम प्रायः एक-ही-सा होता है। घटनाओंके आदि और अन्तको ध्यानपूर्वक देखनेसे दिखायी उनमें कहीं-न-कहीं किसी अदृश्य

शक्तिका हाथ अवश्य दिखायी पड़ेगा। जिसका कारण समझमें न आये, वही अदृश्य शक्तिका हाथ है।

किसी मित्रको बदनाम करनेके लिये या अपने ऊपर भगवान्की विशेष कृपा दिखानेके लिये मैं इस घटनाका उल्लेख नहीं कर रहा हूँ; बल्कि इस अभिप्रायसे कि कोई अदृश्य शक्ति मनुष्यके जीवनका संचालन करती है; जिसके लाखों प्रमाण मनुष्य-जातिके पास होंगे; उनमें यह प्रमाण भी सम्मिलित कर लिया जाय। मनुष्योंके पीछे अवश्य कोई खड़ा है।

(कल्याण वर्ष, १९/६/१०९९, पं० श्रीरामनरेशजी त्रिपाठी)

****

सच्ची दैवी घटना

प्रत्येक मानव-हृदय बच्चोंकी किलकारी सुननेके लिये लालायित रहता है विशेषत: उस घरमें, जहाँ कि कई वर्षोंके पश्चात् बच्चोंकी चहक सुनायी दी हो।

लगभग नौ या दस वर्षोंसे मेरे घरमें कोई छोटा बच्चा न था। कई वर्षोंकी प्रतीक्षाके पश्चात् मेरे घरमें नाती (लड़कीका लड़का) अशोकका जन्म हुआ। वही सबकी ममताका केन्द्रबिन्दु बना और दुलारका अधिकारी भी। कई वर्षोंके पश्चात् घरमें एक आशाका दीप आलोकित हुआ, सारा घर पुलकित हो उठा। जिस प्रकार एक अन्धकारपूर्ण घरमें यदि एक दीपक होता है तो लोग उसे आँधी और तूफानके भयसे अपने अंचलमें छिपानेका प्रयत्न करते हैं और यदि कहीं आँधीका तीव्र झोंका दीपककी लौको प्रकम्पित कर देता है तो सभीको घरके पूर्व अन्धकारका स्मरण हो जाता है, सभी दुखित होने लगते हैं और उसकी बढ़ती हुई ज्योति देखकर सभीको हर्ष होता है। वही अवस्था मेरे घरकी भी हुई। घरका प्रत्येक व्यक्ति उसीका मुख निहारा करता मानो परिवारका सुख-दु:ख उसीमें केन्द्रीभूत हो गया हो और वास्तविकता भी थी। जब वह अपने घर चला जाता, तब घरमें असीम निस्तब्धता हो जाती; क्योंकि घर उसीकी तुतली बोलीसे मुखरित होता रहता था।

२९ नवम्बर १९५४ की बात है जब कि वह अपने घर

उन्नावमें था, उसी दिन किसी आवश्यक कार्यसे मैं लखनऊ चला गया था। घरपर था मेरा लड़का, लड़की और मेरी पत्नी। यद्यपि मैं उसी दिन लौट आनेवाला था। फिर भी मेरे आनेसे पूर्व ही उन्नावसे एक तार आया। तारसे मालूम हुआ कि मेरा अशोक अधिक चिन्ताजनक अवस्थामें है। मैं लखनऊमें था ही, घरपर हलचल मच गयी। लड़कीको नौकरके सहारेपर छोड़कर मेरा लड़का अपनी माँको साथ लेकर उन्नावके लिये रवाना हो गया। मैं जब लखनऊसे लौटकर आया और तार देखा तो अधिक व्याकुलता हुई। प्रातःकाल एक और तार मिला जिससे मालूम हुआ कि वह छतसे गिर पड़ा है और अवस्था शोचनीय है। शामको मैं अपनी लड़कीके साथ उन्नाव जा पहुँचा। स्टेशनपर मेरा लड़का मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। उससे मालूम हुआ कि अशोक दस फीट ऊँची छतसे सिरके बल गिर पड़ा है, अभी होश नहीं आया। मैं सीधे अस्पताल ही गया। अशोककी अवस्था देखकर बरबस नेत्रोंमें अश्रु आ गये। डाक्टरोंके विचार सुनकर और भी व्याकुलता बढ़ी। उनका विचार था कि बच्चेका बचना कठिन ही नहीं, वरं असम्भव है। वहाँके सिविल सर्जनका विचार था कि यदि बच्चेको ३६ घंटेमें होश आ जाता है तो बचनेकी आशा की जा सकती है, किंतु यदि ३६ घंटेमें होश नहीं आता तो ईश्वरके हाथमें है।

अशोकके होशमें आनेकी प्रतीक्षा की जाने लगी; किंतु ३६ के स्थानपर ४८ घंटे निकल गये, उसे होश न आया। डाक्टरोंकी समझमें ही नहीं आता था कि क्या किया जाय। हमलोगोंने भी कोई कोर-कसर उठा न रखखी। सभी देवी-देवताओंकी मानताएँ मानी गयीं; किंतु उसकी अवस्थामें कोई सुधार दृष्टिगत नहीं हुआ। धीरे-धीरे उसकी अवस्था गिरती ही गयी और बुखार बढ़ता गया। बुखार कम करनेके लिये बर्फ भी रक्खी जाती पर कोई अन्तर न पड़ता। माघ-पूसका महीना था, जाड़ा अधिक पड़ रहा था। सभी गरम रजाइयोंमें लिपट जानेके लिये इच्छुक थे, किंतु हम लोगोंको सर्दीका लेशमात्र भी अनुभव न होता था। सभीकी यही इच्छा थी कि किस प्रकार इसकी व्यथा अपने ऊपर ले ली जाय, जिससे अशोक स्वस्थ हो जाय; किंतु किसीकी भी कोई युक्ति न चली।

आखिर उसकी अवस्था अधिक शोचनीय हो गयी, उसे रह-रहकर दौरे-से आते और चीखकर हाथ-पैर ऐंठने लगते। उसकी यह अवस्था देखकर सभी लोगोंकी व्याकुलता और अधिक बढ़ी। हमलोग उससे पुन: मिलनेकी आशा छोड़ बैठे। जगमगाता दीपक तिमिर बटोरने लगा, ज्योति धुँधली पड़ने लगी, परिवारका भविष्य अन्धकारमय प्रतीत होने लगा। हमलोग अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे एकटक उसकी ओर देखते रहे। भगवान्‌की शक्तिके सम्मुख एक असहाय मानवकी सफलता असम्भव है, अत: हमलोग उसी सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् परमात्माके सहारे अशोकको छोड़ चुके थे।

उसकी यह अवस्था राततक चलती रही। दो बजेके लगभग उसे कुछ नींद आ गयी और दौरोंका जोर कम हो गया। मैंने भी उसकी बर्फकी टोपी बर्फसे भरकर उसके सिरपर रख दी। बच्चेको चैनसे सोते देखकर सभीको कुछ-कुछ नींद आने लगी, क्योंकि सभी थके थे। जब प्रात:काल कमरेसे बाहर निकला तो एक मुसलमान युवतीने, जो कि अपने पेटकी चिकित्साके लिये आयी थी, मुझे निकलते देखकर पूछा—'रातके लगभग ढाई बजे, जब कि मेरे पेटमें अधिक दर्द हो रहा था और मैं उठ बैठी तब आपके दरवाजेपर एक साधुजी दिखाई पड़े जिनकी सफेद दाढ़ी उनकी नाभितक लटक रही थी और हवाके झोंकेसे कभी-कभी फहराने लगती थी, उन्नत ललाट और एक अतीव आभा जिनमें दृष्टिगोचर हो रही थी, शरीरपर केवल एक अचला और पैरमें खड़ाऊ थे। पहले मैं कुछ संकुचित हुई और मैंने समझा कि इनके घरका कोई मरीज पड़ा होगा, परंतु बादमें उनसे पूछा कि क्या आप रोगीको देखना चाहते हैं, किंतु वे कुछ न बोले। तो मैंने फिर पूछा कि क्या मैं पुकार दूँ, किंतु उनपर कोई असर न हुआ और दरवाजेके पास खड़े रहे। जब मैं उठकर खड़ी हुई और सोचा कि आपको पुकार दूँ तो वे अस्पतालके पिछवाड़ेकी ओर, जिधर कोई रास्ता नहीं है, चल पड़े। मैं भी उनके पीछे गयी कि देखें कहाँ जाते हैं, कुछ दूर जाकर देखा कि वे दीवालके पास जाकर गायब हो गये।'

उसी सुबह जब मैं यह घटना सुनकर गया, तभी अशोककी

निद्रा भङ्ग हुई और उसे होश आया। होश आते ही उसने कहा– 'पानी दो जल्दीसे' उसकी तोतली बोली सुनकर सभी प्रसन्नतामें झूम उठे। उसी दिन डाक्टर भी 'out of Danger' (खतरेसे बाहर) लिख गये और कहा–'मुंसरिम साहब! अब आपका नाती बच गया।' मैं भाव-विह्वल हो गया और जो डाक्टरके मुखसे सुनना चाहता था वही सुन लिया।

अशोकका यह पुनर्जन्म सभीको याद रहेगा। और सबसे अधिक यह दैवी घटना, जिसने कि ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वासको और भी पुष्ट कर दिया। इस घटनाने सबसे अधिक उनपर असर किया जो ईश्वरको कुछ मानते ही न थे; वे भी कहने लगे कि– 'जाको राखै साइयाँ मारि सके न कोय।'

यदि इस घटनाको मनगढ़ंत मान लिया जाय फिर भी विश्वास नहीं किया जा सकता कि ऐसी घटना मनगढ़ंत भी हो सकती है; क्योंकि इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमलोग अपने सम्मुख देख रहे थे। उस मुसलमान स्त्रीको यदि यह मनगढ़ंत ही करना था तो वह अपने किसी पीर-औलिया या मुल्लाका स्वरूप वर्णन करती, न कि एक हिंदू दिव्यात्मा। फिर एक अपरिचित युवतीको मनगढ़ंत करनेका तात्पर्य ही क्या था। खैर, कुछ भी हो और कोई भी हों। वे थे एक दिव्यात्मा ही और दैवी शक्तिके स्वरूप ही।

उसी दिन अशोकके स्वास्थ्यमें सुधार होने लगा और कुछ सप्ताहोंके पश्चात् पूर्ण स्वस्थ होकर वह पुनः फुदकने लगा।

धन्य है ईश्वरकी महिमा!

(कल्याण वर्ष २९/७/१९८३, पं० श्रीकन्हैयालालजी शुक्ल)

****

रामनामसे रक्षा हुई

गत ता० २८। ७। ५५ को मैं दिनमें एक बजे घरसे लॉरी लेकर पाट लाने उदोरी गाँवमें गया। वहाँ ब्रह्मपुत्र नदीमें बाढ़ आ जानेसे उदोरीका बिल भी पानीसे भर गया। मैं लॉरीको पी०डब्ल्यूडी० घाटके किनारे खड़ी करके उदोरीनिवासी लोदर नामक व्यक्तिके यहाँ पाट लेने गया। पाट वजन करवाकर बड़ी नावमें लदवाया।

नावको लॉरीतक आनेके लिये छोड़ दिया गया। नाव जब गहरे पानीमें पहुँची, तब कुछ टेढ़ी हो गयी। अंदर पानी आने लगा। इतनेमें ऊपरका पाट लुढ़ककर नीचे पानीमें तैरने लगा। नावमें चार-पाँच आदमी थे, वे सब नदीमें कूदकर तैरने लगे। वे तैरना जानते थे। मैं बच रहा। मुझे तैरना नहीं आता। कोई उपाय नहीं था। कोई भी उपाय न देखकर मेरा मन भगवान्‌की ओर गया और मैं राम-राम करने लगा। नाव धीरे-धीरे जा रही थी। पता नहीं, क्यों मेरे मनमें आया और कुछ भी आगा-पीछा न सोचकर सहसा जलमें कूद पड़ा। ईश्वरकी अपार महिमा। मुझे जलमें ऐसा लगा मानो कोई मुझे ऊपर उठाये हुए है। मेरे गलेतक पानी था। मुँह ऊपर था। मैं चिल्लाया-बचाओ। इतनेमें किनारे खड़ी एक छोटी नौकाको लेकर एक मुसलमान तुरंत मेरे पास पहुँच गया। उसने मुझे नावपर चढ़ा लिया। पाटवाली नावमेंसे पाट तो निकाला गया पर वह नीचे जाकर उलट गयी। बहुत दूर जाकर निकली। मैं उस नावपर होता तो डूब ही जाता।

(कल्याण वर्ष २९/१०/१३७५, श्रीछगनलालजी अग्रवाल)

****

भूलकर भी दूसरोंकी बुराई नहीं सोचनी चाहिये

दस रुपया मासिक पानेवाला ग्रामका चौकीदार एक बसपर चढ़कर कचहरी किसी कार्यवश आया। पैसेके लिये बसके मालिकसे कुछ झंझट हो गया। फलस्वरूप चौकीदारको बसवालोंने खूब पीटा। मार खाकर उसने थानेकी शरण ली। वह मारनेवालोंका नाम नहीं जानता था। थानेदारसे बसवालोंका झगड़ा था। दारोगाजीने अपने मनसे पाँच व्यक्तियोंके नाम, जिन्हें चौकीदार नहीं जानता था, अपनी रिपोर्टमें लिख डाले और कचहरीमें चार्जशीट दे दी। जब मजिस्ट्रेट साहबके यहाँ मुकदमा खुला तो चौकीदारने केवल दो आदमियोंको मारनेवालोंमेंसे पहचाना और बाकी तीनको वह नहीं पहचान सका। मुकदमेमें पाँचोंकी रिहाई हुई; क्योंकि बेचारा चौकीदार तीनको तो पहचानता ही नहीं था और दोका तो नाम भी नहीं जानता था। तो फिर थानेमें लिखाया किसने? मुझे ऐसा लगा कि 'चौकीदार झूठ बोलता है और इसने

जान-बूझकर मुकदमा खराब करनेके लिये ऐसा बयान दिया है।' मेरे विचारमें उस समय यह नहीं आया कि दारोगाजीने ही बसवालोंसे अपना वैर निकालनेके लिये अपने मनसे झूठे नाम लिखकर मुकदमा चलाया था। मैंने तुरंत कलम उठायी और उस गरीब चौकीदारको नौकरीसे हटानेके लिये जोरदार शब्दोंमें कप्तान साहब बहादुरके यहाँ लिख डाला।

एक मास भी नहीं बीतने पाया कि मेरा एक पुलिस जमादारसे झगड़ा हो गया और मैंने एस०डी०ओ० साहेबको अपनी कलम तथा ईमानदारीका बड़ा गर्व था; परंतु अपने जनोंके गर्वके घड़ेको फोड़नेवाले भगवान्‌ने एस०डी०ओ० साहेबकी बुद्धि बदल दी और पुलिसके डरसे एस०डी०ओ० साहेबने अपना हुकुम रद करके बदल दिया, जिसकी सूचना बिजलीकी भाँति शहरमें फैल गयी। मैंने फिर एस०डी०ओ० साहेबकी बुराई सोचना आरम्भ किया कि मेरी बुलाहट कप्तान साहबके यहाँसे आयी और भगवान्‌की कृपासे कप्तान साहबने पुलिस जमादार तथा मेरे बीच मेल-मिलाप तो करा दिया; परंतु चूँकि मैंने चौकीदारको हटानेके लिये सोचा था कि एकाएक मुझे मालूम हुआ कि एस०डी०ओ० साहेबने मुझसे रंज होकर कि क्यों मैंने उनकी शिकायत दूसरे स्थानोंमें की और क्यों उनके विरुद्ध शब्द निकालनेका साहस किया, मुझे हटानेके लिये जिलाधीश महोदयको लिख डाला।

मैंने गम्भीररूपसे इसपर विचार किया और मुझे यही मालूम हुआ कि मैंने उस गरीब निर्दोष चौकीदारको नौकरीसे हटानेके लिये अनाधिकार चेष्टा की थी और उसकी बुराई सोची थी, उसीका परिणाम आज मुझे भगवान्‌ने दिया है। आजसे मैंने सीख लिया कि कभी भी किसीकी बुराई नहीं सोचूँगा और सोच रहा हूँ कि कप्तान साहेबसे जाकर मिलूँ और स्पष्ट शब्दोंमें प्रार्थना करूँ कि उस गरीब चौकीदारको वे क्षमा कर दें तथा नौकरीसे बाहर न करें। वह निर्दोष है। तभी मेरा कल्याण होगा और एस०डी०ओ० साहेबके बुराई सोचनेसे मेरी बुराई कदापि नहीं होगी; क्योंकि मेरा मार्ग सही है और मुझे भगवान्‌का भरोसा है। आज इस सच्ची कहानीसे मुझे यह शिक्षा मिली कि 'कर भला तो हो भला।'

और दीनबन्धु भक्तवत्सल कृपासिन्धु किसी भी आदमीका अभिमान नहीं रखते, किंतु अपने भक्तोंकी रक्षा सदैव करते रहते हैं। भगवान्‌का भजन महान् बल है। दुःखमें, सुखमें सभी बातोंमें भगवान्‌की कृपाका अनुभव करना चाहिये।

(कल्याण वर्ष २९/१०/१३७६, एक भुक्तभोगी)

******

आँखों देखा भक्त

अयोध्याधामसे लगभग आठ कोस पूर्व सरयूजीके किनारे एक सेरवाघाट नामक स्थान है, वहीं शृंगीऋषिका आश्रम है, जो अयोध्यान्तर्गत सोलहवाँ तीर्थ माना जाता है। मैं जिन भक्तकी चर्चा करना चाहता हूँ उनकी जन्मभूमि इसी स्थानके आसपास किसी गाँवमें थी। गाँवका नाम मुझे याद नहीं रहा। यह भक्त गायें चराया करते थे। शृंगीऋषिके आश्रमपर सन् १८५७ वाले गदरके समय तक रामलीला हुआ करती थी। इससे बचपनमें सरयूतटपर गायें चराते समय रामलीलाके दिनोंमें रामलीला देखनेका इन्हें बरसोंतक सौभाग्य मिलता रहा। जब रामलीला बन्द हो जाती थी, तब गायोंको फैले हुए चरागाहमें छोड़कर हमारे ये चरवाहे बालक भक्त एकान्तमें बैठकर घण्टों आँखें मूँदे श्रीराम–लक्ष्मणका ध्यान किया करते थे।

भक्तजीको लोग 'नान्हू भगत' कहा करते थे, ये जातिके अहीर थे, जब गदरका होहल्ला मचा, तब बेचारे फैजाबाद जिलेसे भागकर बस्ती जिलेमें गोपियापार नामक मौजामें घर बाँधकर रहने लगे। इनकी माता तो कुछ दिनोंतक जीवित थीं परन्तु पिता बचपनमें ही मर गये थे। इनका विवाह गोपियापारमें ही हुआ था। पत्नी भी सचमुच पूरी भक्तिन थी। इनके लगभग चौदह बीघा खेत था, उसीसे जीविका चलती थी। कुछ बच्चे पैदा हुए परन्तु वे शीघ्र ही चल बसे थे। अतएव केवल दो ही मूर्ति रहते और खेतीसे जीवन यापन करते थे। कुटीपर कोई साधु सन्त आ जाता तो श्रद्धासे उसकी सेवा–शुश्रुषा करते, और अधिकांश समयमें रामनामका जप किया करते। सालमें एक बार श्रीमद्भागवतकी कथा सुना करते थे। मैं अपने बचपनसे ही इन्हें दुबले पतले लम्बे और मजबूत

हड्डियोंके मनुष्यके रूपमें देखता आता था। भक्तिन अन्धी हो गयी थीं, इससे खेतीका काम हलवाहेसे करवाते थे। तुलसीकी माला तो दम्पतिके हाथोंमें सरकती ही रहती थी। दम्पतिकी रामनामके जपकी संख्या-गणना बहुत विचित्र थी। लाख करोड़का हिसाब तो ये जानते ही नहीं थे। पढ़े-लिखे तो थे नहीं। एक सेर अरहर या मटर रख लेते और जब एक माला पूरी होती तो एक दाना दूसरे बर्तनमें रख देते। यों जब सेरभर दाने पूरे हो जाते तब भक्त कहते—'भगतिन, मोर सेरवा पूर होइगौ।' इधर भगतिन भी इसी भाँति होड़-सी लगाकर कहती—'भगत! हमार भगवान् तो तुही हो न, लेकिन मैं तुम्हरे भगवानेंकि भजथूँ; लेव मोरो सेरवा पूर होइगौ।'

इसी प्रकार दोनोंका जीवन बड़े आनन्दसे कटता था। समय पर एक बहुत ही ऊँचे महात्माके संगसे इनकी अवस्था बहुत ही उदात्त हो उठी। क्षण-क्षणमें भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन होना तो इनके लिये स्वाभाविक-सा हो गया था। भक्तिनके मरनेपर भक्तने अपनी कुल ७००) की पूँजी तथा घरमें जो अन्न तथा बैल थे, सब कुछ गोशालामें दे डाला। खेत बटाईपर दे दिया और उससे आसानीसे पावभर दाना रोजाना लेकर उसीपर गुजारा करने लगे। अब रात-दिन निर्द्वन्द्व भजन करना ही इनका काम हो गया। इन्होंने मुझे कई घटनाएँ सुनायी, जिनमें दो एक घटनायें यहाँ लिख देता हूँ।

एक बार भक्तजी तुलसी और पीपलपर जल चढ़ानेके बाद सूर्यको अर्घ्य दे रहे थे, परन्तु आँखें बन्द करते ही बाह्य-ज्ञान-शून्य होकर वह देखते हैं कि सारा संसार प्रकाशमय हो गया है। वह बड़ी देरतक इस अवस्थामें मस्त रहे। जब भक्तिनने जाकर जगाया तब हँस-हँसकर अपनी गँवारू भाषामें जितना वर्णन कर सके उतना उस अनिर्वचनीय दृश्यका वर्णन किया। इसके अनन्तर कई महीने तक सूर्यार्घ्य-दानके समय वह इसी प्रकार देखते रहे। भक्तजी भी चुपचाप पागल बन गये, सयाने बनकर इस दर्शनके सुखको छोड़ना उन्होंने पसन्द नहीं किया।

कुछ दिनोंके बाद माघ महीनेकी एक रातके समय इनके मनमें अनुराग उठा और बड़बड़ाने लगे—'दादा! तुम्हरे एकठँ काली कमरिया होई और यहि जड़ियामें गाय बिन्दरावनमें चरावत होबौ,

बड़ा जाड़ लागत होई, आओ मैं आपन रजैय्या ओढ़ाय देवँ हे दीनानाथ!' बार-बार रो-रोकर वह यों प्रार्थना करते रहे। करीब एक बजे नींद आयी तब देखते हैं कि बालरूपधारी कृष्ण भगवान् प्रकट होकर बोले-'भगत! ओ भगत! जाड़ लागत बाय।' भक्तने कहा-'के होय, जगदेउआ (एक पड़ोसीका लड़का)! तब भगवान्ने कहा-'अरे अबतक तो रोय रोय बोलावत रहिन, अब कहत हैं जगदेउआ जगदेउआ। हम जात बाटी।' अब तो भक्तको होश आया, उठ दौड़े-'के होय, दादा! दीनानाथ! दीनानाथ!'

जो कुछ भी हो भक्तजी रो-धोकर अपनी खटिया पर लेट गये। वे आँखें बन्द किये पछता रहे थे कि रजाईके नीचेसे उन्हें तारे दिखायी देने लगे। मानो रजाई या घरके छप्परका कोई आवरण ही नहीं है। थोड़ी देरके बाद विशाल लहरें लेता हुआ एक ऐसा प्रकाश दिखायी पड़ा जिसका कहीं ओर-छोर न था। भक्तजी उसीमें हिलोरें लेते हुए बैकुण्ठ पहुँचे, वहाँ उन्हें अपने आराध्य श्रीराम, लक्ष्मण, हनुमान आदि सभीके दर्शन हुए। तब उन्होंने साष्टाङ्ग दण्डवत् कर यह प्रश्न किया-'महराज! भरत भुआल कहाँ है?' इतनेमें उन्हें भरतजीने भी दर्शन दिया। (यहाँ बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिन्हें लिखनेका न समय है और न स्थान ही है, शायद वे उनकी भावनाएँ रही हों)। थोड़ी देरके बाद उसी लोकमें उन्हें रहनेका स्थान दिखलाया गया। उनके परम पूज्य एक महात्मा और इन पंक्तियोंके लेखकके गुप्त गुरुका स्थान भी दिखलाया गया। इस प्रकार भक्तोंकी भावना उन्हें प्रत्यक्ष हुई। दूसरे दिन बेचारे दौड़े हुए मेरे पास आये और अपनी सारी कहानी सुनाई। मेरे पातकी हृदयमें भी अब उनके पागल ही होनेका विश्वास दृढ़ होने लगा। बेचार बूढ़ा अपनी सारी कहानी महाराज! महाराज! कहकर सुनाता रहा और मैं उसे बेवकूफ पागल समझकर मुसकराता रहा। यह मेरी कितनी नीचता थी, यह सोचकर अब मुझे बड़ा दुःख होता है। दूसरे दिन रातको भक्तजी फिर वही जाड़ेवाली और गाय चरानेवाली भावना रो-रोकर अपने 'दीनानाथ' के सामने प्रकट करने लगे। देखते-ही-देखते एक बालक दूरसे मुरली दिखा-दिखाकर भगतजीको डाँटने लगा, 'क्यों रे बेवकूफ' तूने सारी बातें ..... उससे कह दीं। अब तुझे ...' इस फटकारपर

बिचारे भक्तजीने मुझे नेकनीयत बतलाते हुए मेरे लिये सिफारिस की।

दूसरे दिन बेचारे भक्तजी, जो सचमुच मेरे पिताके साथी थे, लाठी टेकते हुए आये और मुझसे एकान्तमें कहने लगे–'हे ब्राह्मणके बालक! तुहमा कौनो अस बात नाहीं चाही जौन भगवान् कैं न पसन्द पड़े। भला हमका पागल काह समझत रहा; दीनानाथ हमका डाँटत रहिन हैं, तुम्हें विश्वास नाहीं रहा तब बनावटी बात मोसे काहेके कह्यौ, का मैं रिसियातेऊ?' अब तो मैं भयवश थर-थर काँप उठा कि 'हाय! मैंने एक भगवद्भक्तका निरादर ही नहीं किया बल्कि मुझमें कितना बड़ा दम्भ है?' इस प्रकार पछताते हुए मैं भक्तजीके साथ एक बहुत बड़े महात्माके यहाँ गया, अपनी कथा उन्हें सुनायी, सब सुनकर महात्माजीने मुझे आश्वासन दिया।

एक दिन बेचारे भक्तजी अँधेरी रातमें जंगलकठारके पश्चिमी रास्तेसे घर जा रहे थे, बीच रास्तेमें एक मशहूर साँढ जो कि रातमें लोगोंको मार देता था, डकारता हुआ आ पहुँचा, इन्हें कुछ नहीं सूझ पड़ा, लगे अपने दीनानाथसे कहने–'अरे दीनानाथ! अरे दीनानाथ! बड़का सँड़वा आज मारि डारी! तुहरै बदनामी होई कि नन्दुआँ भगतवाकैं साँढ़ मारि डारिस और उई प्रेत होई गै।' इतने ही में भक्तजी देखते हैं कि बारह वर्षका सुन्दर लड़का साँढ़की पीठपर हाथ रक्खे उसकी पूँछ ऐंठता हुआ उसको भगतके सामनेसे हाँकता हुआ दूसरी ओरको चला जा रहा है। थोड़ी देरतक तो भक्तजी चक्करमें रहे, परन्तु शीघ्र ही समझ गये कि यह उनके दीनानाथकी करामात है। तब खूब प्रेमसे दण्डवत् करके हँसते, रोते, नाचते अपनी कुटीमें गये।

करीब दस वर्ष हुए, इस सरल प्रेम भक्तने एक त्यागी संन्यासीकी भाँति अपने नश्वर शरीरको छोड़कर परम धामको प्रयाण किया।

(कल्याण वर्ष ४/११/१३०३, एक प्रत्यक्षदर्शी)

******

भक्त राजा जयमल्ल सिंहजी

राजा जयमल्लसिंहजी मेड़ताके राजा थे। ये बड़े ही नीतिज्ञ, सदाचारी, साधु-स्वभाव नियमोंमें तत्पर और दृढ़निश्चयी भगवद्भक्त थे। यद्यपि ये भगवान्‌का स्मरण रखते हुए ही राज्यका सारा काम करते थे, तथापि प्रातःकाल डेढ़ पहर दिन चढ़नेतक तो प्रतिदिन एकान्तस्थलमें नियमितरूपसे भगवान्‌का ध्यान-भजन करते थे। इस समय बड़े-से-बड़े जरूरी कामके लिये भी कोई आपके पास नहीं जा सकता था। वे भगवत्-पूजनके आनन्द सागरमें ऐसे डूबे रहते थे कि किसी प्रकारके बाहरी विघ्नसे उनका ध्यान नहीं टूटता था। इस समय उनकी अन्तर और बाहरकी दृष्टि मिलकर एक हो जाती थी, और वह देखती थी—केवल एक श्याम-सुन्दरकी त्रिभुवन-मोहन अनूप रूपराशिको। इस समयकी उनकी प्रेम विह्वलता और समाधिनिष्ठाको सौभाग्यवश जो कोई देख पाता, वही भगवत्प्रेमकी ओर बलात्कार आकर्षित हो जाता था। इस प्रतिदिनकी नियमित साधनाके समय अत्यन्त आवश्यक कार्य उपस्थित हुए। परन्तु जयमल्ल अपने प्रणसे नहीं डिगे।

जयमल्लसिंहजी इस प्रणकी बात चारों ओर फैल गयी। एक दूसरा राजा, जो इनके कुटुम्बका ही था, ईर्ष्या और दुर्बुद्धि-वश जयमल्लसे वैर रखता और इन्हें सतानेका मौका ढूँढ़ा करता था। उसे यह बात मालूम हुई तो उसने एक दिन प्रातःकालके समय बहुत-सी सेना साथ लेकर मेड़ता आ घेरा। लोगोंने आकर राजमें सूचना दी। राजाका कड़ा हुक्म था कि उसकी आज्ञा बिना किसीसे युद्ध आदि न किया जाय, अतएव दीवानने आकर महलोंमें खबर दी, परन्तु राजा जयमल्लके पास तो उस समय कोई जा नहीं सकता था। आखिर राजमातासे नहीं रहा गया। राज्यनाशकी आशंकासे राजमाता साहस करके पुत्रके पास उनकी कोठरीमें गयी। उसने जाकर देखा—जयमल्ल समाधिनिष्ठ बैठे हैं, बाह्यज्ञान बिल्कुल नहीं है, नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बह रहे हैं, बीच-बीचमें अनुपम आनन्दकी हँसी हँस देते हैं। उनके मुखमण्डलपर एक अपूर्व ज्योति फैल रही है। माता एक बार तो रुक गयी, परन्तु पुत्रके अनिष्टकी सम्भावनासे उसने कहा, 'बेटा! शत्रुने चढ़ाई कर दी, कुछ उपाय करना चाहिये।' जयमल्लका चित्त

तो भगवान्‌की रूप-छटामें निरुद्ध था। उसको कुछ भी सुनायी नहीं दिया। जब तीन-चार बार पुकारनेपर भी कोई उत्तर नहीं मिला, तब माताने हाथसे जयमल्लके शरीरको हिलाया। ध्यान छूटनेसे जयमल्लने आश्चर्यचकित हो नेत्र खोले। मनमें बड़ा क्षोभ हुआ परन्तु सामने विषण्ण-वदना जननीको खड़ी देखकर तुरन्त ही भाव बदल गया और उन्होंने माताको प्रणाम किया। माताने शत्रुके आक्रमणका समाचार सुना दिया। परन्तु जयमल्लको इस समय भगवत चर्चाके सिवा दूसरी बात सुननेका अवसर ही नहीं था। उन्होंने चाहा कि माताको नम्रतासे समझा दूँ, लेकिन उनकी वृत्तियाँ तो भगवत्-रूपकी ओर प्रबल वेगसे खिची जा रही थीं, समझावे कौन? जयमल्ल कुछ भी बोल नहीं पाये और उनकी समाधि होने लगी। माताने फिर कहा, तब परमविश्वासी भक्त जयमल्लजीके मुँहसे केवल इतने शब्द निकले 'भगवान् सब कल्याण ही करते हैं।' तदनन्तर उनकी आँखें मुँद गयी। वह फिर सुख-दुःख, हानि-लाभ और जय-पराजयकी भावनासे बहुत परेके मनोहर नित्यानन्दमय प्रेम-राज्यमें प्रवेश कर गये। जगत्‌की क्षुद्र आँधी उनकी मनरूपी हिमालयके अचल शिखरको तनिक भी नहीं हिला सकी। माता दुःखी मनसे निराश होकर लौट आयी।

रणभेरी बजने लगी, शत्रु सेना कोई बाधा न पाकर नगरमें घुसने लगी। अब योगक्षेमका भार वहन करनेवाले भक्तभावनसे नहीं रहा गया। श्यामसुन्दर त्रिभुवन-कँपानेवाले वीरेन्द्रवेशमें शस्त्रादि सुसज्जित हो अकस्मात् शत्रु-सैन्यके सामने प्रकट हो गये। महाराज रघुराजसिंहजी लिखते हैं—

जानि निज सेवक निरत निज पूजनमें,
चढ़िकै तुरंग श्याम रंगको सवार है।
कर करवाल धारि कालहूको काल मानो,
पहुँच्यो उताल जहाँ सैन्य बेशुमार है॥
चपलासों चमकि चहूँकित चलाइ बाजी,
भटनकी राजी काटि करत प्रहार है।
रघुराज भक्तराज-लाज राखिबेके काज,
समर बिराज्यो वसुदेवको कुमार है॥

ब्रह्मा और यमराज जिसके शासनसे सृष्टिकी उत्पत्ति और संहार करते हैं, उनके सामने क्षुद्र राजपूत सेना किस गणनामें थी? बातकी बातमें सब धराशायी हुए। उनका पुण्य आज सर्वतोभावसे सफल हो गया! भगवान्‌के हाथसे निधन हो वे सदाके लिये परम धन पा गये। शत्रु राजा घायल होकर जमीन पर गिर पड़ा। पलोंमें इतना कामकर घोड़ेको घुड़सालमें बाँध सवार अन्तर्ध्यान हो गये।

इधर जयमल्लजीकी पूजा शेष हुई। उन्होंने तुरन्त अपना घोड़ा मँगवाया। देखते हैं तो घोड़ा थक रहा है, उसका शरीर पसीनेसे भींग रहा है और वह हाँफ रहा है। राजाने पूछा कि इस घोड़े पर कौन चढ़ा था? परन्तु किसीने कोई जवाब नहीं दिया। इस रहस्यको कोई जानता भी तो नहीं था। इतनेमें लोगोंने दौड़ते हुए आकर खबर दी कि 'शत्रुसेना तो सब मरी पड़ी है।' राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह घोड़ेकी बात भूलकर तुरन्त नगरके बाहर पहुँचे। देखते हैं, लाशोंका ढेर लगा है और विपक्षी-राजा घायल-से पड़े हैं। जयमल्ल उसके पास गये और प्रेमभावसे 'जय श्रीकृष्ण' करनेके बाद उससे युद्धका विवरण पूछने लगे। उसने हाथ जोड़कर कहा, 'महाराज! आपके यहाँ अनूप-रूप-शिरोमणि श्यामलमूर्ति महावीर कौन हैं? उन्होंने अकेले ही मेरी सारी सेनाका संहार कर डाला और मुझको भी घायल करके गिरा दिया। अहा! कैसा अनोखा उनका रूप है, जबसे मैंने उन नौजवान त्रिभुवन-मन-मोहनको देखा है, मेरा चित्त उन्हें फिरसे देखनेके लिये व्याकुल हो रहा है।' जयमल्ल अब समझे कि यह सारी मेरे प्रभुकी लीला है! उनका शरीर पुलकित हो गया, नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे। वे गद्गद-वाणीसे बोले-'भाई! तुम धन्य हो, तुम्हारे सौभाग्यकी ब्रह्मा भी प्रशंसा करेंगे। अहा! मेरी तो आँखें उस साँवरे-सलोनेके लिये तरस ही रही हैं, तुम धन्य हो जो सहजहीमें उसका दर्शन पा गये?'

अब उसका सारा वैरभाव जाता रहा, जयमल्लने बड़े सम्मान और आरामके साथ उसे अपने घर पहुँचा दिया, वहाँ पहुँचकर वह भी सपरिवार भगवान्‌का परमभक्त हो गया!

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

(कल्याण वर्ष ४/१२/१३८३)

******

ईश्वरीय सत्ताकी एक सच्ची झलक

गत वर्षकी बात है। श्रावणमासका सुहावना समय था। हम परिवारको साथ ले श्रीमथुराजी पहुँचे। पहुँचते ही वर्षाने हमलोगोंका सुन्दर स्वागत किया।

श्रीमथुराजीमें हिण्डोलेमें झूलते हुए श्रीव्रजभूषणकी बाँकी-झाँकीके आनन्द-सुधा-वर्षणसे हमारी हृत्कली खिल उठी। परमपावनी रवितनया श्रीयमुनाजीके दर्शन तथा अवगाहनने स्वर्गीय सुख प्रदान किया। सन्ध्या-समय कालिन्दीके सुरम्य तटपर नौकाओंकी बहार, दीपमालाओंकी अनुपम छटा तथा विश्रामघाटकी आरतीके अलौकिक दर्शन एवं मन्द-मन्द वारिमिश्रित सुसमीरके सेवनने हमें अत्यन्त ही मुग्ध कर दिया। विचार हुआ कि श्रीगोकुलका भी दर्शन करना चाहिये।

दूसरे दिन प्रातःकाल वर्षाऋतुके कारण अपार यौवनमदोन्मत्ता तरणि-तनया यमुनाजीके विशाल वक्षःस्थलपर तरङ्गित होती हुई हमारी नौका श्रीगोकुलके लिये चल पड़ी। वर्षाके जलसे स्नान किये हुए तटके सुन्दर वृक्षों तथा श्याम-हरित शस्यकी शोभा देखकर हृदय आनन्द-सिन्धुमें तरङ्गित हो रहा था। मनमें आता था कि 'अहो! वनविहारी मदनमोहन श्रीश्यामसुन्दरने इसी वनमें इसी कमनीया कान्ताके किनारे गौओंको चराया था! अपने सहचरोंके साथ वनभोजन किया था! हे कलिन्दकन्या यमुने! तूने उस लीलाधारीकी लीलाओंका सुख अनुभव किया है, तू धन्य है! तेरे दर्शनसे हमें अतुलनीय आह्लाद प्राप्त होता है।' इसी प्रकारके सुखद विचारोंमें मग्न हम शीघ्र ही गोकुल जा पहुँचे।

श्रीगोकुल-ग्रामसे कौन नहीं परिचित होगा? यों तो सभी ऋतुओंमें यहाँकी प्राकृतिक शोभा विलक्षण होती है। परन्तु वर्षाऋतुमें तो इसकी छटा कुछ और ही हो जाती है। श्रीयमुना महारानीके निरातङ्क अङ्कमें क्रीड़ा करता हुआ गोकुल-ग्राम नयनाभिराम हो जाता है। यहाँके भगवान्‌की लीलाओंके सुन्दर मन्दिरादि तथा दिव्य दृश्य भारतके कोने-कोनेसे लोगोंको आकर्षित करते हैं। गाँवके इर्द-गिर्द सघन काननोंसे प्रस्रवित प्रशस्य शस्यश्यामला भूमिसे होकर बहता

सुनीरा गम्भीरा रवितनयाकी ओर बढ़ता हुआ वर्षा-सलिल अपने कलरवसे देखनेवालोंको मनोमुग्ध कर देता है।

श्रीगोकुलके रमणीय घाटों, स्थानों और मन्दिरोंके दर्शनका आनन्द ले तथा भोजनादिसे निवृत्त हो श्रीमथुरा लौटनेके उद्देश्यसे हमलोग पुनः घाटपर अपनी नौकामें आ उपस्थित हुए, साथ ही पाँच-छः व्रजललनाएँ भी उसपर आ बैठीं।

नौका अब उलटे प्रवाहकी ओर खींची जाने लगी। करीब डेढ़ मील हमलोग पहुँचे होंगे कि इतनेमें आकाशमें घोर काली घटा उठी, बादल गर्जने लगा, तथा यमुनाके तटोंपर मोर रोर मचा उठे। साथ ही व्रजभामाएँ भी कलकण्ठसे गान करने लगीं। देखते-ही-देखते वर्षा होने लगी और जोरोंसे हवा बहने लगी। अब नावका बढ़ाना कठिन हो गया। नाव ठहरा दी गयी और हम लोगोंको उतरना पड़ा। मेरी कमरमें चार सौ रुपयेके नोट, कुछ रुपये तथा पैसे बँधे थे, अब उन्हींकी रक्षाका प्रश्न सामने था। मैंने धोती कसकर कमरमें बाँध ली और ऊपरसे कमीज उतारकर भी लपेट ली। मल्लाहोंने कहा-'तुमलोग सामने बरसानेके पुराने श्रीराधाजीके मन्दिरमें धीरे-धीरे पैदल आ जाओ, हम नाव लेकर वहीं तैयार रहेंगे।'

वह मन्दिर वहाँसे एक मीलकी दूरीपर था। मेरे साथ दो छोटे-छोटे बच्चे भी थे, उनको स्त्रियोंके साथ धीरे-धीरे आने देनेके लिये पीछे छोड़कर, मैं कहीं नोट भीग न जायँ इस डरसे अकेला उस मन्दिरकी ओर शीघ्रतासे बढ़ा।

किनारेका मार्ग बीहड़ था। वर्षा जोरसे हो रही थी। चारों ओर जल भर जानेके कारण पगडण्डियाँ मालूम नहीं होती थीं। इसलिये बिना मार्गके ही पानीमें छप्-छप् करता बढ़ता जा रहा था, वर्षाका वेग और चारों ओरके हरियालीसे घिरे हुए जलमय दृश्य मनको मुग्ध कर रहे थे। मनमें रह-रहकर भगवान्की बाल्यकालकी लीलाओंका स्मरण हो आता था और भगवान्की क्रीड़ाभूमिमें अपनेको घूमते देखकर मैं मग्न हो रहा था। फिर तो भगवान्की स्मृतिमें इतना तल्लीन हुआ कि मार्ग भूलकर कहीं-का-कहीं निकल गया और मन्दिरका लक्ष्य भी सामनेसे दूर हो गया।

इतनेमें सामने एक बड़ा-सा टीला दीख पड़ा, मैं सहज

ही उसपर चढ़ गया। थकान जाती रही। इतनेमें बादल गर्जा और फिर बिजली चमकी; उससे ऐसा अपूर्व प्रकाश हुआ जैसा मैंने पहले कभी नहीं देखा था। एक मिनटके लिये आँखें चकाचौंध होकर मुँद गयीं। मैं वहीं रुक गया।

आँखें खुलीं, तो देखता क्या हूँ कि वर्षा कम हो रही है और नीचे हरी घासके मैदानमें अत्यन्त सुन्दर गौवें आनन्दपूर्वक चर रही हैं। मैंने ऐसी अपूर्व सुन्दर गौवें कहीं न देखी थीं, उन्हें देखते ही मैं कह उठा—'अहा! इन्हीं गौओंको हमारे प्यारे गोपाल चराते थे। वह भी अवश्य ही यहीं कहीं होंगे।' मैं इन्हीं विचारोंमें था कि हठात् कोई आन्तरिक शक्ति नीचे उतरनेके लिये प्रेरित करने लगी।

नीचे उतरते ही क्या देखता हूँ कि सामने थोड़ी ही दूरपर सात या आठ वर्षकी अवस्थाका, केवल लँगोटी पहने, हाथमें एक लकुटी लिये, वर्षा-जलसे स्नान किया हुआ श्यामवर्ण मन्द-मन्द मुस्कराता हुआ गोपबालक मेरी ओर देखता हुआ अँगुलियोंसे अपनी ओर मुझे बुला रहा है। मैंने उसके रुखे बदनको देखकर समझा कि यह किसी गरीब ग्वालेका लड़का है, इसे दो-चार पैसे दे देने चाहिये। परन्तु पैसे निकालनेमें बड़ी अड़चन थी, क्योंकि साथ ही नोट और रुपये भी थे तथा वहाँ एकान्त वन था। ऐसा विचारता हुआ, मैं दैवीशक्तिसे प्रेरित होकर उसके समीप बढ़ने लगा। अभी बीस ही कदमकी दूरीपर पहुँचा था कि मेरे पैर रुक गये और मैं वहीं खड़ा हो गया।

वह बालक मन्द-मन्द मुस्कराता हुआ बोला—'देखो तो तुम्हारी रुपयेकी गाँठ पूरी तो है। दो-चार पैसे माँगनेवाले यहाँ व्रजमें बहुत मिलेंगे, उन्हें दे देना। मैं तो इन गौओंके दूधमें ही प्रसन्न रहता हूँ।'

बालककी इस सुधामयी वाणीमें एक अद्भुत आकर्षण था, मैं मोहित हो गया। साथ ही मुझे यह विस्मय हुआ कि इस बालकको मेरे रुपयोंका पता कैसे लगा? फिर वह बालक बोला—'देखो, वह सामने मन्दिर दिखलायी दे रहा है। तुम्हारी नाव वहाँ पहुँच गयी है। तुम इधर कहाँ जा रहे हो? मथुराजीकी सड़क यहाँसे दूर है और यह भयावह स्थान है। इसलिये तुम शीघ्र ही यहाँसे चले जाओ।'

उस बालककी बोलीमें एक अपूर्व मधुरता थी, मैं मनोमुग्ध हुआ उसकी सुधासनी वाणी सुनकर अघाता न था, साथ ही मुझे इस घटनापर बड़ा ही विस्मय हो रहा था। मेरी दशा उस समय वर्णनातीत थी। फिर भी मैं चुप था। इतनेमें वह हँसता हुआ बालक मुड़कर जाने लगा। मैं भी 'किंकर्तव्यविमूढ़' उसके पीछे जाने लगा। मुझे पीछे आता देख वह बालक बोला-'जाओ, जाओ तुम्हारा इधर क्या काम है? जाओ अभी घूमो।'

इतना कहकर निमिषमात्रमें ही वह बालक उन गौओंके साथ अन्तर्ध्यान हो गया। मैं भौंचक्का-सा उस ओर देखता ही रह गया। अब न वह बालक था और न वे गौएँ। मैंने लाख खोजा, पर पता न पाया। आखिर हताश होकर नीचा सिर किये मैं पूर्वनिर्दिष्ट मन्दिरमें पहुँचा। मुझे ऐसा मालूम होता था, मानो किसीने मेरा सर्वस्व हरण कर लिया हो। प्रभुकी बड़ी विचित्र लीला है!

मेरे कुटुम्बी वहाँ पहलेसे ही पहुँचकर वस्त्र सुखा रहे थे। मुझे आते देखकर बोले-'तुम तो हमसे पहले पहुँचनेकी गरजसे चले थे, फिर इतनी देर कहाँ लगी?' मैंने 'रास्ता भूल गया' कहकर उन्हें उत्तर दिया।

वहाँ मन्दिरके पुजारियोंसे मैंने पूछताछ की कि क्या कोई बालक यहाँ गौएँ चराने आता है? परन्तु किसीने मुझे सन्तोषजनक उत्तर न दिया।

अब हम लोग उसी प्रकार फिर नावमें आकर बैठ गये। इस बार उस नावमें एक शान्त-चित्त महात्मा भी आकर बैठे हुए थे। मैं भी चुपचाप उन्हींके पास जा बैठा। महात्मा बड़े ही शान्त और उदार-चित्तके जान पड़ते थे। मैंने उन्हें प्रणाम करके आदिसे अन्ततक जो कुछ देखा था सब उनसे कह सुनाया। सुनकर महात्मा मेरी ओर देखकर हँस पड़े। उनकी हँसीमें बड़ी अपूर्वता थी। फिर बोले-'बच्चा! तुम्हें प्रभुकी लीलाकी एक झलकका दर्शन हो गया। तुम बड़े भाग्यशाली हो। देखो, प्रभुकी लीलाकी यह एक सच्ची झाँकी है, इसे तुम असत्य न मानना। व्रजमें सर्वत्र प्रभुकी लीला होती रहती है। आनन्दकन्द प्रभु सर्वदा यहाँ विचरण करते रहते हैं, परन्तु कोई ही महाभागी उनका दर्शन कर पाता है। सर्वान्तर्यामी

प्रभुने जो तुमसे कहा है कि–'तुम्हारा इधर क्या काम है? जाओ अभी घूमो' इसका अभिप्राय यही है कि तुम अभी प्रभुके पास जानेके अधिकारी नहीं हो, अभी संसार-चक्रमें भ्रमण करो।' इसलिये प्रभुकी आज्ञाका पालन करते हुए तुम उस प्रभुका सदा चिन्तन किया करो, फिर उसकी दया तुम्हारे ऊपर अवश्य होगी।

आठ बजे शामको हमारी नौका मथुरा पहुँची। महात्माजीसे मैंने लाख प्रार्थना की कि हमारे साथ ही चलकर रहिये। परन्तु वह न माने। फिर तो मथुरामें खोजनेपर भी वे हमें न मिल सके। और हमने निरुत्साह अपने परिवारके साथ वहाँसे घरके लिये प्रस्थान किया।

(कल्याण वर्ष, ७/४/७७९, एक शास्त्री)

******

विपत्तिमें सहायता

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई।
तदपि कहे बिन रहा न कोई॥

सं० १९५० की घटना है। वैशाखका महीना था, कुछ यात्री माहिष्मतीसे श्रीजगदीशजी जा रहे थे। मैं पहलेसे ही प्रवासमें था। चोली महेश्वरसे मैं भी इस दलके साथ हो गया, विद्यार्थी ब्रजलाल मेरे साथ था। हमलोग नर्मदाके तटपर घूमते हुए दक्षिणकी ओर मध्यप्रदेशके सघन वनमें चले गये। हमारे साथी बड़े सज्जन थे। पं० रामनारायणजी मुख्य पथ-प्रदर्शक थे। सबका सामान ढोनेके लिये एक मजदूर था। धोती, पुस्तक वगैरह आवश्यकीय वस्तुएँ हम लोगोंके पास थीं। सायंकालतक हम एक ऊँचे पर्वतकी तलेटीमें पहुँचे। यहाँ जंगल--विभागकी एक चौकी थी, उसमें दो मनुष्य रहते थे। सुहावना जंगल था, पास ही फलोंसे भरी सुन्दर हरित वृक्षश्रेणियाँ थीं और एक स्वच्छ जलाशय था। आज यहीं ठहर गये। स्नान, सन्ध्या और भोजनादिसे निपटकर सोनेके लिये वृक्षोंके नीचे बिस्तर लगा लिये। वृक्षोंकी हरियाली थी, ठण्डी वायु बह रही थी, ब्रजवासी पं० सरयूशरणजीने ब्रजभाषाके दो एक मनोहर पद्य सुनाये और फिर बड़े प्रेमसे जगन्नाथाष्टक गाने लगे। मुझे भी उमंग आ गयी, मैं और ब्रजलाल भी उनके साथ गानेमें तन्मय हो गये। कुछ समय

भगवत्-चर्चामें बीत गया।

चौकीदार बड़े भले आदमी थे। उन्होंने कहा कि 'कल आपलोगोंको इस पहाड़पर बीस मील चलना पड़ेगा। रास्तेमें दूकान या गाँव नहीं है, न कहीं पानी ही मिलेगा, फिर गर्मीका मौसम है, अतः आपलोग सबेरे पाँच बजे नित्यकर्म, जलपान आदि करके अपने साथ जल लेकर यहाँसे रवाना हो जाइयेगा। भयङ्कर जंगल है, सावधानीसे जाना पड़ेगा।' यह सुनकर सब चुपचाप हो सो गये। प्रातःकाल सबने स्नानादि करके जलके लोटे भर लिये और 'जय जगदीश' कहकर यात्रा आरम्भ कर दी।

पर्वतपर पगडंडी गयी थी, दोनों ओर ढालू जगह थी। हमलोग दो-चार मील तो हँसी-मजाकमें ही चढ़ गये। पर अब आठ बज चुके थे, कड़ी धूप नहीं थी, पर दोपहरकी आनेवाली धूपको सोचकर बलवान् साथी चुपचाप आगे बढ़ने लगे। साथियोंकी किसको खबर? सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंसे पर्वतके पत्थर तपने लगे थे, वृक्षोंके भी पत्ते गिर रहे थे, कहीं शीतल छाया नहीं थी। गरम लू चल रही थी। सब पसीनेसे तर हो रहे थे। सबको अपनी लगी थी। मैं और ब्रजलाल सबसे पीछे रह गये। साथी मीलों आगे निकल गये, इस समय हमलोग शायद दस मील चढ़े थे।

पैर आगे नहीं बढ़े, भारी हो गये। दोपहरका समय था। ब्रजलाल घबड़ाकर एक पलास-गाछके नीचे बैठ गया, वह मुझसे भी कोमल था। अब पुस्तक वगैरहको एक तरफ रख मैं भी वहीं बैठ गया। जल प्रायः आधा पी चुके थे। एक कदम आगे बढ़ना कठिन ही नहीं, दुष्कर-सा था। ब्रजलाल थकावटसे वहीं सो गया। उस विशाल वनमें मैं अकेला जग रहा था। पर्वतपर कहीं योजनों लम्बी झील दिखलायी पड़ रही थी तो कहीं दावानलका धुआँ बड़े जोरसे उठ रहा था। बीच-बीचमें गुफाओंसे गरजनेकी आवाज सुन मैं चौंक पड़ता था। हम दोनोंके पास तीन सौके करीब रुपये कमरमें बँधे थे। मैं इस कठिन यात्राका अनुभवकर चिन्तित-सा हो रहा था। भयङ्कर वनमें न किसी पथिकके दर्शन, न कोई ढाढ़स देनेवाला था, हम दो नये अनजान यात्री पड़े थे। अभी पाँच कोस रास्ता चलना था, जल लानेका कोई उपाय नहीं, हमारे

पास थोड़ा-सा जल बचा था, भूख बड़े जोरोंसे लग रही थी। चारों ओर केवल वन और नीलाकाश दिखलायी पड़ता था। मेरी चिन्ता बढ़ रही थी। इतनेमें सामनेसे उसी पगडंडीपर एक भयानक भील कुल्हाड़ी लिये आता दिखलायी पड़ा। उसकी आँखें लाल थीं और चालमें बड़ी तड़क-भड़क थी। मैंने सोचा, जरूर यह डाकू है। ब्रजलालको धीरेसे जगाया और कहा—'यह देखो, लुटेरा आ गया, अब हम नहीं बचेंगे।' ब्रजलाल घबराकर काँपने लगा। मैं भी धैर्यच्युत हो गया था। वह हमारे नजदीक अपनी पीठपरकी गठरी नीचे रखकर बैठ गया। ब्रजलालने कहा—'भाई! हमारे पास जो है वह ले लो, पर हमें जानसे मत मारो।' यह सुनकर वह मुस्कराया और बोला—'हमें थोड़ा पानी पिलाओ।' मेरे होश उड़ गये, क्योंकि यह थोड़ा ही पानी ही हमारा जीवन था, पर भगवान्का भरोसाकर मैंने पानी पिला दिया। यही खैर थी कि दूसरे लोटेका पानी उसने नहीं माँगा। अब उसने अपनी गठरी खोली। उसमें केले थे। मुझे और ब्रजलालको आठ-आठ केले देकर उसने कहा—'खा लो।' हम भूखे थे ही, उसकी यह प्यारी बोली सुन, भगवान्को अर्पणकर केले खा गये। तृप्तिके साथ ही आत्मामें शान्ति मालूम हुई। फिर दूसरी बार उसने मुस्कराकर उतने ही केले हमें और दिये और कहा 'जब भूख लगे तो इन्हें खा लेना। डरो मत, वह देखो 'चीखलता' पास ही है, वहाँ जल मिलेगा। तुम्हारे चार साथी आगे कुछ दूरपर बैठे हैं। उनमें पं० रामनारायणने मुझे कहा है कि दो लड़के तुम्हें रास्तेमें मिलेंगे, उन्हें जल्दी भेज देना, अतः जाओ, तुम्हारे साथी शीघ्र ही मिल जायँगे।' मैंने उसकी दयालुतापर मुग्ध हो कुछ भी कहनेका साहस नहीं हुआ। वह हमें समझाकर चलता बना और थोड़ी दूर चलनेके बाद फिर दिखलायी नहीं पड़ा।

अब हममें बल आ गया। निर्भय-से हो गये। कुछ विनोदकी बातें भी होने लगीं। भूख-प्यास मिट गयी। झपाटेसे चढ़ने लगे। लगभग एक बजे चले थे और पाँच बजेतक ऊपर चढ़ गये। वहाँ शिखरपर एक पुराना किला था और पास ही फला-फूला गूलरका वृक्ष था। वहाँ पहुँचते ही पेड़पर कोलाहल सुनायी पड़ा। वे कह

रहे थे—'आओ भाई, आपलोग आ गये? हमलोग बड़े हैरान थे कि इतनी देर कहाँ हो गयी?' बोलीसे व्रजलालने साथियोंको पहचान लिया। वे गूलर खा रहे थे। पं० रामनारायणजीने कहा—'क्या करें, प्यासके भयसे हम आगे चले आये। आप पीछे रह गये, क्षमा करें। भूखे होंगे, हम फल फेंकते हैं इन्हें खाइये, यहाँसे गाँव दो मील दूर है। अभी थोड़ा विश्राम करके चलेंगे।'

ये बातें सुन व्रजलालने हँसकर मुझसे कहा—देखो भाई, हमें अनजान भयानक जंगलमें छोड़ ये यहाँ गूलरके फल खा रहे हैं और फिर जोरसे कहा—'पण्डितजी! आप तो उपदेशक हैं फिर इन भुनगोंसे भरे गूलरके फलोंको कैसे पावन कर रहे हैं?' यह सुन पण्डितजी जरा लज्जित-से हो गये और बोले—'भाई! भूखा क्या पाप नहीं करता? फिर भी हम फलको तोड़कर फूँकसे भुनगोंको उड़ा देते हैं और फिर खाते हैं, तुम भी भूखे हो, कुछ खा लो न?' व्रजलालने मुझको इशारा किया और दोनोंने केलेकी फली निकालकर दिखलायी कि हमारे पास तो ये हैं, हम क्यों गूलर खाने जायँ? खूब केले खाये हैं, क्या आपको नहीं मिले?

पं० रामनारायणजी नीचे उतर आये। साथी भी उनके पीछे-पीछे आ गये। आते ही उन्होंने पूछा—'ये केले कहाँ मिले? रास्तेमें तो जंगलके सिवा और कुछ भी नहीं था।' मैंने कहा—'आपने जिस मनुष्यसे सन्देश कहला भेजा था, उसीने आठ-आठ केले हमें खिलाये और उतने ही हमारे साथ बाँध दिये। ये रक्खे हैं।' मेरी बात सुन सब आश्चर्यचकित हो गये। कहने लगे—'जगदीशकी शपथ, रास्तेमें हमें कोई मनुष्य नहीं मिला और न हमने किसीसे सन्देश कहलवाया। आप मजाक कर रहे हैं।'

मैंने पं० रामनारायणजीका हाथ पकड़कर कहा—'पण्डितजी! क्या मैं आपसे मजाक कर सकता हूँ? जगदीश-यात्रामें आपसे जो कुछ कहा है बिल्कुल सच है।' सुनकर पं० सरयूशरणजी स्तब्ध-से हो गये! इस बातका सबपर प्रभाव पड़ा। सभी गहरे विचारमें डूब गये। मैं तो अभीतक उसे जंगली पथिक समझ रहा था, अब मेरा हृदय भी डावाँडोल होने लगा। रास्तेमें साथियोंसे न मिलकर उसने उनकी संख्या और नाम कैसे बतला दिये? प्रभुकी अद्भुत

लीला थी।

इसी समय पं० सरयूशरणजीने रोते हुए केले माँगे, मैंने सोलहों केले उनके सामने रख दिये। सबने दो-दो केले उठा लिये, पं० सरयूशरणजी तो छिलकेसहित खा गये। बाकी केले हमारे लिये बच गये।

मेरे हृदयमें हिलोरें उठने लगीं, हृदय भर आया। वियोगसे रहा नहीं गया, मैं रो पड़ा और कहने लगा—वे दयासिन्धु केले खिलानेवाले कौन थे, जिन्होंने जल पीकर हमें ढाढ़स बधाया, नयी शक्तिका सञ्चार कर इस पर्वतपर पहुँचा दिया। वे पतितपावन प्रभु कहाँ गये? मैं बार-बार इसी प्रकार कहकर रोने लगा। पं० सरयूशरणजीने मुझे हृदयसे लगाकर कहा—'वे दयासागर थे, घट-घटकी जाननेवाले अन्तर्यामी प्रभु थे। हमलोगोंने आप दोनोंको अकेले छोड़कर जो अपराध किया है उसे क्षमा करो और अब कुछ न बोलो।'

मैं चुप हो गया। बाकी केले मित्रोंमें बँट गये। मैंने प्रेमवश एक रख लिया था। वह बहुत दिनोंतक सूखता रहा, पर अब चालीस वर्षतक कैसे रहता? फिर भी उसका चूर्ण एक डब्बीमें अब भी सुरक्षित पवित्र स्थानमें रक्खा है। हमारे दुःखमें सहायता पहुँचानेवाले ये कौन थे, यह तो प्रभु ही जानते हैं।

(कल्याण वर्ष, ७/३/९५७, गोस्वामी श्रीलक्ष्मणाचार्यजी वाणीभूषण)

******

रोगका नाश

लालूप्रसाद यादव हिन्दी मिडिल स्कूल बीना इयवाके हेडमास्टर हैं। इनकी धर्मपत्नीके गलेमें कण्ठमालका रोग उत्पन्न हुआ। अनेक आयुर्वेदिक तथा ऐलोपैथिक ओषधियाँ लगायी गयीं, पर कुछ भी लाभ न हुआ। निदान खबर मिली कि जरुआखेड़ामें एक मनुष्य इस रोगको झाड़ता है, (जरुआखेड़ा बीना जंकशनसे चौबीस मीलकी दूरीपर बीना कटनी लाइनपर रेलवे स्टेशन है) हेडमास्टर साहब अपनी धर्मपत्नीको वहाँ ले गये। झाड़नेवाले महाशयने एक मटका और एक काँसेकी थाली मँगायी और लकड़ीकी एक पटियापर सर्पोंके चित्र बनाकर और स्त्रीको उसके सम्मुख बिठाकर प्रयोग

करना शुरू किया। ये भाई जिस समय झाड़ा-फूँकी करते थे, उस समय रामायणके पद गाते थे। पासमें मटकापर काँसेकी थाली रक्खी रहती थी। ज्यों-ज्यों गान होता था; त्यों-त्यों थाली पात्रपर आप-ही-आप उछलती रहती थी। एक-दो दिन तो कुछ न हुआ पर पीछे रोगीको बेहोशी होने लगी; वह सिर घुमावे, पर बोले नहीं। मन्त्र-प्रयोग होनेपर जब शान्ति होवे, तब मास्टर साहब नित्य पूँछें कि क्या हुआ था, कैसा मालूम होता था, पर रोगी यही कहे कि मुझे एकाएक बेहोशी हो जाती है और कुछ मालूम नहीं रहता।

झाड़नेवाले महाशय हताश न हुए। उन्होंने कहा कि रोगी अवश्य बोलेगा। आप एक महीनेकी छुट्टीका प्रबन्ध कर लें। मास्टर साहबने एक माहकी छुट्टी ली। यह बात जरूर हुई कि जिस दिनसे झाड़ना शुरू हुआ था रोग क्रमशः क्षीण होता जाता था।

सतरहवें दिन रोगीकी बेहोशीका रूप बदला और उस शरीरमें वह आत्मा जो रोगरूपमें कष्ट दे रही थी, बोली कि 'मैं इस स्त्रीके प्राण लेकर छोड़ूँगा। बहुत कुछ कहने-सुननेपर उसने कहा कि यह लड़की पूर्वजन्ममें भेलसाकी रहनेवाली एक ब्राह्मणी थी, इसका नाम मुला था (भेलसा-रियासत ग्वालियरमें जी०आई०पी० रेलवेका स्टेशन है।) इसके कई लड़के थे। मैं सर्प हूँ, मेरा भेलसामें चबूतरा है जो ठाकुरबाबाके नामसे प्रसिद्ध है। एक दिन मैं इसके घरमें घूम रहा था, कि यह दूध लगाने पौरमें आयी, मैं एक सूराखमें घुस गया, पर इसने अपने लड़कोंको इशारा किया और उन्होंने सूराखमें लकड़ी डाल-डालकर मुझे घायल कर दिया। आखिर मैं एक घासके ढेरमें घुसा और इसने उसमें आग लगवा दी।'

बहुत कुछ अनुनय-विनय करने और सात गरीब मनुष्योंको भोजन देनेके वादेपर सर्पने वचन दिया, कि मैंने स्त्रीको छोड़ दिया। उसी दिन कण्ठकी सारी फुन्सियाँ सूख गयीं।

मास्टर साहब इस पूर्वजन्मके सुने हुए वृत्तान्तका मिलान करनेके लिये स्वयं भेलसा गये और वहाँ ठाकुरबाबाका चबूतरा पाया। ब्राह्मणीका घर जरूर रहा, पर वहाँ कोई न मिला।

भगवान् श्रीरामजीने बाली-वधके पूर्व सुग्रीवके कहनेपर सप्त-ताल-वृक्षका एक बाणसे भेदन किया था। ये सप्त-ताल नागकी

अस्थिमेंसे फूट निकले थे। और श्रीरामजीकी दयासे उन्हें मोक्ष प्राप्त हुआ था।

झाड़नेवाले महाशय इसी राम-नाम या राम-भजनसे झाड़ा-फूँकी करते हैं। इस युगमें कण्ठके आस-पास एड़ी-टेढ़ी पंक्तिमें ग्रन्थि निकलना तथा ऊपरकी प्रत्यक्ष भोगी हुई विधिका मिलान, सर्पको सतानेसे कण्ठमालसे ग्रस्त होना तथा एक या कई जन्मका शत्रु या मित्रभाव बराबर प्राप्त होते रहना सिद्ध होता है।

(कल्याण वर्ष ७ संख्या ११, श्रीशिवबालकजी)

******

भक्त दानसाय

भक्तोंकी अपार महिमा है। उनकी लीला वे ही समझ सकते हैं जिन्होंने कभी उस पतितपावन प्रभुकी झाँकी देख पायी है। भगवद्भक्तोंसे ही मनुष्यको भगवान्‌की एक झलक मिलती है। आज मैं पाठकोंको एक ऐसे भक्तकी कथा सुनाना चाहता हूँ जिन्होंने अपनेको परमात्मामय बना डाला था। उनका नाम भगत दानसाय था। आपका जन्म अडंगपुर ग्राममें हुआ था। आपके माता-पिता अकस्मात् छोटी उम्रमें ही मर गये। तबसे आपकी बुआजीने बड़ी सावधानीसे इनका पालन-पोषण किया था, परन्तु यह सहारा भी शीघ्र उठ गया। जिस समय भगतजीकी बुआ मरीं उस समय इनकी आयु १७ वर्षकी थी। आपके हृदयमें सच्चे संरक्षक और नित्य आधारकी प्राप्तिकी कामनाका अङ्कुर फूटा। कुछ दिनों बाद आपने एक जमींदारके यहाँ नौकरी कर ली और वहाँ आप गौएँ चरानेके काममें नियुक्त किये गये। आपने बड़ी ही ईमानदारीके साथ अपना कार्य-भार सँभाला। इसके साथ-ही-साथ जहाँ और ग्वाले व्यर्थकी बातोंमें समय बिताते थे, ये भगवद्भक्तिके भाँति-भाँतिके भजन गाया करते थे। एक बार ऐसा हुआ कि आपकी गाय एक खेतमें चली गयी। इसपर खेतके स्वामीने आकर इनकी कमरमें एक सोटा जमा दिया और झिड़ककर कहा कि तू यहाँ ढोंग रचे बैठा है उधर गायोंने मेरा खेत नष्ट कर दिया। इसपर दानसायको अत्यन्त ग्लानि हुई और वह अपनी भूलके प्रायश्चित्तस्वरूप अगले दिनभर नदीमें

एक पैरसे खड़े रहे। और रातको भी उन्होंने वहीं रहनेका निश्चय किया। जिसपर सब लोगोंने बहुत समझाया-बुझाया, पर वे अपने निश्चयपर दृढ़ रहे। उन्होंने वह शीतभरी रात्रि उसी नालेमें खड़े-खड़े व्यतीत कर दी। अगले दिन प्रातःकाल जब उस खेतवालेको यह सब हाल मालूम हुआ तो उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसने अति विनीतभावसे इनसे क्षमा-याचना की। उन्होंने कहा, भाई! मैं जानता हूँ कि किसानको अपनी खेती कितनी प्यारी होती है। इसलिये मुझे इस व्यवहारके प्रति कोई शिकायत नहीं है; मैंने तो अपनी ही भूलका सुधार किया है। खेतवालेपर इनकी इस वृत्तिका बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने इन्हें एक बछिया दान दी।

कुछ दिन बाद दानसायने नौकरी छोड़ दी और जङ्गलमें एक कुटिया बनाकर अपना और अपनी गौका पेट पालने लगे। गाँवमें एक पण्डितजी रहा करते थे, उनसे थोड़ा-सा अक्षराभ्यास करके इन्होंने रामायण पढ़ ली और उसीमें दिनभर मस्त रहने लगे। जब आप रामायणका पाठ करते तो गौ आकर सामने माथा टेक देती और भगतजी भी उसके सींगोंपर रामायण रखकर निरन्तर घण्टों पाठ किया करते। आसपाससे भी कुछ लोग सुनने आ जाते जिससे वहाँ अच्छा सत्सङ्ग हो जाता था। यह अच्छे स्वार्थत्यागी थे। यदि क्षुधानिवृत्तिके पश्चात् भोगादि सामग्री दक्षिणामें आती तो पहले तो लेते ही नहीं और यदि लेते भी तो वह बन्दरों या गौओंको खिला देते। कहते कि मैं उतना ही अन्न चाहता हूँ जो आजके लिये हो जाय, कलके लिये भगवान् कल देंगे। संग्रह करके क्या होगा? अपनी गौ तकपर यह अपना पूर्ण स्वामित्व नहीं मानते थे। उससे जो बच्चे पैदा होते वे भक्तजनोंमें बाँट दिये जाते थे। इनके सम्बन्धमें अनेक अद्भुत बातें सुनी गयी हैं।

कहते हैं कि एक ग्रामीणके घरमें एक बार-बार एक काला साँप दिखायी दिया। गाँवके लोगोंने उसे मारना चाहा, इतनेमें भगत दानसाय इधरसे आ निकले। उन्होंने लोगोंको अलग हटाकर उसे अपनी भुजापर लटका लिया और फिर दूध पिलाकर जङ्गलमें छोड़ दिया। इस घटनाका लोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा।

एक बार गाँवमें अनावृष्टिसे घोर अकाल पड़ा। लोगोंने भगत

दानसायसे प्रार्थना की कि किसी प्रकार इस सङ्कटसे मुक्त कीजिये। इसपर इन्होंने कहा कि 'इस वर्ष जो तुमलोगोंने दूसरे गाँववालोंका धन चुरा लिया था यह उसीका फल है। यदि उसे तुम लौटा दो तो विपत्ति टल जाय।' पर अपना दोष स्वीकार करना क्या साधारण बात है। लोगोंने कहा 'बाबाजी कैसी बातें करते हो। ऐसा भी भला हो सकता है?' भगतजी भी ऐसे वैसे आदमी नहीं थे। आपने मुस्तैदीसे काम लिया। एक खास जगहको खुदवाकर उसमेंसे चोरीका धन निकालकर सामने रखवा दिया। बेचारे अपराधी लज्जावश जमीनकी ओर देखते रह गये। वह सारा धन जहाँ-का-तहाँ लौटा दिया गया। कालान्तरमें वर्षा हुई और लोग भगत दानसायके गुण गाने लगे।

सुनते हैं कि एक बार एक मनुष्यने निवेदन किया कि मेरा एक ऊँट गुम हो गया है यदि आप उसका पता बता दें तो बड़ी दया हो। भगत दानसाय हँसकर बोले कि 'मैं कोई योगी तो हूँ नहीं, भगवान् चाहेंगे तो तुम्हारा ऊँट इस पहाड़ीके उस ओर एक वृक्षमें अटका हुआ मिलेगा।' ऊँटवालेने वहाँ जाकर देखा तो बात बिल्कुल सच निकली।

आपकी ख्याति सुनकर लोग दूर-दूरसे आते थे और दर्शन पाकर कृतार्थ होते थे। एक दिन प्रातःको दर्शकोंने देखा कि भगतजी सर्दीसे बिल्कुल ऐंठ गये हैं। खूब टटोलकर देखा, पर साँसका पता न लगा। आखिर उन्हें मरा समझ एक नालेमें डाल दिया; पर अगले दिन भगत दानसाय गाँवकी गलियोंमें पूर्ववत् विचरते दिखायी दिये। लोगोंने उनके मरनेकी बात फैलानेवालोंकी खूब हँसी उड़ायी।

फिर एक दिन भगतजी बोले, 'भाई, मैं बूढ़ा हो चला हूँ। न मालूम कब इस संसारसे कूच कर जाऊँ?' वह इतना कहकर ही नहीं रहे, दूसरे दिन उन्होंने सचमुच ही शरीर छोड़ दिया। लोगोंने उनकी अर्थी-वर्थी सजायी और दाह-कर्मके लिये श्मशान ले गये। परन्तु सब तैयारी करनेके बाद ज्यों ही चितामें आग जलायी कि एकाएक चिता हिल उठी। यह अनोखी बात देखकर गाँववाले मारे भयके वहाँसे भाग गये। परन्तु लोगोंको अगले दिन ज्ञात हुआ कि चिता स्थलपर चिताका चिह्नतक नहीं है। लोगोंने समझा कि भगतजी भूत हो गये, परन्तु कुछ कालके अनन्तर भगतजी अपनी

गौसहित पुनः उसी कुटियामें देखे गये। लोगोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा, वे कहने लगे, 'महाराज! यह लीला समझमें नहीं आती।' उत्तर मिला, 'भाई, मैं तो भगवद्भक्तिमें लीन होता हूँ और तुमलोग मुझे मरा समझ लेते हो।'

गत वर्ष भक्तप्रवर दानसाय सदाके लिये इस असार-संसारका त्याग कर गये।

बोलो भक्त तथा उनके भगवान्‌की जय!

(कल्याण वर्ष ७/१२/१३५२, बाबा श्रीरामेश्वरदासजी बेदी)

******

कृपाके विलक्षणरूप

(क) संवत् ८८ के श्रावण-मासमें एक पागल अवधूत यहाँ पधारे, उन्हें प्रायः सभी पागल कहकर पुकारते। अवस्था देखनेमें तीस-बत्तीसकी होगी। रंग गेहुँआ, चेहरा प्रकाशयुक्त, होंठ लाल, ब्रह्मचर्यसे पूर्ण, दुपहरीमें आकर यहाँ खड़े हो गये। क्षेत्रसे लेकर भिक्षा की। यहाँसे चार कोसपर ब्योरऊ गाँवके चोखेसिंह पहलवान कभी-कभी मेरे पास आते थे। वे ब्रजकी यात्राके मेरे मित्र थे। वे भी यहीं थे। उसी समय हरद्वारपुरका एक लोधी आया और कहने लगा 'मेरी स्त्री बहुत बीमार है, कुछ दवा हो तो दे दो, उसकी पसलीमें बड़ा दर्द है।' पागल महाराज भी वहीं बैठे थे, लोधीकी बात सुनकर वह अचानक बोल उठे 'जा, देख अब दर्द नहीं होता।' लोधीने उसे यों ही पागलकी बात समझी और उसपर कुछ ध्यान नहीं दिया। मैंने कहा, 'महात्माकी बात है, तू घर जाकर एक बार देख।' वह घर गया और तुरन्त ही वापस लौटकर बोला, 'उसको आराम है, पहले दाहिनी पसलीमें दर्द था अब थोड़ा-सा बाईं पसलीमें रहा है।' (उसके दर्दका बहुत दिनसे इलाज हो रहा था, पर फायदा नहीं होता था) यह सुनकर पागलने फिर कहा, 'जा देख, अब दर्द नहीं है।' लोधा फिर घर गया और आकर कहने लगा, 'आराम है।' लोधीने पागलके चरण पकड़ लिये। पागल ठहाका मारकर मस्त हँसी हँसने लगा और बोला 'प्यारे कृष्ण! ऐसा धोखा न दिया करो, तुमने मेरे मुँहसे क्या निकलवा दिया?'

मेरे मित्र पहलवान कहने लगे, 'महाराज! उस प्यारे कृष्णके हमें भी दर्शन कराइये, पर हम देखेंगे चतुर्भुजी रूप।' मैंने भी कहा 'महाराज, इन्हें करा दो, फिर हमें भी कराना।'

मेरे मित्र पहलवान नित्य पचास हजार नाम-जप किया करते थे। वे आश्रमके नीचे गंगामें पूज्य श्रीअच्युत मुनिजी महाराजकी जो नौका खाली खड़ी थी उसमें भजन करने चले गये। एक घण्टे बाद पागल भी वहाँ पहुँचा। पहलवान नौकाके कमरेमें बैठे सन्ध्या कर रहे थे, पागलने जाकर कमरेके किवाड़ बन्द कर दिये, उस समय पहलवानको श्रीकृष्णकी कई रंगोंकी एक अति भयानक आकृति दीखने लगी। (पहलवानके बतलाये हुए उस समयके रूपकी याद आती है तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।) पहलवान उसे देखकर डर गये और लगे भागने। पागलने उनके दोनों पहुँचे पकड़ लिये और हाथ पीछे करके उन्हें जकड़कर बैठा लिया। पहलवान बिल्कुल बेहोश-से हो गये। तब पागलने उन्हें छोड़ा। थोड़ी देरमें जब उन्हें होश आया तो वे थर-थर काँपते मेरे पास आये और वहाँका वृत्तान्त कहने लगे। मैंने उन्हें डाँट दिया कि 'खबरदार, ऐसी बातें कहने योग्य नहीं हैं, तुम्हारे धन्य भाग्य हैं जो यह बात नसीब हुई।'

पहलवान भाँग पीया करते थे, जब भागने लगे थे तो पागलने भाँगकी गोली पहलवानसे वहीं छीन ली थी। पागल वहाँसे चले गये और शामको भाँग पीये हुएकी-सी स्थितिमें आकर यहाँ पक्के सीमेण्टके चबूतरेपर खड़े हो गये। पहले मैंने कहा था, 'महाराज! इनको दर्शन करा दो, फिर हमें भी कराना।' पागल पहलवानसे कहने लगे 'अगर तू रहा-सहा चतुर्भुजी देखना चाहता है तो, 'या तो तू नहीं होगा या तेरा पुत्र नहीं होगा!' मुझसे कहा, 'तू भी दर्शन करना चाहता है?' मैंने कहा, 'आप नाखुश न हों, हमें नहीं चाहिये। हम तो ऐसे ही भले हैं।' पागल बोले, 'अच्छा, देखना चाहता है तो पहले श्रीकृष्णके कालीनागको देख।' देखते-ही-देखते अकस्मात् एक बड़ा भयंकर काल सर्प आया (वहाँ पक्के सीमेण्टके चबूतरेपर सर्प होनेकी या आनेकी किसी प्रकार भी सम्भावना नहीं हो सकती) और मेरी जाँघतक दोनों पैरोंमें लिपट गया। मैं भौंचक

रह गया और एकदम झटका देता हुआ तड़पकर दूर जा खड़ा हुआ। सर्प मेरे पैरोंसे छूटकर वहीं पास ही देखते-ही-देखते लुप्त हो गया। बादमें देखा भी, पर कहीं पता नहीं लगा! पागल उस समय चिल्लाकर बोले, 'देखा, कृष्णका कालीनाग, और करेगा कृष्ण-दर्शन?' मैंने कहा, 'नहीं महाराज! आप क्रोध न करें, मुझे कृष्ण-दर्शन नहीं चाहिये।'

मुझे बुखार हो गया, इसके चौथे दिन मैं और पहलवान रास और दर्शनोंकी इच्छासे वृन्दावनके लिये चल पड़े। वृन्दावन जाते समय मुझे १०२ डिग्रीका ज्वर हो गया। हम दोनों वृन्दावनके निकट जा रहे थे, देखते हैं, जयपुरवालोंके मन्दिरके पास एक पेड़की जड़में वही पागल धोक दिये पड़े हैं। मैंने कहा 'पागल तो यह पड़े।' खैर, हमलोग वृन्दावन पहुँचे। दो-तीन दिन रास देखा, टिकारीवाली रानीके मन्दिरमें छोटेलालकी मण्डलीका रास होता था। हमलोग उसी मण्डलीका रास देखते। तीसरे दिन वहाँ ऊखल-बन्धन-लीला थी। हम बड़े प्रेमसे सुन रहे थे, उसमें एक बात बड़ी उत्तम और विलक्षण आयी, जिसके कारण हमारा हृदय द्रवित होने लगा। जब मैया यशोदा व्रजचन्दलालको पकड़नेके लिये दौड़ती है और लीलाधर लीला करते हुए हाथ नहीं आते, तब मैया श्यामसुन्दरको खड़े रहनेके लिये सत्ययुगके भक्तोंकी शपथ दिलाती है, पर प्रभु हाथ नहीं आते, फिर त्रेताके भक्तोंकी शपथ देती है तो भी उन्हें नहीं पकड़ पाती, फिर द्वापरके भक्तोंकी शपथ देती है, इसपर भी वे हाथ नहीं आते, अन्तमें कलियुगके भक्तोंकी शपथ देती है। जिस समय भक्तोंकी शपथ महाराज सुनते हैं, उसी समय खड़े हो जाते हैं और मैया पकड़कर उन्हें ऊखल बाँध देती है। फिर ऊखलमें घरके सामनेके वृक्षोंमें अटक जाता है। यह लीला हो रही थी। भगवान्‌ने दोनों वृक्षोंको झटका देकर तोड़ा और उनमेंसे प्रकट हुए यमलार्जुन भगवान्‌की स्तुति करने लगे। उस समय भगवान्‌का चतुर्भुजरूप था। यमलार्जुन यह स्तुति कर रहे थे—

धन्य मुनिवर शाप दीनो अति अनुग्रह सो कियो।
जासु सुर-ब्रह्मादि दुर्लभ नाथ! तुम दर्शन दियो॥
अब कृपा करि प्रभु देहु यह वर चरण-पंकज मति रहे।

जन्मैं जहाँ निज कर्म वश, तहँ एक तुम्हरी रति रहे॥

जिस समय यह 'धन्य मुनिवर शाप दीनो' शब्द कहे जा रहे थे, उस समय मैंने पहलवानकी तरफ मुड़कर देखा कि मेरे और पहलवानके सिरके ऊपरसे पीछेसे खड़े होकर पागल हाथ बढ़ाये हुए भगवान्के चतुर्भुजरूपकी ओर अंगुलीका इशारा कर रहे हैं और कहते हैं 'ले, कर ले दर्शन चतुर्भुजरूपके।' रास समाप्त हुआ तो पागल बोले, 'तूने हमें इतनी दूरसे परेशान किया।' यह कहकर वे तो चले गये—इधर रास समाप्त होते ही पहलवान बे-सुध-से हो गये, वे प्रेममें विभोर हो गये, उस दिन पहलवानको बड़ा ही आनन्द आया। पहलवानने कहा कि 'आज कहीं ऐसा भाग्य हो जाय कि नाथ (जो रासमें चतुर्भुज भगवान् बने हुए थे) के चरणारविन्द इस मस्तकपर लग जायँ।'

रास समाप्त होनेपर श्रीठाकुरजीको मैं ही अपने कन्धेपर चढ़ाकर निवास-स्थानपर ले जाया करता (मैंने बहुत बड़ी खोज-बीनके बाद ब्रजभरकी सभी रास-मण्डलियोंमेंसे चुनकर इस मण्डलीके श्रीठाकुरजी तथा महारानीजीके प्रति अपना सबकुछ अर्पण किया था) उस दिन पहलवानके कन्धेपर बैठनेको श्रीठाकुरजीसे प्रार्थना की। श्रीठाकुरजी उछलकर पहलवानके कन्धेपर बैठ गये। पहलवान उनके दोनों चरणकमलोंको अपने हाथोंसे थामें अपार आनन्दमें मग्न होते हुए उन्हें निवास-स्थानपर ले गये। उस समयकी पहलवानकी आनन्दमयी स्थिति देखने योग्य थी। वहाँसे पहलवान मेरे पास डेरेपर आये और शेष रात्रिभर उनको नींद नहीं आयी, हँसते-हँसते प्रभात हो गया। दूसरे दिन हम दोनों मैरियाको चल दिये। रास्तेमें मुझे भी ज्यादा तकलीफ हो गयी। मैं तो गाड़ीमें आया और पहलवान पैदल आये। यहाँ आकर पहलवानको छः लंघन हुए। परन्तु वह यहाँ मन्दिरमें जो नित्य कीर्तन हुआ करता था, उसमें जरूर जाते। एक दिन वह बोले, एक बालिश्तभर ऊपरतक पैरोंकी जान निकल गयी है। दूसरे दिन बोले, दो बित्ता पैर निर्जीव हैं। तीसरे दिन तीन, चौथे दिन चार, पाँचवें दिन पाँच, इस तरह कहते-कहते छठे दिन कहने लगे, अब सारे शरीरके प्राण निकले जा रहे हैं। अन्तिम समय कहने लगे कि 'जिसके लिये हम यह 'जी' लाये थे, वह

हमें मिल गया। अब यह शरीर रहे या न रहे। कोई बात नहीं।' अन्त समयमें मुझसे बोले 'भैया, राधारमणसे हमारा चरण छूना कहना और कहना हमारे हेतु वे फिर राधारमण बनेंगे, हम फिर उन्हें इसी भावमें देखेंगे।' अन्त समयमें यह पद कहा—

जिस हालमें जिस वेशमें जिस देशमें रहूँ।
राधारमण राधारमण राधारमण कहूँ॥

इस प्रकार उस मनमोहनके प्रेममें मतवाले भक्तने अपने प्राण विसर्जन कर दिये।

उनकी स्थिति कुछ ऐसी हो गयी थी कि वे सोतेमें, जागतेमें प्रायः प्यारे मनमोहनकी अनेक लीलाएँ देखा करते। ऐसे-ऐसे पद सुनाते जो किसी पुस्तकमें देखनेको नहीं मिलते। यहाँतक कहते कि प्यारेके आनन्दमेंसे मुझको कोई जगा देता है और कहता है कि 'उठकर भजन कर।'

कोई कहता, 'भजन क्यों नहीं करते?' तो कहते, 'भजनका जो फल है, वह प्यारे मेरे सामने खड़े हैं।' रास देखनेके बाद वे आठ नौ दिन जीये। वे कहते, एक बड़ा निर्मल शीशा है, उसके दायें-बायें सूर्य और चन्द्रमा हैं, बीचमें प्यारेकी मधुर मूर्ति है। व्रजमें रहते, तबतक वे प्रायः इसी पदको गाते रहते—

'माथे पै मुकुट देख, चन्द्रिका चटक देख,
छबिकी लटक देख, रूपरस पीजिये।'

(ख) एक ब्रह्मचारी आये थे, उन्होंने यहाँ आकर चालीस दिनोंका पुरश्चरण किया। क्षेत्रमें भोजन पा जाते और सारा समय गङ्गाकिनारे व्यतीत करते। डेढ़ मासके बाद जब अनुष्ठान समाप्त हो गया, तब वे यहाँसे व्रज-यात्रा जानेका विचार करने लगे। खर्चा उनके पास कुछ नहीं था। मैंने उन्हें एक रुपया दिया और कहा 'आप अलीगढ़ पैदल जाइये, वहाँसे रेलमें बैठ जाइयेगा।' वह अलीगढ़ तो गये नहीं, राजघाट गये और स्टेशनपर जाकर उन्होंने अलीगढ़तककी टिकट लेनेका विचार किया, इतनेमें एक आदमी आया और बोला, 'महाराज! मथुरा तो नहीं जाओगे? मेरे पास एक टिकट है।' वह बोले 'हमारे पास इतने दाम नहीं।' परन्तु वह आदमी बिना दाम लिये ही टिकट देकर चला गया। उनकी भावना ऐसी थी कि

सम्पूर्ण तीर्थ गिरिराजके दर्शन करनेपर भी यदि भगवान् नहीं मिले तो और कहीं नहीं मिलेंगे क्योंकि श्रीराम और श्रीकृष्णकी प्राचीन निशानी है तो गिरिराज है। जब मुसलमान भक्त रसखान, आलम, आदिल आदिने गिरिराजकी परिक्रमामें भगवान्के दर्शन किये हैं तो मैं तो हिन्दू हूँ, मुझको क्यों नहीं दर्शन होंगे? वह मथुरा उतरे, वहाँसे गिरिराज पहुँचे। परिक्रमाकी कीमत एक रुपया जो उनके पास था, खर्च हो चुका था। एकादशीके व्रतका दिन था। इनका रात-दिनका समय भगवन्नाम-जपमें ही बीतता था। जब परिक्रमा कर चुके तो एकादशीके दोपहरके समय इन्हें एक लड़का मिला और बोला 'बाबा, तुम परिक्रमा कर रहे हो, आज तुमको भोजन नहीं मिला?' वे बोले, 'नहीं मिला, हम तो कई परिक्रमा करने आये थे, यहाँ भिक्षाका ठीक नहीं है, प्यारेकी ऐसी ही मर्जी है, हम क्या करें?' लड़का बोला, 'चलो हम अपने घर खिला लावें।' लड़का उन्हें एक ब्राह्मणीके घर ले गया। ब्राह्मणी बड़ी भक्त थी, एकादशीके दिन फलाहार बनाये बैठी थी। लड़केने घरमें आकर उन्हें पानी दिया। ब्राह्मणीका यह नियम था कि कोई साधु आता तो पहले उसे भोजन कराती फिर आप करती। ब्रह्मचारीजी बैठ गये, ब्राह्मणीने फलाहार परोसा। ब्रह्मचारीजी खाने लगे। लड़का चला गया। जब फलाहार कर चुके तो ब्राह्मणी बोली, 'महाराज! मैं तो इसी आशामें थी कि कोई आवे तो फलाहार कराऊँ। आपको कौन बुलाकर लाया?, ब्रह्मचारी बोले 'तुम्हारा पुत्र लिवा लाया था, बोला 'यह घर मेरा है।' बुढ़िया कहने लगी 'महाराज! मेरे तो कोई पुत्र ही नहीं, इस लड़के को तो मैं जानती भी नहीं, कौन है!' यह सुनकर ब्रह्मचारीजी दंग रह गयेऔर फूट-फूटकर रोने लगे। यह घटना स्वयं ब्रह्मचारीजीने वापस लौटनेपर मुझसे कही थी।

******

अद्भुत छटा

उस समय मेरी अवस्था बारह-तेरह वर्षकी थी। एक महात्माके अनुग्रहसे मैंने ईश्वरके अस्तित्वके सम्बन्धमें सैकड़ों घटनाएँ देखी थीं। एक दिन देखता क्या हूँ कि वह महापुरुष मेरे समीप बैठे हैं, उन्होंने क्या किया, मुझे ज्ञात नहीं है। मैं देखने लगा कि आकाशसे एक ज्योतिर्मय पदार्थ मानो मेरे भीतर प्रवेश कर रहा है। उसके प्रवेश करते ही मैं देखने लगा कि 'मैं' रूपमें मेरा कुछ भी नहीं रह गया है। समीप ही एक बिल्ली बैठी थी। मैंने उसकी ओर देखा तो जान पड़ा, मानो वह भी मैं हूँ। फिर तो जिस ओर मेरी दृष्टि जाने लगी, उसी ओर मैं प्रत्येक वस्तुमें अपनेको देखने लगा, मानो एक आनन्दकी तरंग तरंगित हो उठी। उसी अवस्थामें अकस्मात् मैं सोचने लगा कि कहीं मेरा मस्तिष्क तो बिगड़ नहीं गया है? नहीं तो मैं ऐसा क्यों देखता हूँ? इसी अवस्थामें मैं बिल्लीको पकड़ने चला, जैसे ही मैंने बिल्लीको पकड़ा, मैं देखता हूँ कि मैं मानवी 'मैं' नहीं हूँ, तथा मैंने कभी पृथक् मनुष्यरूपमें जन्म लिया है, यह भी स्मरण नहीं है। मैं बिल्ली हो गया। बिल्ली होकर अधिक समयतक न रह सका। अपनी पूर्वावस्थामें लौट आया, किन्तु शरीरमें मानो अब भी एक नशा-सा छाया हुआ था। वह महात्मा हँस रहे थे, बोले-'इसीके लिये मनुष्यको साधन करना पड़ता है, यह अत्यन्त ही कठिन है। विराट चैतन्य तुम्हारी साधनावस्थामें यदि कृपा करें तो तुम इस अवस्थामें पहुँच सकते हो, नहीं तो नहीं पहुँच सकते।

ईश्वर-दर्शनकी सत्यताको प्रमाणित करनेके लिये एक प्रशस्त उपाय है। अपनेको आत्म-चैतन्यमें लीन करके भी उससे पृथक् रहनेका एक कौशल है अर्थात् द्वैतभावमें निर्बोधके समान दर्शकके रूपमें रहा जा सकता है। पश्चात् जब ज्ञान होता है, जब दर्शनीय विषयका पूर्ण ज्ञान होता है उस समय किसी प्रकार भी भूल-भ्रान्ति नहीं हो सकती है। (जो देखना नहीं जानते उनके लिये समझनेका कोई उपाय नहीं है; क्योंकि यह विषय साधनकी अपेक्षा रखता है।)

मनुष्यके जीवनमें जो विभूति-दर्शन होता है, उसमें ज्ञानत: कोई विशेषता न रहनेपर भी बहुत कुछ विचारणीय बातें रहती हैं।

(कल्याण वर्ष ७/१/५५५)

******

ईश्वरके अटल विश्वासी भक्त

(१)

इटलीको स्वतन्त्र बनानेवाला वीर नवयुवकोंका अग्रणी नेता गेरीबाल्डी इतना बड़ा नामी पुरुष क्यों हुआ? इस योग्यताका कारण उसकी माताका ईश्वर-प्रेम है। वह बड़ी ही ईश्वर-परायणा साध्वी नारी थी और गेरीबाल्डीका चरित्र सुधारनेमें उसीका पूरा हाथ था। गेरीबाल्डी आत्मचरित पुस्तकमें लिखता है कि-मुझमें असाधारण साहस देखकर जनता विस्मित होती है और संग्राममें मेरे पास किसी दैवी-शक्तिके होनेका अनुमान करती है। इस साहस और शूरताका मूल कारण तो ईश्वरीय बलके ऊपर मेरे अटल विश्वासका होना ही है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जबतक सतीत्वकी अवतार देवीतुल्य मेरी माता, मेरे प्राण-रक्षार्थ परमेश्वरकी आराधनामें मग्न रहेगी, तबतक मुझे अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये जरा भी शङ्का नहीं। मैं ईश्वरके भरोसे निश्चिन्त हूँ।

परिणाम यह हुआ कि, गेरीबाल्डीके कानोंके पाससे युद्धक्षेत्रमें सनसनाती हुई गोलियाँ चलने लगीं और तोपोंके गोले फूट-फूटकर बरसाने लगे। उस समय इस वीरको यही जान पड़ता था कि मेरी माता मानो घुटने टेककर जगन्नियन्ता ईश्वरके निकट अपने पुत्रके प्राण बचानेके लिये प्रबल प्रार्थना कर रही है।

(२)

तिरुवल्लुवारका दूसरा नाम मुनिवाहन था। ईस्वी सन् १०० में दक्षिण भारतके एक चाण्डालके घरमें जन्म हुआ था। वह सङ्गीतविद्यामें निपुण ईश्वरका परम भक्त था। भजन गाता-गाता बहुधा वह प्रेममग्न हो बाह्य-ज्ञान शून्य हो पड़ता था। सुप्रसिद्ध कावेरी तीर्थ श्रीरङ्गम्में एक दिन नदीके मार्गमें गाते-गाते मूर्छित हो पड़ा था। इसी समय श्रीरङ्गनाथजीका एक पुजारी ठाकुरजीकी पूजाके लिये कावेरी जल भरने जाता था, चाण्डालद्वारा रास्ता रुका जानकर उसने क्रोधित हो उसे ऐसा मारा कि तिरुवल्लु होशमें आ गया। वह खड़ा हो गया और रास्ता खुल गया। पुजारी पवित्रतासे जल भरकर मन्दिर पहुँचा तो देखा कि भीतरसे दरवाजा बन्द है। तब तो इसने भगवान्‌की बड़ी स्तुति-प्रार्थनाकर क्षमा माँगी कि 'हे प्रभो! मुझसे जाने-अनजाने

जो भी अपराध हुआ हो, वह माफ करो।' मन्दिरसे आज्ञा सुन पड़ी कि—'यदि तू उस मेरे चाण्डाल भक्तको कन्धेपर बैठाकर, मन्दिरकी प्रदक्षिणा करे तो तुरन्त दरवाजा खुल जाय।' सेवक बहुत शरमाया। फिर अति पश्चात्तापपूर्वक भगवान्‌की आज्ञाका पालन करनेपर मन्दिरका द्वार खुल गया।

(३)

भक्त राजनारायण बसु वृद्धावस्थामें रोगके कारण राजगृहीमें रहते थे। देशभक्त बाबू अश्विनीकुमार दत्तके आप गुरु थे। रोगका समाचार पाकर अश्विनी बाबू गुरुदर्शनार्थ पहुँचे। तीन महीनोंसे बसु महाशय लकवेसे पीड़ित थे, अश्विनी बाबू गम्भीर उदासीन मुख हो कमरेके अन्दर गये। प्रणाम करते ही बसु बाबू बहुत प्रसन्न हो सहर्ष बोले, अश्विनी! आओ आओ, बहुत दिन हो गये तुम नहीं मिले थे। ऐसा कहकर एक हाथसे ही आलिंगन किया। दूसरा हाथ लकवा मारनेसे बेकाम था। तत्पश्चात् बातचीत शुरू कर दी। शेली, बायरन, वर्डस्वर्थ, हाफिज, भगवद्गीता और उपनिषदोंके वाक्य, श्लोकपर श्लोक बड़ी खुशीसे बोलने लगे। मानो दुःखकी जरा भी परवा नहीं। सानन्द तीन घण्टे व्यतीत हो गये। अश्विनी बाबूको इससे कुछ आश्चर्य हुआ और विदा होते समय उन्होंने पूछा,—'आपकी तबियत अच्छी नहीं, यह जानकर मैं तो उदास हो आपको देखने आया था। परन्तु यहाँ आकर देखता हूँ कि आपके आनन्दका कुछ ठिकाना नहीं! तीन माससे आप बिस्तरपर पड़े हैं, तथापि क्या आपको दुःख नहीं होता?' राजनारायण बसुने उत्तर दिया,—'अश्विनी! मैं अब वृद्ध हो गया हूँ। जिस भगवान्‌की कृपासे इतने जीवनमें कितने ही सुन्दर दृश्य देखे, अनेक सुन्दर स्थान देखे, बहुत-से मांगलिक बनाव देखे और आनन्दका उपभोग किया, उसी प्रभुकी इच्छानुसार क्या थोड़े दिन मैं इस रोगशय्यापर प्रसन्नतासे पड़ा-पड़ा भजन नहीं कर सकता?' इसीका नाम है सच्चा भगवत्प्रेम! सच्चे भगवद्भक्त रोगजनित वेदनाको भी वेदना नहीं समझते।

(४)

प्रार्थनाद्वारा रोग मिटानेका प्रयोग पाश्चात्य देशोंमें सम्प्रति चलने लगा है, अपने यहाँ भारतमें तो यह सनातन रीति है। संकटके

समय ईश्वरपर पूरा विश्वास रखकर, उसीके भरोसे रोगीको छोड़ने और आरोग्य लाभ करनेवाले अनेक मनुष्य हैं। सर थामक म्यूरकी भी परमात्माके प्रति ऐसी ही अटूट श्रद्धा थी। इनकी प्यारी लड़की बहुत बीमार हो गयी। नामी-नामी डाक्टर हार गये। सब उपाय कर डाले। परन्तु किसी प्रकार भी उसकी निद्राको रोक न सके। अवस्था दिनों दिन खराब होती गयी। सगे-सम्बन्धी सब निराश हो गये। पुत्रीका दुःख देखकर म्यूरका हृदय भर आया। वह अशरणके एकमात्र शरण भगवान्‌के शरण हो गया, नित्यके अभ्यासानुसार उपासनागृहमें जाकर घुटने टेक अश्रुपूर्ण नयन साञ्जलि प्रभुसे प्रार्थना करने लगा,—'हे सर्वशक्तिमान् दयालु पिता! तेरे लिये कुछ भी असम्भव नहीं। तू मेरी उपासनासे प्रसन्न हो तो मुझपर इतनी कृपा कर। मेरी प्यारी बेटीको बचा दे। मेरी यह नम्र प्रार्थना स्वीकार कर।' थोड़ी देर बाद स्वस्थ होनेपर अन्तर्यामी प्रभुकी कृपासे म्यूरके मनमें ऐसा विचार उठा कि अमुक उपाय भी अजमा देखना चाहिये। आशा है कि इस उपचारसे रोगीको अवश्य लाभ होगा। तुरन्त ही उसने डाक्टरोंको अपना अभिप्राय जना दिया। उन लोगोंने स्वीकार कर कहा, तुम्हारा विचार बहुत ठीक है। इस रोगपर यही उपचार सर्वोत्तम, सर्वमान्य है, अभीतक हमलोगोंको इसकी सुध नहीं आयी थी, ऐसी विस्मृतिके लिये आश्चर्य है।

इस उपायसे रोग भग गया। कन्या मृत्युमुखसे बच गयी। पिताके शुद्ध अन्तःकरणकी अखण्ड प्रार्थनाने जादूका असर किया। इस उदाहरणद्वारा यह नहीं कहा जाता है कि रोगावस्थामें कोई औषधि आदि न करें। उपचारोंके साथ-साथ रोगी और उनके सम्बन्धी लोग प्रभुकी शरण पकड़ उनका आशीर्वाद भी एकाग्रचित्त हो माँगना सीखें। यही हमारा उद्देश्य है। ऐसे समय जो शान्तिका वातावरण पैदा होता है, वह रोगीको आराम करनेमें बड़ी मदद करता है। ईश्वर अपने भक्तोंकी सहायता अवश्य करता है।

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(कल्याण वर्ष ७/१/५२५)

******

कृपाके अनुभव

(क) हमारे घरमें देवीकी उपासना अधिक थी, मैंने भी देवीका अनुष्ठान किया था, वह इसलिये कि संसार बहुत दुखी है, किसी प्रकार उसका दुःख दूर किया जा सके तो उत्तम है। मेरे मनमें यह कामना हुई कि मुझे यदि द्रौपदीकी हाँडी-सा एक पात्र मिल जाय तो अनायास ही लोगोंका कुछ उपकार हो सकता है। इस अनुष्ठानकी पूर्तिके लिये मैं कामरूप जाकर कामाक्षा-देवीकी उपासना करने लगा। कुछ दिनों पश्चात् कामरूपके निकटवर्ती एक महन्त ब्रह्मचारीका शिष्य हो गया। ब्रह्मचारीजीकी मृत्युके पश्चात् उनके स्थानपर लोगोंने मुझे महन्त बना दिया। महन्त होनेकी अवस्थामें भी मेरा अनुष्ठान लगातार चलता रहा, उस समय वहाँ बहुत लोग आया करते और रोज लगभग तीन-चार सौ रुपये आते। मैं उन रुपयोंको स्पर्श न करता। दूसरे ही लोग उन्हें साधुओंके भण्डारे आदिमें खर्च करते रहते। उस समय मैं किसीके लिये कुछ कह देता, वही सत्य हो जाता। किसीको दुराचारी-पापी कहता तो वह स्वयं स्वीकार करता, मुझमें यह दोष है। यह दशा पचीस दिनतक रही, फिर मैंने सोचा कि इस तरह रहना ठीक नहीं। यदि लाख रुपये भी मिल गये तो एक गाँवका कष्ट दूर होगा। तत्पश्चात् यह बात ध्यानमें आयी कि यदि द्रौपदीकी तरहका मुझे कोई पात्र मिल जाय तो भी उससे क्या होगा? यह सब सोचकर मैं एक दिन चुपकेसे शौचके बहाने चल दिया और मैंने आठ कोसपर पहुँचकर ही दम लिया। इसके पश्चात् जंगलोंमें घूमता रहा। दुर्गाका उपासक था ही, अब मुझे श्रीकृष्ण-प्रेम भी होने लगा।

एक रातकी बात है; सूर्य अस्त हो गया था, चन्द्रमाकी चाँदनी छिटक रही थी, जंगलमें नहरके किनारे एक सुन्दर बालक और एक बालिका मेरे समीप आकर कहने लगे, 'कहो तो बाबाजी, हम रोटी लावें,' मैंने कहा 'इतनी रात तुम कहाँसे रोटी लाओगे?' उन्होंने कहा 'हमारा गाँव पास ही है।' वे घूम-घामकर थोड़ी ही देरमें रोटी ले आये। मैंने रोटी खायी और वहीं सो रहा। प्रातःकाल बहुत सबेरे मेरे उठनेके पूर्व ही वे दोनों फिर आये और बोले,

'बाबा! मट्ठा पीओगे' मैंने कहा 'तुम इतने सबेरे फिर कहाँसे आ गये और इस समय मट्ठा कहाँसे लाओगे?' उन्होंने घूमकर तत्काल ही मट्ठा ले आये और मैंने उसे पी लिया। उनके चले जानेपर मैंने खोज की तो मालूम हुआ कि वहाँ दूर-दूरतक कहीं गाँवका नामनिशान भी नहीं, जंगल-ही-जंगल है।

(ख) मेरे एक मित्र ब्रह्मचारीजी भगवान् श्रीकृष्णके उपासक थे। वे किष्किन्धामें किसी महात्मा सिद्ध पुरुषको जानते थे और उनसे शिक्षा लेने जा रहे थे। मार्गमें उन्हें बड़ी प्यास लगी, उनका कण्ठ सूखा जाता था; लोटा, डोर उनके पास थे, वे एक कुएँ पर गये, तब मालूम हुआ कि कुआँ बहुत गहरा है। लोटा फाँसनेपर जलका पता नहीं। जल बहुत नीचा था, निराश होकर वे वहीं बैठ गये; अत्यधिक प्यासके कारण प्राण अत्यन्त छटपटाने लगे। ऐसा मालूम होता था कि अब दस-ही-पाँच मिनटोंमें प्राण निकल जायँगे। उस समय वे 'हा कृष्ण! हा कृष्ण!' पुकारने लगे। इतनेमें ही एकायक एक बालक उनके पास आया और कहने लगा कि 'मुझे अपना लोटा-डोर दे दो, मैं जल लाऊँगा।' ब्रह्मचारीजीका लोटा लेकर वह बालक उसी कुएँसे जल खींच लाया और उसने आकर उन्हें पिला दिया। तदनन्तर बालकने कहा, 'तुम जिस साधुके पास जाते हो वह महा पाखण्डी है।' ब्रह्मचारीजीने कहा कि 'तुम छोटेसे बालक उस साधुके पाखण्डको क्या जानते हो और तुम कहाँ रहते हो?' उसने उत्तर दिया कि 'मैं यहीं जंगलमें गाय चराया करता हूँ, मैं उस साधुको खूब जानता हूँ।' इसके बाद ब्रह्मचारीजी जब होशमें आये तो उन्हें वह बालक नहीं दीख पड़ा, कुँए पर जाकर लोटा फाँसा तो मालूम हुआ कि वह पहलेकी ही भाँति खूब गहरा है।

(ग) अतरौली तहसीलमें एक कायस्थ गृहस्थ रहते थे। घरमें स्त्री, पुरुष तथा एक लड़की ये तीन प्राणी थे, पुरुष पटवारीका काम करते थे। किसी मामलेमें उन्हें सात सालकी जेल हो गयी। घरमें कुछ था नहीं; उस लड़कीके मामाने उसके विवाहका सारा-भार अपने ऊपर लिया, विवाह पक्का हो गया। जब विवाहके चार-पाँच दिन रह गये, तब किसी कारणसे मामाने साफ इन्कार कर

दिया कि 'मुझसे कुछ भी नहीं हो सकेगा।' बारात आनेवाली है, ब्याहका दिन है, पर घरमें कुछ भी नहीं है। बेचारी स्त्री महान् कष्टसे पीड़ित होकर रात्रिको एक कोठरीमें जा पड़ी। पड़ोसी कायस्थोंने विचार किया कि, बारात आ रही है, यदि वह बिना सत्कार वापस लौट गयी तो हम सबकी बदनामी होगी। यह विचारकर उन लोगोंने कुछ प्रबन्ध करके भट्ठी खुदवानेका लग्गा लगाया। सब बैठे थे, भट्ठी खुद रही थी। उसी समय भट्ठी खोदनेमें ही एक घड़ा निकला। लोगोंका ध्यान दूसरी ओर था, भट्ठी खोदनेवाले दोनों आदमियोंने सलाह करके घड़ा उड़ाना चाहा। उनमेंसे एक आदमी उस कपड़ेमें छिपाकर किसी कामके बहाने चलने लगा। भट्ठी खुदनेकी जल्दी थी, लोगोंने कहा 'भाई, काम छोड़कर कहाँ जाते हो?' वह कुछ बहाना बताकर आगे बढ़ा। लोगोंको ऐसे वक्त उसका काम छोड़कर जाना बहुत बुरा लगा। एकने उठकर उसे रोका, देखा तो कपड़ेमें लपेटा एक घड़ा है, उसे निकलवाया, तो मालूम हुआ उसमें पाँच-सात सौ या कुछ कम-ज्यादा रुपये हैं, देखते ही सब लोगोंने कहा 'भगवान्‌की कृपा है, इस लड़कीके भाग्यसे यह निकला है, तुम कहाँ ले जाते हो?' लोगोंने जाकर कन्याकी माँको कोठरीसे निकालकर उससे सारा हाल कहा, और उसी रुपयेसे उस कन्याका विवाह सम्पन्न किया। भगवान्‌ने उसकी करुण-पुकार सुनी।

(घ) अलीगढ़के एक कायस्थ घरानेके दो लड़के थे, एकको संग्रहणीकी बीमारी हो गयी। अनेकों वैद्य-डाक्टरोंका इलाज कराया गया, घरका सब जेवर नष्ट हो गया, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। दैवयोगसे कोई महात्मा वहाँ आ गये। उन्होंने उसकी हालत देखकर कहा 'तुम्हें तो मरना-जीना एक बराबर है ही। मैं तुम्हें यह महामन्त्र बताता हूँ, इसका अखण्ड जाप करो। श्रीरामचन्द्रजीका इष्ट रक्खो।' उसने उसी समयसे महात्माजीके आदेशानुसार जाप प्रारम्भ कर दिया। बिना किसी भी औषधिके एक मासके जापसे रोग पूर्ण शान्त हो गया। इसके बाद उसकी ऐसी स्थिति हो गयी कि श्रीराम, सीता और लक्ष्मण हर समय उसे अपने साथ रहते प्रतीत होने लगे। चलते-फिरते, नहाते-धोते, शौच जाते समय यही हाल। एक दिन शौच जाते समय उसने देखा कि वही मूर्ति सामने खड़ी है, वह

बोला 'महाराज! शौचके समय तो मत आया करो' उसी दिनसे फिर दर्शन नहीं हुए।

(ङ) यमुना-किनारेका खेतकी तहसीलका एक जाट मेरे पास आता-जाता था, उसकी घटना है। वह हर पूर्णिमाको यमुनाजी पार करके वृन्दावन जाता और वहाँ श्रीबांके बिहारीजीके दर्शन करता। यह नियम उसका तीस-चालीस वर्षसे था। एक समय पूर्णिमाके पहले दिन चतुर्दशीको उसके जवान लड़केकी मृत्यु हो गयी। एक ही लड़का था। गाँवभरमें हाहाकार मच गया, लड़केकी लाश लेकर गाँवके बहुत-से लोगोंके साथ वह यमुना-किनारे श्मशान गया और उसने लड़केका दाह-संस्कार किया। इस कामसे छुट्टी पानेपर जब सब लोग चलने लगे तो वह जाट बोला 'भाई! जो होना था सो हो गया, आप लोग तो सब घर जायँ, कल पूर्णिमा है, मुझे श्रीबाँके बिहारीजीके दर्शन करने हैं। मैं तो अब वृन्दावन जाऊँगा।' सब लोग कहने लगे 'कैसा पागल है, जवान लड़का मरा है, लोग इसके घरपर आवेंगे और यह कहता है मुझे वृन्दावन जाना है।' कई लोगोंने उसे समझाया पर उसने नहीं माना और कहा कि 'मेरा तो बहुत दिनोंसे यह नियम है, मैं तो बाँके बिहारीजीके दर्शनको तो अवश्य जाऊँगा, चाहे कुछ भी हो।' इतना कहकर वह चल दिया। हवा बड़े वेगसे चल रही थी। वर्षा भी होने लगी। साथके लोग तो घर चले आये। उसने नाववालेको यमुनाजी पार करनेको कहा, मल्लाहने ऐसे भयङ्कर तूफानमें नाव ले जानेसे साफ इन्कार कर दिया। जाटको पुत्र-शोक तो था ही, अब कल पूर्णिमाको सबेरे नियमानुसार श्रीबाँकेबिहारीजीके दर्शन नहीं होंगे, इस बातपर उसे बड़ा दुःख हुआ। वह शोकसे अत्यन्त पीड़ित होकर उसी मल्लाहकी कुटियामें जा पड़ा। उधर श्रीबाँके बिहारीजीका पण्डा रात्रिके बारह बजेतक जाटका इन्तजार करके अपने घर गया, क्योंकि जाट चतुर्दशीकी ही रात्रिको वृन्दावन पहुँच जाया करता था।

इधर रात्रिको जाटने देखा कि 'पण्डाजी सामने खड़े हैं और प्रसाद दे रहे हैं। जाटने प्रसाद लिया, जल पिया और सो गया। सबेरे आँख खुलनेपर जाटने अपनेको वृन्दावनमें उसी कोठरीमें पाया, जहाँ जाकर वह हमेशा रात्रिको सोया करता था। तब उसे

बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सोचा 'मैं तो यमुनाके उस पार सोया था, यहाँ कैसे आ गया' रात्रिकी पण्डाजीके प्रसादकी घटना याद आयी, उसने पण्डाजीसे जाकर पूँछा तो, पण्डाजीने कहा कि 'भाई, मैंने तो प्रसाद नहीं दिया, हो न हो, तुम्हें भगवान् श्रीबाँके बिहारीजीने दर्शन दिया है।' उस कोठरीमें जल और प्रसादके कण भी बिखरे हुए मिले। जाट बोला, 'हाय! लालाने बड़ा धोखा दिया!' वह जाट अब मर गया है।

(च) मैं हरद्वारके कुम्भसे वापिस लौट रहा था, रास्तेमें जिला मुजफ्फरनगरके एक गाँवमेंसे जाना हुआ, वहाँ एक ब्राह्मणने भिक्षा करायी। मैं वहाँ रुक गया। बहुत-से लोग वहाँ आये। उनमें एक ठाकुर साहेब भी थे—उनकी अवस्था ७०-७५ वर्षकी होगी, चेहरेपर बड़ा तेज, शरीर खूब हृष्ट-पुष्ट था। वे प्राय: दिनभर माला लिये जप करते रहते। यों वे अपनेको आर्यसमाजी कहते। मैंने एक दिन उनसे पूछा, 'आप आर्यसमाजी हैं, फिर मालासे जप कैसे करते हैं?' उन्होंने अपने जीवनकी घटना इस प्रकार सुनायी—

'मेरी अवस्था आठ-दस वर्षकी थी, तब मुझे श्रीस्वामी दयानन्दजीके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके ब्रह्मचर्य और सत्यताको देखकर मेरी उनपर अपार श्रद्धा हो गयी। मैंने उनके ब्रह्मचर्य और सत्यका आदर्श सामने रखकर जीवनभर इन दोनों व्रतोंके पालनका निश्चय किया। मैं स्वामीजीका पूर्ण अनुगामी बन गया। स्वभावत: मेरे विचारमें श्रीकृष्णके लिये यह अटल निश्चय हो गया कि कृष्ण ही भारतवर्षके पतनका कारण है। दुनियाभरके छल-कपट, व्यभिचार आदि जितने दोष हैं, सब उसमें थे। कृष्ण नहीं हुआ होता तो शायद भारतवर्षमें यह पाप इस रूपमें नहीं फैलता। इस भावनासे मैं कृष्णका भरपूर विरोधी हो गया। मेरा ब्रह्मचर्य और सत्यका व्रत चालू रहा।

अनुमान २०-२२ वर्षकी उम्रमें मैं काशी चला गया, इस बीच मैं कुछ पढ़-लिख भी गया था। मैं पहलवानी करता था। काशीमें एक ठाकुरसाहबको एक ऐसे हृष्ट-पुष्ट पहलवानकी लड़ाई-झगड़ेके समयके लिये जरूरत थी। उन्होंने मुझे रख लिया। मेरे जिम्मे कुछ भी काम नहीं था। खूब कसरत करना, बादाम-घी

इत्यादि चाहे जितने माल खाना, पहलवानी करना और ठाकुरसाहब जब कभी कहीं बाहर जायँ तो लाठी लेकर उनके साथ हो जाना। मैं नित्य प्रातः ३ या ४ बजे उठता। शौच-स्नान करके २-३ घण्टे खूब सन्ध्या-गायत्री-जप आदि करता। दिनमें प्रायः तीन चार बार स्नान करता। दोपहरकी और सायंकी सन्ध्या करता। मेरा जीवन खूब आचार-विचार, कर्म-काण्डमें बीतता। इन सब बातोंके अतिरिक्त मैं रात्रिको नियमसे प्रतिदिन आर्यसमाजमें जाता और एक घण्टे व्याख्यान देता। व्याख्यानमें मेरा एकमात्र विषय रहता, कृष्ण और रामकी भरपेट निन्दा करना और उन्हें शक्तिभर गालियाँ देना। जिन ठाकुरसाहबके यहाँ मैं रहता मैं रहता था उनके घर एक श्रीकृष्ण भगवान्‌का मन्दिर था। उसके पुजारी श्रीकृष्णके बड़े भक्त थे। ठाकुरसाहबके घरमें ठाकुर-पूजा थी। घरके स्त्री-पुरुष, बड़े-छोटे प्रायः सभी बड़े प्रेमसे पूजा करते। यद्यपि मैं श्रीकृष्णका कट्टर विरोधी था परन्तु मेरे ब्रह्मचर्य और सत्यके व्रतसे प्रसन्न होकर मन्दिरके पुजारी और ठाकुरसाहब दोनों ही मुझपर बड़ा स्नेह रखते। कभी-कभी पुजारीजी मुझसे कहते 'ठाकुरसाहब, यदि तुम कृष्णकी उपासना करो तो तुम्हारे-जैसे सच्चे आदमीको बहुत जल्दी साक्षात्कार हो जाय।' पुजारीजी तो मुझपर बड़ा अनुग्रह करके यह बातें कहते पर मैं उसके बदलेमें उनको और उनके कृष्णको भरपेट खोटी-खरी सुनाता। पुजारी प्रायः यही कहते और मेरा वही उत्तर होता। एक दिन पुजारी जब फिर यही बात कही तो मुझे बहुत ही क्रोध आ गया। मैंने शक्तिभर कृष्ण और पुजारीको बहुत कुछ बुरा-भला कहा। यहाँतक कि उस दिन मेरे इस कठोर कथनसे पुजारीजी व्यथित होकर रोने लगे।

उस दिन पुजारीजीको बहुत ही कष्ट हुआ। मैं उस दिन रात्रिको दस बजे दूध पीकर सदैवकी भाँति भूमिपर सो गया। पास ही तख्तपर पुजारीजी सो रहे थे। रात्रिको मेरी आँख खुली तो क्या देखता हूँ कि खूब उजाला हो रहा है, महान् सूर्यका-सा प्रकाश है, मैं एकदम फड़फड़ाकर उठा बैठा, मैं प्रातः साढ़े तीन बजेका जागनेवला, आज इतनी देर हो गयी, मुझे बड़ा कष्ट-सा हुआ। मैंने उठकर देखा, पण्डितजीके तख्तके पास दस-बारह वर्षका एक सुन्दर बालक खड़ा है और मुझे देख-देखकर हँस रहा है।

मुझे उस बालकको इस तरह मुस्कराते देखकर गुस्सा आया और मैंने उससे फटकारकर कहा 'मेरी धोती लोटा कहाँ है, जल्दी ला, हँसता क्यों है?' वह यह सुनकर और हँसने लगा। मुझे बड़ा बुरा लगा, मैं उसे मारनेको दौड़ा। बालक तख्तके चारों ओर भागने लगा। मैं उसके पीछे-पीछे भागता, बालक आगे-आगे तख्तके चारों ओर चक्कर लगाता, पर मेरे हाथ नहीं आता। वह ज्यों-ज्यों हँसता, त्यों-ही-त्यों मुझे क्रोध चढ़ता, मैं उसे फटकारता और चिल्लाता। मेरा चिल्लाना सुनकर पुजारीजी भी उठ बैठे, और भी आसपासके बहुतसे स्त्री-पुरुष वहाँ जमा हो गये। वे सब-के-सब आश्चर्यसे मुझसे बार-बार पूछने लगे, 'ठाकुरसाहब, क्या बात है? आज आपको क्या हो गया है?' मैं उस बालकके हँसनेकी शैतानी बतलाकर कहने लगा 'देखो, इस बालकको समझा दो, नहीं तो इसके हकमें अच्छा न होगा।' वे बेचारे कुछ भी नहीं समझ सके। जब इस झञ्झटमें बहुत देर हो गयी तो मैं देखता हूँ कि वह लड़का झटसे पुजारीकी गोदमें जा बैठा और तत्काल अदृश्य हो गया। मैं भी हैरान रह गया। इसीके साथ मुझे जो बड़ा भारी प्रकाश दीख रहा था, वह जाता रहा, चारों ओर वही रातका अन्धकार छा गया। लोगोंसे तथा पुजारीजीसे बात हुई, तो वे कहने लगे, 'ठाकुरसाहब! यहाँ तो कोई लड़का नहीं है, हम सब लोग बड़े आश्चर्यमें हैं कि आज इस रात्रिके समय आपको न जाने क्या हो गया है?' मैंने अपनेको कुछ और सावधान करके घड़ी दिखवायी तो रातका एक बजा था। मैंने सारी घटना लोगोंको सुनायी। सब कहने लगे 'ठाकुरसाहब, जिनकी आप बहुत निन्दा करते थे, यह चमत्कार उन्हींका तो नहीं है?' मैंने कहा 'कुछ भी हो, ऐसी बातोंसे मैं कृष्णको भगवान् नहीं मान सकता। हाँ, आजसे मैं कृष्ण और पुजारीजीको गालियाँ नहीं दूँगा।' उस दिनसे मैंने गालियाँ देना बन्द कर दिया और प्रायः पुजारीजीके पास मन्दिरमें आने-जाने लगा।

एक दिन मैं मन्दिरमें जाकर देखता हूँ कि जिन ठाकुरसाहबके यहाँ मैं रहता था, उनका बारह-तेरह वर्षका एक लड़का, जो तीन-चार महीनेसे ननसाल गया था, वहाँ खड़ा है। उसे देखकर मैंने उससे पूछा 'तू कब आया?' वह बोला 'मैं तो कल ही आ गया

था।' मुझे झूठसे बड़ी चिढ़ थी। मैंने कहा, तू मेरे सामने झूठ बोलता है, मैं तो हर समय घरमें रहता हूँ, वहीं खाता-पीता हूँ, मैंने तो तुझे कलसे नहीं देखा। लड़का यह सुनकर मेरी तरफ देख-देखकर हँसने लगा। मुझे बड़ा गुस्सा आया, एक तो झूठ बोलता है और फिर हँसता है नालायक—मैं उसे मारनेको दौड़ा। वह भी भागने लगा। वह फिरकर मेरी तरफ देखता और हँस देता; वहाँसे भागकर वह घरकी तरफ चला, मैं भी उसीके पीछे-पीछे दौड़ा। वह दौड़कर घरमें घुस गया, वहाँ भीतर घरमें मुझे चिल्लाते देखकर घरके स्त्री-पुरुष अवाक् रह गये और मुझसे पूछने लगे 'ठाकुरसाहब! क्या बात है?' मैंने कहा, 'यह तुम्हारा लड़का जो अभी घरमें भागकर आया है, बड़ा शैतान है—मुझसे झूठ बोलता है कि मैं कल आ गया था और मुझे देख-देखकर हँसता है। इसे जल्दीसे निकालकर लाओ, कहाँ आकर छिपा है?' घरके सब लोग कहने लगे 'ठाकुरसाहब! आज आपको क्या हो गया है? वह लड़का तो तीन-चार महीने हुए ननसाल गया है, वह वहाँसे कहाँ आया?' मैंने कहा, 'नहीं अभी मेरे सामनेसे भागकर आया है।' इसपर सब लोगोंने कहा 'आप चाहे जहाँ घरभरमें देख सकते हैं, यहाँ कोई नहीं है।' मैंने सारा घर छान डाला, उसे न पाकर मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ। तब मैंने सब लोगोंसे अपना हाल कहा। यह घटना सुनकर कई लोग कहने लगे, 'ठाकुरसाहब! उसी कृष्णका चमत्कार दीखता है।' मैंने कहा 'भाई! चाहे जो कुछ हो, जबतक एक बार फिरसे ऐसी कोई बात नहीं हो जायगी तबतक मैं उसको 'भगवान्' नहीं मानूँगा।'

मैं रोज मन्दिरमें पुजारीजीके पास जाता ही था, पूर्व घटना ठीक बाइसवें दिन, मैं देखता हूँ कि वही बालक, जो घर भाग गया था आज फिर मन्दिरमें खड़ा हँस रहा है। मैंने कहा, 'कहो, कहाँ थे? बालक बोला, 'वाह हम तो यहीं रहते हैं।' मैंने कहा, 'उस दिन आप झूठ क्यों बोले थे कि मैं कल आया हूँ? बालक कहने लगा 'ठाकुर साहब, आपको मालूम नहीं हम खेलमें कई बार ऐसी झूठ बोल जाते हैं।' यह कहकर बालक तुरन्त अदृश्य हो गया। मैं पुजारीजीके चरणोंपर गिर पड़ा और अपने पूर्व अपराधोंके

लिये क्षमा माँगने लगा। पुजारीजीने बड़े प्रेमसे मुझे उठाकर हृदयसे लगा लिया और द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्रका मुझे उपदेश किया। उसी समयसे मैं आर्यसमाजी होते हुए भी इस प्रकारसे मालासे द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करने लगा और भगवान् श्रीकृष्णका उपासक बन गया। तबसे अबतक मेरी वही स्थिति है।

(कल्याण वर्ष ७/१/५२५, स्वामी श्रीउड़ियास्वामीजी)

******

मानवी शक्तिके परेकी घटनाएँ

(क)

मेरे पिताजी छोटी अवस्थासे ही पुराण आदि ग्रन्थ बाँचा करते थे। जब वे पोथी बाँचने लगते तो मैं उनके पास बैठकर सुना करता था। परन्तु पीछे जब मैं शिक्षा प्राप्त करने लगा और कुछ साहित्यका मैंने अध्ययन किया तो इन कथाओंके विषयमें मुझे संशय होने लगे। ऐसी स्थितिमें ही मैं सन् १८८३ ई० में चित्रणी गाँव अपने ननिहालमें गया। एक दिन मैं गाँवके बाहर ऊसर भूमिमें जाकर बैठा था कि मुझे स्पष्टतः यह वाणी सुन पड़ी कि 'तू छः महीनेके अन्दर मर जायगा।' मैंने तभीसे पाठशाला छोड़ दी और पढ़ना-लिखना भी छोड़ दिया तथा शिव-मन्दिरमें बैठकर दिन-रात भगवान्‌के ध्यानमें बिताने लगा। छः महीने बीतनेपर मुझे सन्तोष हुआ और तब इन्द्रियातीत ज्ञानका भी मुझे सन्तोष होने लगा। सन् १८८४ ई० के सितम्बरमें मेरे पिताका अचानक देहान्त हो गया। स्कूलमें मेरी शिक्षा मराठी पाँचवें दर्जेतक हुई थी तथा अंगरेजी दूसरी पुस्तकसे मैंने दस पाठ पढ़े थे। सन् १८८५ में मैं पटवारीगिरीकी परीक्षा पास करके पटवारीका काम करने लगा। किसी सुयोग्य सद्गुरुद्वारा मन्त्र लेनेकी इच्छा मेरे मनमें उत्पन्न होने लगी, परन्तु खोजनेपर मुझे कोई योग्य गुरु न मिला। अचानक ता० ६-८ १० को एक पुरुषने स्वप्नमें मुझे मन्त्रोपदेश किया और अपनेको चैतन्य सम्प्रदायका अनुयायी बतलाकर परानन्द और ब्रह्मानन्द नामक ग्रन्थ पढ़ने तथा नागपुरकी ओर साक्षात्कार होनेकी बात कहकर

चला गया। जगनेपर मैंने बहुत दिनोंतक उन पुस्तकोंकी तलाश की। अन्तमें एक दिन एक बनियेके रद्दी कागजोंके ढेरमें खोजनेपर मुझे अचानक वे ग्रन्थ मिल गये और उन्हें पाकर मुझे बड़ा ही आनन्द हुआ। फिर पीछे ११-१२-९३ ई० के दिन नागपुरकी ओर नादगाँव नामक ग्राममें स्वप्नमें दर्शन दिये हुए पुरुषके थोड़े समयके लिये मुझको दर्शन हुए और उन्होंने मुझे स्वप्नकी याद दिलायी और फिर प्रसाद देकर वह कहीं निकल गये।

(ख)

ता० ८-१२-९० ई० की बात है, मैं तासगाँवमें पटवारीका काम करता था। एक दिन कलक्टर मि० कैंडीने मुझे बाँधोंकी ओर फसल जाँच करनेके लिये बुलाया। वह काम किसी दूसरे पटवारीद्वारा हुआ था, उसके विषयमें मुझे कुछ जानकारी न थी, उस समय जो मैंने साहबके साथ स्पष्ट और खरी बातें कीं तो उसे मुझपर गुस्सा हो आया। चिटनवीस बलवन्त भास्कर खाँडेकरने उसे वस्तुस्थितिको खूब समझा दी थी, तथापि वह एक पत्थरको ठोकर मारकर मेरी ओर बेंत उठाकर लपका, मैं प्रभु-स्मरणमें ज्यों-का-त्यों शान्त और निर्भय खड़ा था। मेरे समीप आकर उसने मेरे ऊपर उठाये हुए बेंतको वापस लिया और क्रोधित होकर चपरासीको बुलाकर उससे कहा—'उठाओ पत्थर, सिरपर दो।' चपरासीने पत्थर उठाकर अपने सिरपर रख लिया। साहबने फिर एक-दो बार उसे 'सिरपर दो, सिरपर दो' कहा; और चपरासीने दोनों ही बार उत्तर दिया—'ले लिया है साहब!' तब साहबने उसे दो बेंत लगाये और कहा 'फेंक दो' चपरासीने पत्थर फेंक दिया। इस प्रकार साहबके 'दो' शब्दको उसने 'लो' समझा और बेंत मेरे ऊपर न लगकर उसके ऊपर लगे!

(ग)

ता० ४-९-९७ की बात है। मैं बेंदरी गाँवमें पटवारीके कामपर था। कागजात देखने लिये सांगलीके नायब-पदाधिकारीने मुझे बुलाया। उनके क्लर्कने कागजोंको देखनेके लिये मुझसे कुछ रुपये माँगे और बिना रुपये लिये कागजोंको देखनेसे इनकार कर दिया जिससे मैं लौट न सका। अन्तमें मैंने एक दिन सवेरे नायब-पदाधिकारीके

घरपर जाकर गुप्तरूपसे उससे सब बातें कह डालीं। दोपहरके वक्त कचहरी जाकर उसने मुझे बुलाया और सरकारी तौरपर मुझसे जवाब तलब किया और कहा कि 'जो कुछ तुमने मुझसे कहा है उसे सिद्ध करो, नहीं तो मेरे आफिसको बदनाम करनेके कारण तुमपर दावा किया जायगा।' मैंने कहा—'कोई गवाह तो मेरे पास नहीं है, उस क्लर्कको ही बुलाकर जवाब तलब कर लीजिये।' क्लर्कने उलटे मुझपर ही दोषारोपण किया और कहा कि, 'यही जल्दी लौटनेके गर्जसे कागजातको देखनेके लिये मुझे दो रुपये दे रहा था परन्तु मैंने क्रम आनेपर देखनेका वादा किया था, इस बातको शिरगाँवका पटेल जानता है।' यह सुनकर मैंने उसकी ओर देखकर जोरसे पूछा—'क्या आपने मुझसे रुपये नहीं माँगे थे?' मेरे शब्दोंको सुनते ही वह बेहोश होकर जमीनपर गिर पड़ा। डा० गोंडबेको बुलाने चपरासी दौड़े, उनके आनेके पहले वह होशमें आया और अपने रुपये माँगनेके अपराधको स्वीकारकर उसने क्षमा माँगी। इस प्रकार उस प्रसङ्गमें प्रभुने मुझे बचाया।

(घ) ता० ११-९-१९०१ की बात है। प्लेगके कारण हमलोग वांसवीके खेतोंमें झोंपड़ियोंमें रहते थे तथापि मैं प्रतिदिन सौ-पचास प्लेग रोगियोंको देखकर उन्हें ओषधि दिया करता था। इसी बीच मुझे और मेरी स्त्रीको बुखार चढ़ आया और तीन दिनतक हम पड़े रहे। डा० माधवराव सोनी रोज आकर हमें देख जाया करते थे। एक दिन मैं बिल्कुल बेहोश हो गया। घरके लोग सब काम छोड़कर मेरे पास बैठ गये। मेरा मानसिक जप चल रहा था। एक बजेके बाद तो मुझे कुछ भी होश न रहा। केवल मनोमय जपका स्मरण हो आता था। करीब तीन बजेके समय मेरी बायीं ओर एक काली और भयङ्कर बड़ी आकृति आकर बैठ गयी और मेरी पीठके नीचेसे हाथ डालकर उसने मुझे उठाना चाहा। इस समय मेरी आँखें मुँदी हुई थीं परन्तु वह स्वप्न नहीं था; इसी बीच आकाशमें एक लम्बी-सी सूक्ष्म आकृति दीख पड़ी और एक सूक्ष्म आवाज सुनायी देने लगी। वह आकृति मेरे समीप आने लगी और आवाज भी कुछ बुलन्द होने लगी। वह आकृति उस काली आकृतिकी अपेक्षा बड़ी थी, समीप आते ही वह पूर्णतया दीख

पड़ने लगी। उसका शरीर उजला और मुँह लाल था, ऐसी श्रीहनुमानजीकी मूर्तिको मैंने देखा। वह उस काली आकृतिको पकड़कर आकाशमें उड़ गयी। तब मुझे बाहरी होश हुआ, मुझमें ताकत आ गयी और मैं कपड़े पहनकर बाहर चला गया। लोगोंने कहा कि इसे सन्निपात हो गया है, बाहर न जाने दो; परन्तु मैंने सबको अपने होशमें आनेका विश्वास दिलाया। मैं दो मील दूर डा० सोनीके पास गया, उन्होंने देखा तो मुझे १०३° बुखार था। वहाँसे मैं और वह साथ-साथ मेरी झोंपड़ीको आये। मैं तो उसी क्षण अच्छा हो गया और मेरी स्त्री दूसरे दिन चंगी हुई।

(ङ)

ता० २६-११-१९१७ ई० की बात है। मैं नित्य नियमके अनुसार आनन्दपूर्वक काम-धन्धेमें लगा हुआ 'राम-नाम' स्मरण कर रहा था, उसी समय कुछ मित्र मुझसे मिलनेके लिये आये। बम्बईसे आये हुए एक स्नेहीके दिये हुए फलको मैं अपने मित्रोंको ईश्वरार्पण बुद्धिसे बाँटकर अन्तमें अपने मुँहमें दे ही रहा था कि इतनेमें मेरे सामने अन्तरिक्षमें नीलवर्ण प्रकाशमय वस्त्राभरणोंसे युक्त पैरोंमें पैंजनी पहने मुरली बजाती और नृत्य करती हुई एक बित्तेकी एक सजीव मूर्ति दीख पड़ी। अकस्मात् प्रकट हुई उस दिव्य मूर्तिको देखकर मैं चकित हो गया। मेरे नेत्रोंमें आनन्दाश्रु भर आये, शरीरमें रोमाञ्च हो गया और तल्लीनभावसे उसकी ओर देखने लगा, वह मूर्ति वैसे ही नाचती हुई ऊपर उठती थोड़ी देरमें अन्तर्हित हो गयी। मैं उसके स्मरणके आनन्दमें संसारको भूलकर वहीं स्तब्ध हो गया। बोलते-बोलते अचानक मेरी ऐसी अवस्थाको देखकर मित्र मण्डली विस्मित हो गयी। एक आदमी डाक्टरको बुलाने गया। डाक्टरके आनेके पहले ही मैं उनके साथ आनन्दपूर्वक बातें करने लगा और मैंने इस चमत्कारको कह सुनाया।

इस प्रकार मानवी शक्ति तथा मानवी प्रयत्नके परे अनेक प्रकारके अनुभव प्रदानकर प्रभु मेरे मनको विकसितकर सदा-सर्वदा आनन्दपूर्वक हरि-स्मरण कराते हुए परदुःख निवारण तथा ज्ञानदानके कार्यमें जीवन बितानेके लिये योग्य सहायता करते रहते हैं।

(कल्याण वर्ष ७/१/५८५, श्रीआनन्दघनरामजी)

******

ईश्वर-कृपा

एक बार मैं सपरिवार गंगोत्री, जमनोत्री तथा बदरीनारायणकी यात्राके लिये निकला। उस समय मेरी अवस्था करीब १८ सालकी थी। गंगोत्री पहुँचनेपर एक अत्यन्त शीतल स्वभावके महागम्भीर ब्रह्मचारी महात्माका दर्शन हुआ। मैं तीन दिनतक उनका सत्संग करता रहा। वह महात्मा पहले उत्तरकाशीमें निवास करते थे, बारह वर्षतक उन्होंने फलाहार किया, परन्तु आत्माको शान्ति न मिली, अन्तमें उनको वैराग्य हो गया और उन्होंने गंगोत्रीमें जाकर शरीर छोड़ देनेका विचार किया।

उत्तरकाशीसे वह महात्मा गंगोत्रीकी ओर चल दिये और वहाँसे चार मील ऊपर ब्रह्माके बनमें पहुँचे। उस बनमें जाकर एक गुफाके भीतर वह तीन दिन-रात निराहार पड़े रहे। तीसरी रातको एक अवधूत भोजपत्रकी कोपीन पहने उनके सामने गुफामें उपस्थित हुआ और बोला–'महात्मन! तू क्यों भूखा-प्यासा पड़ा है?' महात्मा चौंक पड़े। सामने श्यामवर्ण अवधूतको देखकर बोले कि 'हे प्रभु! आप कौन हैं?' अवधूतने उत्तर दिया–'मैं दत्त अवधूत हूँ। महात्मा उनके चरणोंपर गिर पड़े और बोले–'भगवन्! मुझे इतने दिनोंके कष्ट सहन करनेपर भी शान्ति नहीं मिली, इसलिये मैं अब शरीर छोड़ देना चाहता हूँ।' अवधूत बोले–'तुझे अवश्य शान्ति मिलेगी। तू शान्तिस्वरूप ही है। अब अन्न ग्रहण कर। आजकल अन्नमें ही प्राण है। और यहाँसे शीघ्र चला जा।' इतना कहकर वह महात्मा अदृश्य हो गये।

वहाँसे वह ब्रह्मचारीजी गंगोत्री आये और तबसे महाशान्तरूप हो ब्रह्मानन्दमें मग्न हो रहने लगे। उन महात्मासे जब मुझे साक्षात्कार करनेका शुभ अवसर मिला और जब उनका समस्त वृत्तान्त सुननेमें आया तो मेरा विश्वास ईश्वरमें और अधिक बढ़ गया। घर आनेके थोड़े ही दिनों बाद मैंने भगवान् श्रीकृष्णजीकी शरण ली।

(कल्याण वर्ष ७/१/५७५, स्वामी श्रीनिर्वाणप्रकाशजी)

******

गुरु-कृपा

मेरा जन्म जालन्धरके निकट लुहार ग्राममें क्षत्रियकुलमें हुआ था, बचपनसे ही श्रीमद्भागवत आदिकी कथा सुननेमें मेरी बड़ी रुचि थी। कथामें मैंने एक दिन यह प्रसंग सुना कि गुरुके बिना ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती। तबसे मुझे गुरु मिलनेकी लालसा बढ़ने लगी। मेरा विचार था, संसारमें महात्मा तो बहुत हैं, पर ऐसे महात्मा बहुत कम हैं कि जिनसे वास्तविक लाभ मिल सके। दैवयोगसे एक बार गाँवके बाहर एक महात्मा आकर ठहरे। मैं तो उनके पास नहीं गया, पर और बहुतसे लोग उनके दर्शन और सत्संगके लिये वहाँ जाते। मेरे पिताजी बड़े शुद्ध आचारके तथा ईश्वरपरायण पुरुष थे। एक दिन लोग पिताजीको भी वहाँ ले गये। वहाँसे लौटकर कई लोगोंने मुझसे कहा, 'महात्मा बड़े अच्छे दीखते हैं।' मैंने पूछा 'आपने उनमें क्या अच्छापन देखा?' वे कहने लगे 'वह हठरहित और निरभिमान महात्मा हैं, किसी विषयपर उनसे बात हो रही थी, उस समय हमने ठीक उनके विचारोंके विपरीत बात कही। यद्यपि हम जानते थे कि हमारा कथन ठीक नहीं है। इसपर भी वे अधिक वाद-विवाद न कर शान्त ही रहे और बोले 'यही ठीक होगा।' यह महात्माका मुख्य लक्षण है।'

मैं उनके पास गया, मुझे भी उनके प्रति कुछ श्रद्धा-सी हो गयी। इस बार तो वे चले गये, कुछ दिनों बाद दूसरी बार आये, तब मैंने उनके सामने कुछ प्रसाद रखकर उनसे दीक्षाके लिये प्रार्थना की। वे कहने लगे 'मैं कुछ नहीं जानता। गुरु सोच-समझकर करना चाहिये। बिना विचारे काम करके तुम पीछे पछताओगे।' इसप्रकार हिला-हिलाकर वे मुझे बहुत दिनोंतक जाँचते रहे और दूसरे-दूसरे महात्माओंके नाम गुरु-दीक्षा लेनेको बताते रहे। वे ज्यों-ज्यों मना करने लगे, त्यों-ही-त्यों मेरी श्रद्धा उनपर बढ़ने लगी। मैं उन्हींसे दीक्षा लेनेकी प्रार्थना करता रहा। एक दिन मैंने कहा 'महाराज! यों ही जीवनका अन्त हो जायगा और कुछ लाभ नहीं होगा।' वे बोले, 'नहीं, ऐसा नहीं होगा।' तब उन्होंने मुझे कुछ साधारण-सी बात बतायी। मै सात वर्षतक उनके आदेशानुसार साधन करता रहा। गुरुजी कभी-कभी ग्राममें आते, कभी बाहर दूसरी जगह

विचरते चले जाते। सात वर्षके अनुष्ठानके बाद एक दिन मैं रास्तेसे जा रहा था कि यकायक मेरी अवस्था पलट गयी। शरीरकी दशाका कुछ पता नहीं रहा। यह स्पष्ट अनुभव होने लगा कि मेरी ही सत्तासे सारा संसार परिपूर्ण है। पशु-पक्षी, जल-थल और पत्ते-पत्तेमें मुझे यह प्रतीति होती थी कि मैं ही इन सबको सत्ता दे रहा हूँ। यह अवस्था कई घण्टोंतक रही। फिर उसी प्रकार मेरी पूर्व अवस्था हो गयी। उस समयके बाद मैं बराबर इसी साधनको करता रहा। जब सात वर्ष और बीत गये तब एक दिन मैंने गुरु महाराजसे कहा 'महाराज! बारह वर्षोंमें तो घूरेकी भी दशा बदलती है, भगवान् सुन लेता है, मुझे चौदह वर्ष हो गये। अब तो कृपा करो।' तब उन्होंने मुझे असली बात बतायी। उसके मालूम होते ही अन्दरसे एकदम आनन्दके फव्वारे छूटने लगे। ऐसा मालूम होने लगा कि सारा जगत् आनन्दसे परिपूर्ण है। यह अवस्था बढ़ती ही चली गयी। यहाँतक कि मैं बहत्तर-बहत्तर घण्टेतक इसी अवस्थामें रहने लगा, खाने-पीनेकी कुछ सुधि नहीं, उस समय मेरे पास होकर जो लोग निकल जाते या मैं जहाँ होकर निकलता, आस-पासके लोग चकित रह जाते, उन्हें कुछ बड़े ही आनन्दका अनुभव होता, वे कहते 'यह क्या हो गया!'

इसके बाद श्रीस्वामीजी महाराजने अन्य कई महत्त्वपूर्ण अनुभव सुनानेकी महती कृपा की। फिर कहा—

'मेरी बहत्तर घण्टेतक समाधिकी दशा रहती। निर्गुण रूपका अनुभव होता। सगुणका कभी-कभी हुआ। और तो कई लोगोंको मेरी दृष्टिसे दिव्यधामके दर्शन हुए। मेरे अन्दर जो-जो विलक्षण हालतें कई वर्षोंतक रहीं, उनको मैं कह नहीं सकता। उस समय ऐसी स्थिति रही कि मेरे पास होकर कोई आदमी निकल जाता तो वह एक अपार आनन्दमें डूब जाता। उस स्थितिमें मुझे क्षुधा-पिपासा आदि भी नहीं व्यापते थे। मेरी हालत ऊँची होती तो गुरुजी नीचे गिरा देते। तीन बार मेरी हालत गुरुजीने नीचे गिरायी। मैंने दुखी होकर कहा 'महाराज! ऐसा क्यों करते हो?' तो कहा 'तुमसे बहुत काम कराना है।' जब मैं कई लोगोंकी ऐसी अवस्था कर देता तो गुरुजी महाराज कहते, 'ऐसा पागल नहीं बनाना' उन्होंने तीन बार

ऐसा कहा और जिस दिन तीसरी बार ऐसा कहा उसी दिनसे मुझमें वह शक्ति नहीं रही!

(कल्याण वर्ष ७/१/५३५, स्वामी श्रीअनन्ताश्रमजी महाराज)

******

एक सती

इस विशाल विश्वकी क्रीडास्थलीमें देश, काल और वस्तुके चाहे कितने परिवर्तन ही होते रहें, समाज और संस्थाओंके भीषण तूफान अपनी प्रबलताका कितना ही वेग दिखावें, संसारके उच्चातिउच्च मस्तिष्कोंकी विचारतरंगें चाहे कितनी ही टक्करें खायँ, परन्तु सत्यके स्वयं जाज्वल्यमान प्रदीपपर ये एक छिटक भी नहीं डाल सकते। यह वह प्रदीप है जिसको संसारकी कोई शक्ति बुझा नहीं सकती; यह सदा अविच्छिन्नरूपसे प्रकाशित रहा है और प्रकाशित रहेगा। इस सत्य प्रदीपका प्रकाश समय-समयपर हमारी आँखोंमें चकाचौंध पैदा कर देता है, हमारे मस्तिष्कोंको शून्य बना देता है और हमारी बुद्धि तथा चतुराईको चूल्हेमें झोंक देता है; तब हम किंकर्तव्यविमूढ़ होकर कहने लगते हैं कि उस लीलाधारीकी लीला कुछ समझमें नहीं आती। इसी सत्यको प्रदर्शित करनेवाली एक सच्ची घटनाका विवरण पाठक-पाठिकाओंके सम्मुख रक्खा जाता है।

हरदोई जिलान्तर्गत कस्वा साडीके पास एक इकनौरा नामका ग्राम है। जिसमें नवाब खान्दानके एक बड़े सज्जन व्यक्तिकी जमींदारी है। इसी ग्राममें पं० छोटेलालजीके गृहमें उनकी धर्मपत्नीकी कोखको पवित्र करनेवाला एक कन्यारत्न अवतीर्ण हुआ; जिसका नाम रेशमदेवी प्रसिद्ध हुआ।

जबतक बाल्यकाल रहा तबतक यह कन्या अपने स्वभावसे सबको प्रेमविभोर करती रही। ग्रामोंमें शिक्षाका संस्कार कम होनेके कारण इसकी शिक्षा लगभग हिन्दीके चौथी कक्षातक ही समाप्त हो गयी। परन्तु बचपनहीसे इसको रामायणसे विशेष प्रेम रहा, यहाँतक कि जिस दिनसे रामायण पढ़ना प्रारम्भ किया फिर छूटा ही नहीं। कन्याका रूप सुन्दर और स्वभाव बड़ा ही लजीला था। परोपकारवृत्ति स्वभावमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। अपनी शक्ति-अनुसार वह पास-

पड़ोसवालोंकी तथा हेली-मेली सबकी सहायता करनेको सदा उद्यत रहती थीं। छोटे-बड़े सभी उससे प्रसन्न रहे। 'होनहार बिरवानके होत चीकने पात' वाली कहावत पूर्णरूपसे चरितार्थ हुई।

धीरे-धीरे समय बढ़ता गया और रेशमदेवी विवाह योग्य हुई। तेरह सालकी आयुमें कसरावाँ ग्रामके निवासी पं०दीनदयालजी मिश्रके सुपुत्र पं०वंशीधरजीसे, जो कि अंग्रेजीके सातवें या आठवें क्लासमें पढ़ते थे, उनका विवाह निश्चित हुआ और आनन्दपूर्वक सुचारुरूपसे शादी हो गयी। शादीके पश्चात् वंशीधरजी अपनी ससुराल इकनौरा दो-एक बार आये गये।

समय बीतनेपर गौना होनेकी बात चली और इसी गत ज्येष्ठके महीनेमें गौना होना निश्चित हुआ। परन्तु विधाताका विधान कुछ और ही था। गौना होनेकी तिथिमें केवल एक सप्ताह शेष रहा, तब रेशमदेवीके पति वंशीधरजी अचानक बीमार पड़ गये। और इकनौरा सूचना दी गयी कि वे अत्यन्त भीषण रोगसे ग्रसित हैं कोई देखना चाहे तो देख ले।

चूँकि यह दुःखद संवाद शामको मिला था, इसलिये रेशमदेवी तथा कुटुम्बियोंने जैसे-तैसे रात काटी। प्रातः होते ही रेशमदेवी लहड़ूमें बैठकर अपने मामा श्रीरामके साथ पिताकी आज्ञासे कसरावाँको रवाना हुई। अपने प्रियतमके दर्शनके ध्यानमें संलग्न मार्गमें चली जा रही थीं कि अचानक उनके मुँहसे निकला कि 'मामा! काम तो हो गया चलना व्यर्थ है।' मामाने कहा घबड़ाओ नहीं। थोड़ी ही देरमें एक आदमीसे सूचना मिली कि वंशीधर इस असार संसारसे विदा हो गये, और उनका शव गंगाजीको आ रहा है, अब कसरावाँ न जाकर उधर ही चलना चाहिये। इन वज्रतुल्य शब्दोंकी चोटसे रेशमदेवीको जो व्यथा हुई होगी उसको कोई भी नहीं लिख सकता। लेकिन फिर भी वह चुपचाप थीं, शान्त थीं और उनके नेत्रोंमें एक भी आँसू नहीं था। वह शान्तिकी पुजारिन न मालूम किस देवके ध्यानमें ध्यानावस्थित थीं।

जिस मार्गसे पतिका शव जा रहा था, उसी ओरको रेशमदेवीका लहड़ू रवाना हुआ। करीब दो घड़ी दिन रहे रेशमदेवीको अपने प्रिय पतिकी लाश देखनेको मिल गयी, और गौना हो गया। देवी

फूट-फूटकर रोने लगीं, और मृत शरीरके पास जाकर अपनी साड़ीके छोरसे पतिका मुँह पोंछा और रोकर कहा कि 'बोलो' परन्तु कौन बोले? फिर दुबारा कहा कि 'बोलना पड़ेगा' इतनेमें ही लोगोंने खींचकर उसे अलग कर दिया, और फिर शवके पास बहुत कम जाने दिया। यह रात्रि जैसे-तैसे सबको वहीं काटनी पड़ी।

प्रातः भगवान् भास्करकी किरणोंके प्रकट होनेके साथ-ही-साथ, रेशमदेवीका पवित्र विचार भी प्रकट हो गया। उन्होंने अपने ससुर, जेठादिके चरण-स्पर्श करके कह दिया कि मैं सती होऊँगी। और उसी समयसे अपने सिरसे साड़ी हटाकर कन्धोंपर कर ली। जब अनेकों प्रकार समझा-बुझाकर भी लोग उनके पवित्र विचारको रोकनेमें सफल न हुए तो देवीके मामा आदि सम्बन्धियोंने पकड़कर उन्हें लहड़ूमें बैठा लिया, वह बेचारी पर कटे हुए पक्षीकी भाँति फड़फड़ाती हुई अन्तमें मूर्छित हो गयीं।

उधर वंशीधरका मृत शरीर अन्तिम संस्कारके अर्थ गंगाजीको रवाना हुआ। और रेशमदेवीका मृततुल्य ही मूर्छित शरीर इकनौरा ले जाया गया। तीन-चार घण्टे पश्चात् मूर्छावस्थाहीमें देवीका शरीर उतारकर आँगनमें रख दिया गया। चेत होनेपर उन्होंने कई बार उठ-उठकर पतिके पास जानेका प्रयास किया, पर बलात् रोक लिया गया।

जब देवीने जाना कि इस भाँति काम न चलेगा; तो वह शान्त हो गयीं और उठकर भलीभाँति स्नान किया तथा नित्यकी भाँति तुलसीजीकी पूजा पाठ करने बैठ गयीं। पाठ समाप्त करके पुनः अपना 'सती होने' का दृढ़ विचार प्रकट किया। उसी समय एक वृद्ध कुटुम्बीने कहा कि 'देखा बिना पति-देहके कोई सती नहीं होती, सुलोचना भी तो पतिका शीश लाकर ही सती हुई थी।' देवीने उत्तर दिया कि 'नहीं, ऐसा नहीं, सुलोचना तो भगवान्‌के दर्शनके लिये गयी थी। दैवयोगसे शीश मिल गया तो ले लिया। स्त्रीका सारा शरीर ही पतिका शरीर है। पतिव्रताको सती होनेके लिये पतिशरीर ही अनिवार्य नहीं है। उसे तो केवल 'सत्' चाहिये।' इसपर लोगोंने कहा कि बिना कोई सत्‌की बात देखे कैसे विश्वास हो कि तुम सती हो सकती हो। देवीने झट अपनी कनिष्ठिका

अँगुली जलती हुई आरतीसे लगा दी और अँगुली मोमबत्तीकी भाँति जलने लगी। जब आधी जल गयी तब देवीने कहा कि देखो 'मेरे पतिदेवका शरीर भी अभी जला नहीं है, चिता तैयार हो गयी है और लोग उनको स्नान करा रहे हैं। शीघ्रता करो मुझे स्नान कराओ नहीं तो मकानादि सब भस्म हो जायगा।' बस फिर क्या था, लोगोंके मस्तिष्क चकराये, कोलाहल मच गया। देवीने अँगुली दिवालसे रगड़ दी, वह बुझ गयी। जो निशान अँगुली बुझानेसे दीवालपर बन गया था उसे अपनी माताके लिये छोड़ा क्योंकि माता पहलेहीसे दूसरे ग्राममें अपने किसी सम्बन्धीके यहाँ गयी हुई थीं। देवीने लोगोंसे कहा कि 'मेरा यह निशान माताको दिखाकर समझा देना कि तुम्हारी रेशम पतिके साथ जा रही है।'

पश्चात् देवी उठ खड़ी हुई, एक मुट्ठीभर कुश बगलमें दबाया, एक हाथमें अपने अन्तिम कालतकके आश्रय परम प्रिय रामायणकी पुस्तकको लिया और दूसरेमें आरतीकी कटोरी। इस दशामें सिर खोले हुए दुर्गारूपिणी देवी घरसे निकल पड़ी। आगे-आगे तेजपुञ्ज मूर्ति जा रही थी और इधर-इधर हजारों आदमियोंकी भीड़ चल रही थी। जिस बागमें बारात ठहरी थी उसीमें एक पीपल वृक्षके नीचे, जहाँपर पतिकी पीनस रही थी, उन्होंने स्थान पसन्द किया। अति शीघ्र वह स्थान गोबरसे लिपवाया, उसपर कुश बिछा दिये, चन्दन छिड़का और आरतीकी कटोरी अलग रख दी। श्रीरामायण दोनों हाथोंमें दबाकर पूर्वाभिमुख एक पैरके बल खड़ी हो गयीं और जैसा कि घरसे निकलते समयसे राम-राम उच्चारण करती आ रही थीं वैसा ही करती रहीं। दो-तीन मिनट बाद एकदम दक्षिणको मुँह किया और आसन बाँधकर बैठ गयीं। अब ओष्ठ चलते थे लेकिन आवाज नहीं थी। एक मिनटके अन्दर ही तमाम शरीरसे लपटें निकलने लगीं। नीचेकी ओरसे शरीर जलने लगा। जितना शरीर जलता था उतनी ही साड़ी जलती थी। बादको जब सिर नीचेको झुका तब आगकी एक लौ पचीस-तीस फीटतक ऊँची गयी। शरीर लगभग जल चुका था तब लोगोंके कुछ नेत्र खुले और सतीका सत् समझमें आया। फिर श्रद्धा और पूज्यभावसे घी-मेवादि चढ़ाया गया, जय-जयकारका घोष किया और लोगोंने अपनेको

धन्य समझा।

इस प्रकार बिना किसी वस्तुके संयोगके स्वतः प्रज्वलित हुई प्रेम-अग्निसे सप्तदशवर्षीया प्रेमिणीका पुनीत शरीर शान्त हो गया। जगत्‌में यश छा गया, माता-पिताका जीवन धन्य हुआ, और पातिव्रत धर्मका अटल नियम हो गया।

अब समाधि बन गयी है जिसके दर्शन करके और स्थानीय लोगोंसे सतीचरित्र सुनकर दर्शकगण अपनेको कृतार्थ समझते हैं और मुझे तो यही स्मरण आता है कि-

पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुजस धवल जग कह सब कोऊ॥

(कल्याण वर्ष ९/७/१०६६, पं०श्रीलालरामजी शुक्ल)

******

ईश्वरकी दयाका ज्वलन्त प्रमाण

गत ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीयाको दरभंगेके लक्ष्मीसागर तालाबपर श्रीजंगलीबाबा साधुके दर्शन करनेके लिये कादराबाद मुहल्लेके पश्चिम-दक्षिणकी ओर रहनेवाले श्रीकुञ्जविहारी मिश्र वैद्य गये। इनके भाई श्रीसत्यदेव मिश्र भी चिकित्सक हैं और उनका औषधालय दरभंगेमें कादराबाद मुहल्लेमें है। गत भूकम्पके सम्बन्धमें बाबाजी द्वारा कुशलप्रश्न किये जानेपर श्रीकुञ्जविहारीजीने कहा-

मेरी एक विवाहिता कन्या, जिसकी उम्र लगभग चौदह-पन्द्रह वर्षकी है, बचपनसे ही ईश्वरमें अनुरक्त रहती है। वह त्रिकाल स्नान करती है, नियमसे पूजा-पाठ करती है और उत्तम पुस्तकें पढ़ती है। उसने श्रीबद्रीनारायणधामकी यात्रा भी की है और वहाँसे लौटनेपर वह बड़ी श्रद्धाके साथ भगवत्-मूर्तिकी पूजा करती है। उसकी मुख्य निष्ठा है श्रीभगवान्‌की सेवा और स्मरणमें सदा अनुरक्त रहना। इसमें वह श्रीमीराबाईको अपना आदर्श मानती है। सावित्री, सत्यवान् आदि पातिव्रतसम्बन्धिनी कथाओंको बड़ी श्रद्धासे पढ़ती है और पतिव्रत-धर्मको अपना आदर्श समझती है। श्रीभगवान्‌की सेवामें जीवन लगानेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होनेपर भी वह पिता-माताकी आज्ञाको शिरोधार्यकर विवाहके लिये सहमत हुई थी। परन्तु अब भी भगवत्सेवा ही उसके जीवनका मुख्य व्रत है और वह अपना अधिकांश समय ईश्वर-स्मरणमें ही बिताती है।

गत १५ जनवरीके भीषण भूकम्पके दिन कम्प होनेके समय वह अपने मकानके दो मंजिलेपर अकेले मध्याह्न-स्नान कर रही थी। नीचेके लोगोंके भागनेका कोलाहल सुनकर वह नीचे उतरी और सड़कके तरफ निकलकर भागने लगी। इसके निमित्त उसे तीन कोठरियोंको लाँघना पड़ा। इसके बाद जब वह निकली तो निकलते ही उसपर अपने मकानकी दीवार गिर पड़ी, साथ ही दो और मकानोंकी दीवार भी उसपर गिर पड़ी। यों तीन दीवारोंका ढेर उसपर पड़ गया और वह उसके नीचे दब गयी। भूकम्पके बाद हमलोग आँगन तथा मकानके अन्य मुख्य-मुख्य स्थानोंसे मलबा हटवाने लगे, क्योंकि हम समझे हुए थे कि लड़की यहीं कहीं दबी होगी। वह इतनी दूर जाकर दबी है यह किसीने नहीं समझा था। तीन दिनोंकि बाद जब उस स्थानका मलबा हटाया गया तब वह लड़की अर्धचेतन अवस्थामें वहाँसे निकाली गयी। होशमें आनेपर लड़कीने अपने दबनेकी घटना बतलाकर कहा कि जब दबे रहनेमें मुझे असीम कष्ट होने लगा तब एक परम सुन्दर पीतवस्त्रधारी बालक प्रकट हुए, जिनके रूपकी सुन्दरताका वर्णन नहीं हो सकता। उन्होंने मुझे आश्वासन देकर कहा कि 'तुम्हारा कष्ट दूर होगा, जीवनकी शंका मत करो, तुम जीती ही इस अवस्थासे छूट जाओगी।' वह बालक जब मेरी पीठपर हाथ रखते थे तब मुझे न बोझ मालूम होता था, न और कोई कष्ट! इस प्रकार वह मेरी पीठपर हाथ रखकर मेरे कष्टको दूर करते थे और तब मुझको नींद भी आती थी। जब-जब मुझे कष्ट होता, तभी तब वह प्रकट होकर मेरी पीठपर अपना हाथ रखकर मेरा कष्ट दूर करते थे। लड़कीके पिताने कहा कि 'भूकम्पके बाद उस लड़कीकी श्रद्धा-भक्ति श्रीभगवान्में और भी अधिक बढ़ गयी है।'

भूकम्पके सम्बन्धमें ऐसी अनेक घटनाएँ हुई जिनमें विपद्-ग्रस्तोंकी रक्षा हुई, वे बुरी-से-बुरी स्थितिमें पड़कर भी बच गये, ऐसा होना ईश्वरकी कृपा बिना सम्भव नहीं था। परन्तु इस घटनामें विशेषता यह है कि यहाँ विपद्-ग्रस्त एक भगवत्-कृपाकी पात्री थी जिसके कारण श्रीभगवान्को स्वयं प्रत्यक्ष होना पड़ा। इससे सिद्ध है कि इस कलिकालमें भी भक्तको भगवान्का साक्षात्कार होता है।

(कल्याण वर्ष ९/७/१०७२, एक दीन)

******

चित्रकूटधामकी यात्राके विचित्र अनुभव

(१)

दोपहरकी धूपमें कल-कल निनाद करती हुई पावन मन्दाकिनीकी सरस धारामें हाथ-मुँह धोकर आनन्दपूर्वक सती अनसूयाजी इत्यादिके पूजनोपरान्त हम सबने उन पवित्र वृक्षोंकी छायामें भोजन किया। सन्ध्या होनेसे पूर्व ही स्थानपर पहुँचना है इस विचारसे हमलोग शीघ्र ही लौट पड़े। तनिक दूर चलकर लगभग एक सौ नब्बे सीढ़ी चढ़कर श्रीहनुमानजीका मन्दिर था। गुरुजनोंकी आज्ञा प्राप्त कर हमलोग ऊपर चढ़े। इधर-उधर कन्दराएँ दीख पड़ीं। मेरा हृदय आनन्द एवं उत्साहसे उमड़ पड़ा। किन्तु साथ ही वेदनाके आर्त्तनादमें वह हर्ष तुरन्त विलीन हो गया। मैंने सोचा, कल हमलोगोंको जाना है। सुना है, इस पवित्र स्थानपर रात्रिको शङ्खकी ध्वनि आती है। धूनियाँ दीख पड़ती हैं, एवं 'राम-राम' का शब्द सुनायी पड़ता है। कभी-कभी ब्रह्मनिष्ठ महात्माओंके दर्शन भी हो जाते हैं, जिससे फिर मनुष्यका संसारमें भटकना समाप्त हो जाता है। यदि मैं भी एक रात यहाँ रह सकता! किन्तु मुझे यहाँ कौन रहने देगा? मेरा ऐसा भाग्य कहाँ? यह विचार आते ही अपनी अवस्थापर एवं गुरुजनोंका साथ मेरी लालसामें कितना बाधक है, यह विचारकर मैं उदास हो गया, मेरी आँखोंमें आँसू आ गये। आँसू पोंछकर आगे बढ़ा। जहाँपर पहाड़ीका एक सिरा समाप्त होता था, वहींपर एक बड़ी गुफा थी। उसमें कुछ राखके ढेर पड़े थे। ऐसा जान पड़ता था कि किसीने यहाँ धूनी रमायी थी। गुफा बिल्कुल खुली थी और उसका बाहरी भाग प्रकाशमय था। कुछ दूर चलनेपर गुफा समाप्त-सी हो जाती थी एवं वहाँसे दूसरी बहुत छोटी कन्दराका प्रारम्भ था। हमलोग वहाँतक गये। आगे जानेका साहस न कर लौट आये। भ्रातृगण एक ओर बैठकर यहाँके प्राकृतिक सौन्दर्यकी मीमांसा करने लगे। मैं उसी स्थानपर गुफाके एक पत्थरके सहारे खड़ा होकर उस सँकरी कन्दराकी ओर लालायित नेत्रोंसे देखने लगा। सहसा फिर हृदयमें वेदना जाग उठी। दुर्भाग्य निश्चय हो जानेपर भी एक हूक निकल ही गयी। यों ही रोते-रोते मैंने कहा 'प्रभो! मुझे विश्वास है कि इस पवित्र कन्दरामें कोई महापुरुष हैं। यहाँका वातावरण

यही कह रहा है। क्या इस पामरकी करुण पुकार नहीं सुनेंगे? नाथ! क्या यहाँसे जानेसे दो क्षण पहले दर्शन नहीं दे सकते?' आँसू धरतीपर गिर रहे थे, हृदयकी पुकार शरीरमें रोमाञ्च उत्पन्न कर रही थी। इस मस्तीमें सारी कन्दरा भगवान्‌का विश्रामस्थान-सा जान पड़ने लगा। सहसा अन्दरवाली कन्दराका अन्धकार अधिक काला हो गया—ऐसा जैसा कि सिनेमाहालमें चित्रपट प्रारम्भ होनेसे पूर्व हो जाता है और साथ ही चित्रपट भी प्रारम्भ हो गया। आह! लेखनीमें इतनी शक्ति कहाँसे लाऊँ? वाणीमें इतना गाम्भीर्य कौन दे सकेगा कि जिससे मैं संसारको विश्वास दिला सकूँ कि मैंने जो कुछ देखा था वास्तवमें उसका प्रारम्भ वैसे ही हुआ था, जैसे उस अँधियारे सिनेमाहालमें चित्रपटका दर्शन होता है? उस अँधियारेमें द्वारसे तनिक दूरपर तीन फण लहरा रहे थे। उनका रंग था चाँदी-जैसी उज्ज्वल धातुके समान, नहीं, उससे भी अधिक उज्ज्वल! रह-रहकर तीनों शिर सूर्यकिरणकी भाँति जगमगा उठते थे। अपनी विजयपर मेरा हृदय नाच उठा। हृदयने कहा, दौड़कर गुफामें घुस जा, किन्तु नेत्र उस जगमगाहटके देखनेमें ऐसे लीन थे कि पैर न उठा। श्रद्धा-जल नेत्रोंसे बह रहा था। नतमस्तक होकर मैंने प्रणाम किया। तीनों फण नीचे झुके, मानो आशीर्वादका शुभ-सन्देश सुना रहे थे। मैंने दोनों भाइयोंको भी बुला लिया। उन दोनोंने भी यह दृश्य देखा। पश्चिमी विद्याका प्रभाव रहा होगा, इसीसे वे कुछ क्षणोंतक शङ्का, विचार एवं उद्विग्नतासे उस ओर देखते रहे। अन्तमें स्वयं 'जय हो' कहते हुए उन्होंने भी प्रणाम किया। एक बार फिर तीनों फण झुके और फिर लहराने लगे। हृदयका उत्साह दूना हो गया। सहसा एक परिवर्तन दीख पड़ा। रह-रहकर बीचवाले फणके स्थानपर एक जटाधारी, कुण्डल धारण किये हुए, तेजपुञ्ज शिव-समान आकृति दीख पड़ने लगी। अब तो हृदयमें विश्वासकी सरस धारा बह चली। सहसा सत-आठ यात्रियोंने प्रवेश करते हुए प्रश्न किया—'इसमें क्या है?' मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। साधारणतः वे यात्री भी उस सँकरी कन्दरातक चले गये एवं उदास मनसे लौट आये। विचित्रता यह है कि जिस समय वहाँ कन्दराके समीप खड़े वे लोग कह रहे थे कि 'गुफा है, भीतर जाकर देखें तब मालूम हो' उसी समय

हम तीन प्राणी उस विचित्र दृश्यका दर्शन कर रहे थे!

चलनेकी पुकार हुई और दो क्षण पूर्व सूर्य-प्रकाशके समान चमकनेवाली तीनों मूर्तियाँ भी पूर्वकी भाँति उसी भयानक-से अन्धकारमें विलीन हो गयीं। समय नहीं था। मैं खिन्न मन लिये नीचे चला आया। भगवान् जानें, यह सब क्या था! जब यह विचार आता है कि दु:खी हृदयकी करुण पुकार एवं जाने कितने दिनोंकी लगनका फल अथवा मेरे प्रति उस पावन यात्राकी उद्देशपूर्तिमात्र थी, तब तो हृदय गद्गद हो उठता है परन्तु दूसरे ही क्षण हृदयकी विचित्र दशा हो जाती है। क्या मुझ-जैसे पामर-जिसका जीवन वास्तवमें पतनकी ही आराधना करता हो, जिसे विश्वास, श्रद्धा, एवं परमार्थ सब कोसों दूरसे चमकनेवाले धुँधले-से दीपककी भाँति जान पड़ते हों उसपर कोई महापुरुष अथवा स्वयं भगवान् ही ऐसी कृपा क्यों करेंगे?

सुना है गोकुल, वृन्दावन, चित्रकूट इत्यादि लीलाधामोंमें प्राय: प्रभुकी ऐसी अद्भुत लीलाएँ हुआ ही करती हैं, इसीसे इस स्थानसे चलकर आगे एक अन्य घटना हुई थी-इतनी ही विचित्र, उसका भी सम्पूर्ण विवरण देता हूँ।

(२)

अनसूया-धामसे लौटनेपर फटिकशिला, श्रीप्रमोदवन,श्रीसरसावन, इत्यादि स्थानोंके दर्शन करते हुए मुख्य स्थानपर रात्रिसे पूर्व ही आ जानेका विचार हुआ। साथमें एक अति बूढ़ा पथ-प्रदर्शक था। हम सब भाई-बहिन इत्यादि मिलकर छ: प्राणी उसीके सहारे चल दिये। हाँ, न जाने कहाँसे साथमें दो कुत्ते भी हो लिये थे।

चार अथवा छ: मील चलकर न जाने क्या विचार कर उस बूढ़े पथ-प्रदर्शकने साधारण पथ छोड़ दिया। सम्भवत: इसी विचारसे किसी पगडण्डीद्वारा जल्दी राह समाप्त हो जावेगी। विकट जङ्गलका प्रारम्भ होनेको था। वास्तविक पथ पीछे छूट गया था। पगडण्डी भी न जाने कहाँ चली गयी। सहसा दोनों कुत्ते पुन: प्रकट होकर विभिन्न प्रकारसे उस ओर न जाकर दूसरी ओर जानेका संकेत करने लगे। किन्तु उनकी कौन सुनता था। अन्तमें हताश

होकर वे दोनों उसी स्थानसे न जाने किस ओर चले गये।

प्रतिक्षण वनकी विकटता बढ़ती जाती थी। गाइड महोदय थे तो बूढ़े किन्तु ग्राम्य जीवनके प्रभावसे इतने तेज चलते थे कि हमलोग उनकी चालको पहुँचना असम्भव-सा जानते थे। वे बहुत आगे थे। पूज्य मामाजीका आदेश पाकर मैंने उन्हें पुकारा। उनके पास पहुँचकर देखा वे बहुत घबराये-से खड़े थे। पूछनेपर ज्ञात हुआ कि ठीक पगडण्डी न पाकर वे रास्ता भूल गये हैं। हमलोग एक विकट एवं निर्जन स्थानमें बिल्कुल अकेले थे। राहका कहीं भी पता न था। इतनी दूर आ गये थे कि पीछेका रास्ता भी गुम हो गया।

हमलोग कुछ कहें-सुनें, इस विचारसे गाइड देवताने अपने साहसका परिचय देते हुए अनजाने ही एक ओर चलना निश्चय किया। बोले 'इसी ओर तो 'फटिकशिला' है। उसी सीधमें मैं चलता हूँ।' तनिक-सी पगडण्डी सामने थी, उसीके सहारे हमलोग उनके पीछे-पीछे चल पड़े किन्तु थोड़ी-सी दूर चलकर अन्तमें वह भी समाप्त हो गयी। अब चारों ओर विकट वनके अतिरिक्त और कुछ भी न था। केवल छः-सात असहाय प्राणी खड़े यहाँसे निकलनेकी बात सोच रहे थे। गाइड निराश होकर मन्द गतिसे चलने लगा। किन्तु वहाँ तो किसी विशाल हाथीके जानेसे पैरसे रौंदी हुई बड़ी-बड़ी घासका ही रास्ता था। जाते कहाँ? उसे देखकर मैं भी भयभीत हो उठा। यदि किसी साधारण एवं प्रभावरहित स्थानके ऐसे विकट स्थलमें असहाय प्राणी खड़े होते तो न जाने कितने सिंह एक साथ उनपर कूद पड़ते? मैंने भयपूर्ण नेत्रोंसे पूज्य मामाजीकी ओर देखा, वे परम पूज्य भक्त हैं, उनका विश्वास, श्रद्धा एवं सेवकभाव सराहनीय है। गुरुभक्तिकी तो वे सजीव मूर्ति ही हैं। इस घटनासे कई बार पूर्व निर्जन स्थानोंपर हमलोगोंके यों ही परिहासमें भयजनक दृश्यकी रचनामात्रपर वे गद्गद कण्ठ एवं अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे कह उठते थे 'अहा! ऐसा अवसर तो आवे। देखो न, श्रीगुरुदेवके साथ इस स्थानपर तो चारों ओर श्रीरघुनाथजी धनुषबाण लिये लक्ष्मणजी और सीताजीके साथ सहित खड़े हैं।' साथ-ही-साथ अपने प्रभुका नर-शरीरसे उस स्थानके कष्ट सहना उन्हें उसी समय स्मरण हो आता

और बिलख-बिलखकर रोने लगते। हाँ, उसी विश्वासपूर्ण मधुर भावनाको लेकर उन्होंने मुझसे कहा 'क्यों चिन्ता करते हो? यह भी कोई भयका स्थान है? रघुनन्दन स्वामी स्वयं उपस्थित होकर स्वयं सँभाल लेंगे।' और बस इन्हीं शब्दोंमें सब कुछ भरा था। यदि विश्वास एवं भक्तिका कुछ भी महत्त्व है तो दो पग आगे यही सब हुआ।

निर्जन स्थान, विकट वन, राहका पता नहीं, हताश हो मन्द गतिसे वृक्षोंको हाथोंसे हटाते रास्ता बनाते हमलोग चल दिये। फिर एक बार पूज्य मामाजीने नेत्रोंमें विश्वासके पावन आँसू भरकर वही शब्द दुहरा दिये। सहसा शब्द-ध्वनि सुन पड़ी। मैं सहम-सा गया। दो लम्बे-चौड़े मनुष्य, नंगे बदन सिरपर पगड़ी पहने हाथमें घास काटनेका हँसिया लिये बड़ी मधुर हँसी हँसे। आह! उन घसियारेकी मूर्ति, किन्तु उनपर वह मधुर हँसी देखने योग्य थी। दोनों भाई जान पड़ते थे। एक श्याम शरीरके अधेड़ अवस्थाके एवं कुछ गम्भीर, दूसरे बीस-बाइस वर्षके गौरवर्णवाले अति चपल। हँसते हुए वे उस बूढ़े गाइडको रोककर पूछ रहे थे क्यों! फटिकशिलाका यही रास्ता है? हमलोग भी समीप आ गये। उसी प्रकार मधुर हँसी हँसकर उन्होंने पूछा, 'कहाँ जाओगे?'-भगवान् जानें वह सब क्या था किन्तु छोटे युवकको वह बाँकी हँसी एवं इस प्रकार खड़े होना कि मानो ब्रह्माण्डका काम उन्हींके हाथमें हो, नहीं भूलता। सबने घबड़ाकर उत्तर दिया 'फटिकशिला।' हँसकर उन्होंने कह दिया इधर तो रास्ता नहीं है। फिर तनिक ठहरकर उन्होंने एक दूसरेकी ओर देखा। फिर मुस्कुराकर कहा 'अच्छा, इस तरफसे चले जाओ, आगे रास्ता मिल जायगा। यों तो बहुत दूर आ गये हो।' उसी घबराहटमें गाइडके साथ हम सब आगे बढ़ गये। दोनों व्यक्ति खड़े थे और मुस्कुरा भी रहे थे। पूज्य मामाजीने पूछा, 'आपलोग यहाँ कैसे?' उत्तर मिला यों ही घास काटने चले आये थे। आपलोग अनसूयाजीसे आ रहे थे, दर्शन हो गये। एक बार हँसकर वे अपने काममें लग गये। किन्तु हँस-हँसकर जाते हुए यात्रियोंको देखना अधिक सिद्ध था अथवा वे केवल अपने काममें ही लगने जा रहे थे-यह बताना कठिन है।

दस-बीस गज जाकर मामाजी कुछ चेते। किसी वेदनायुक्त

वाणीमें बोले 'भाई! राम-लक्ष्मणके दर्शन तो हो गये। श्रीसीताजीके दर्शन बाकी रहे।' लड़कोंने सुनी बात अनसुनी कर दी। इतना विश्वास किसे? वे भी चुप हो गये।

फिर रास्ता समाप्त-सा हो गया। फिर वही विकट वन-उससे भी अधिक। बूढ़ेने निराश होकर कह दिया 'भाई! मैं फिर रास्ता भूल गया।' सब लोग हताश हो गये। किन्तु तनिक आगे और बढ़े। एक ओर उसी सघन वनसे न जाने किधरसे एक देवी लाल धोती पहने, सिरपर घासकी गठरी रक्खे, हाथमें हँसिया लिये गम्भीरताकी मूर्ति चली आ रही थी। सहसा मामाजीकी वाणीसे इतना ही निकला 'अरे, तुम तो सीताजी हो।' उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। पूछा, 'तुमलोग यहाँ कैसे आ गये?' यात्राका सब हाल बताया गया। सुनकर 'अरे, यह तो बड़ा धोखा हुआ' कहकर वे तनिक पीछे होकर पूज्य मामाजीसे कुछ वार्तालाप करने लगीं, बात यात्राके सम्बन्धमें थी। फिर कहा 'अच्छा चलो, मैं रास्ता बताये देती हूँ।' मामाजीने पुनः वही कहा 'तुम तो सीता हो।' हँसकर उन्होंने केवल इतना कहा 'अरे, हम तो आप लोगनके दरसनका चले आएन। तुम लोग अनसुइयाधामसे आवत रहौ।' गाइड महोदयसे नहीं रहा गया-बोले 'तुम हियाँ घास कटती रहौ।' उन्होंने हँसकर 'हाँ' कर दिया। दो-चार बातें करनेके उपरान्त उन्होंने कहा 'जाओ, किनारे-किनारे इधरसे चले जाओ। अब रास्ता नहीं खोवेगा।' वे एक ओर चल दीं। हमलोग भी घटनाकी चर्चा करते चल दिये। फिर आसानीसे ही अन्य स्थानों एवं अति दुर्लभ जिनके दर्शन सन्ध्याको होते उन पूज्य श्रीस्वामी रामनारायण ब्रह्मचारीके सहजमें ही दर्शन प्राप्त कर फिर बिना भटके हमलोग स्थानपर पहुँच गये।

विश्वासमूर्ति पूज्य मामाजीको उसी रूपमें-अपनी भक्तिके अनुसार-श्रीरघुनाथजीके पावन दर्शनका ही विश्वास है। यहाँ जिससे भी अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे वे यह घटना कहते हैं वही विह्वल हो कहता है 'बड़े भाग्य थे। आपने चरण क्यों नहीं पकड़ लिये?' इसपर उन्हें भी बड़ी पीड़ा-सी होती है-'भाग्यमें नहीं था। वहाँ जब खड़े थे तब ज्ञान ही नहीं रहा था' कहकर वे चुप हो जाते हैं।

किन्तु भगवन्! मेरे प्रति तो यह सब विचित्रता ही है।

हृदयकी विचित्र एवं अनिश्चित दशाके कारण कभी विषाद, कभी हर्ष एवं कभी शान्ति-लाभ-सा होने लगता है। किन्तु एक निश्चय मत जानकर हृदयमें शान्ति होगी।

(कल्याण वर्ष ९/११/११६८, श्रीशीलजी)

******

भक्त बलदेवदास

संवत् १८९८ के वैशाखमें जयपुर राज्यके अन्तर्गत नीमका थाना निजामतके समीप गाँवड़ी गाँवके भक्त बलदेवदासने जन्म लिया था। आप जातिके गौड़ ब्राह्मण थे। छोटी अवस्थामें माता-पिताके मर जानेसे बहुत वर्षोंतक निराश्रय और संकुचित अवस्थामें रहे। पीछे पास ही गणेश्वर गाँवमें उनको एक मन्दिरकी पूजाका काम मिल गया। चरीभर चून माँग लाना और भोग लगाकर खा लेना–यही वहाँ काम था–और यही उस मन्दिरकी जीविका थी। ठाकुरजीका नाम सीतारामजी था, उनकी चरणचौकीपर कई शालग्रामजी भी थे। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि देहातके जनशून्य मन्दिरकी अबतक बुहारी या सफाई सम्भवतः वायुसे होती थी।

सम्भव है, इस प्रकारके पूजनादिसे ठाकुरजी कई वर्षोंसे कुण्ठित रहे हों और बलदेवदास जैसे अधेड़ निरक्षर और अनभिज्ञ किन्तु भक्त व्यक्तिको भी अकेले होनेकी दशामें उत्तम, अनुकूल और आवश्यक मान लिया हो। यही कारण है कि एक अदृष्टपूर्व अपरिचित सेवा-कार्यके साधनभूत मन्दिरमें प्रवेश करते ही बलदेवदासका मन प्रेम-पुलकित हो गया और वह बड़ी प्रीतिके साथ सेवा-पूजाका कार्य करने लगे, पूजा क्या थी–एक कटोरेमें सम्पूर्ण शालग्रामको जलमग्न करके निकाल लेना, उनको सीतारामजीके समीप बिठा देना–प्रत्येक मूर्तिके चन्दन और तुलसी लगा देना; और प्रसाद अर्पण करके आरती कर देना, यही पूजा थी। इसीमें सीतारामजीका पञ्चोपचार, षोडशोपचार या राजोपचारादिका आभास होता था।

बलदेवदास अविवाहित थे। जनशून्य मन्दिरोंमें अकेले रहते थे। जवानीका झोंका सीतारामकी संलग्नतामें निकल गया था, और मनकी एकाग्रता यथाक्रम बढ़ आयी थी। अतः बलदेवदासने

सीतारामजीको ठाकुरजी मान लिया। वे उनकी धातुमय मूर्तिमें चैतन्यका अनुभव करने लगे और उसी मूर्तिमें भगवान्‌का होना मानने लगे। ठाकुरजीके लिये केसर, चन्दन, धूप, दीप या पुष्पादि लाना, वस्त्राभूषण बनवाना, कुछ अच्छे पदार्थ (चुपड़ी हुई रोटी, मुट्ठीभर शक्कर और दहीका कटोरा) भोग लगाना—उसीको आप स्वयं खा लेना—शेष रोटी भूखे-प्यासेको देते रहना और सायं प्रातः तन्मय होकर आरती करना आदि बलदेवदासके स्वाभाविक काम हो गये।

अब वह इन कामोंको स्वामिभक्त, श्रद्धावान् सेवककी तरह मन लगाकर सुचारुरूपसे करने लगे और ठाकुरजीको प्रत्यक्ष समझने लगे। धीरे-धीरे उनका भाव यहाँतक बढ़ गया कि अपनी अभीष्ट सिद्धि आदिके लिये भी वे ठाकुरजीसे ही कहने लगे और यथाक्रम सब काम होने भी लगे। मन्दिर सुधरवाया, उसे बड़ा बनवाया, बगीचा लगवाया, पोशाकें बनवायीं और बर्तन-बासन भी मँगवाये। लोग पूछते कि 'यह कहाँसे मँगवाये' तो उत्तर मिलता कि 'मेरे ठाकुरजीने मँगवाये-या करवाये हैं।' गणेश्वरमें गालव ऋषिका आश्रम है। वहाँ कोई चार सौ वर्षसे स्वच्छतम सुमिष्ट गरम जलकी बड़ी धारा गोमुखद्वारा अहोरात्र अविच्छिन्न गिरती है। पर्वादिके अवसरोंमें दूर देशके हजारों यात्री वहाँ स्नानार्थ जाते हैं और वास्तवमें यह है भी अद्वितीय तीर्थस्थान।

परम्परागत निवास रहनेके अनुरोधसे इन पंक्तियोंका लेखक भी कई वर्षोंतक गणेश्वर रह आया है, और बलदेवदासजीकी आन्तरिक कृपा एवं उनकी भगवद्भक्तिका (कई बार समक्षमें रहकर) अनुभव कर आया है। यह आँखों देखी बात है कि बलदेवदास अपने ठाकुरजको वास्तवमें बोलते-चालते और कार्य करते मानते थे। और कई बार कई कामोंके लिये ठाकुरजीको आग्रह और नरमाईसे कहते, और कई बार रूखे भावसे या नाराज होकर भी कहते थे। किन्तु ईश्वर-कृपासे उनकी संपूर्ण कार्य-सिद्धि स्वतः होती रहती थी। उदाहरण लीजिये—

(१) एक दिन बलदेवदासने ठाकुरजीसे कहा कि—'घी समाप्त हो गया है—इसका बन्दोबस्त करना नहीं तो रूखी रोटी खानी पड़ेगी।' दूसरे दिन घी बिल्कुल नहीं था। बलदेवदासने दो रूखी रोटियाँ भोगमें

रख दीं और पास ही पहरूदारकी भाँति आप स्वयं भी बैठ गये (मानो ठाकुरजी खा रहे हैं, और रूखी रोटी उनके कण्ठोंमें अटकती हुई या गड़ती हुई जा रही है।) बलदेवदास जरा नाराज होकर बोले कि 'मैंने कल ही कह दिया था, घी नहीं है। अब क्यों कुढ़ते हो, जैसी है वैसी खा लो, पानीके साथ गले उतार लो, आप ही पेट भर जायगा।' अस्तु। दूसरे दिन माँगकर लाये हुए आटेमें एक रुपया मिल गया, उसको लेकर वह ठाकुरजीके पास गये और उलाहना देने लगे कि 'अगर यही रुपया कल दे देते तो रूखी रोटियोंसे कण्ठ क्यों छिलते?'

(२) एक बार गणेश्वरमें सप्ताह-यज्ञकी समाप्ति हुई थी। बलदेवदासको भी बुलाया गया। उनके पास एक कौड़ी भी नहीं थी। वह ठाकुरजीसे कहने लगे-'इज्जत बिगाड़नेके लिये बुलावा भी क्यों मँगवाया?' उसी क्षण एक पोटली नजर आयी जिसमें ग्यारह रुपये थे। बलदेवदास हँसी-खुशी सप्ताहके भेंट कर आये।

(३) एक बार उनको स्वयं सप्ताह-यज्ञ करानेकी इच्छा हुई। भीखके आटेको बचाकर इकट्ठा किया। एक विद्वान् ब्राह्मणको बुलवाकर सप्ताह आरम्भ करवा दिया। ईश्वर-कृपासे सब काम श्रीमानोंके समान सम्पन्न हुए, और गाँवभरको भोजन दिया गया।

इन सब कामोंके लिये बलदेवदास भगवान्‌को प्रत्यक्ष मानते थे और जिस भाँति भोले बालक अपनी अभीष्ट-सिद्धिमें तात, मात, भ्रातादिको मुख्य मानकर हर्षित होते हैं उसी भाँति बलदेवदास भी 'हमारे ठाकुरजीने यह किया-वह किया' आदि करते रहते थे। अस्तु। इस प्रकार भगवान्‌में अमिट श्रद्धा रखनेवाले बलदेवदास जन्मभर सच्चे ब्रह्मचारी और भगवद्भक्त रहकर संवत् १९६८ में परलोक पधार गये। और अपने परिवारादिके बदलेमें भगवान्‌की मूर्ति और धन, यश आदिके बदलेमें उपर्युक्त पंक्तियाँ छोड़ गये।

(कल्याण वर्ष ९/११/१३८२, श्रीहनुमानजी शर्मा)

******

बलदेव पखावजी

श्रीबलदेव पखावजीका जन्म बरेलीके मोहल्ला ब्राह्मणपुरीमें हुआ था। इनका पखावज बजानेमें बड़ा नाम था। यह हर साल रजवाड़ोंसे दो तीन हजार रुपये अपने कला-चातुर्यसे ले आते थे और उसीसे जीवन निर्वाह होता था।

इनका अधिक समय भगवान्‌के भजन-पूजनमें ही व्यतीत होता था। रुपया जमा करना यह पाप समझते थे। दान, पुण्य, तीर्थ, व्रत और साधसेवामें वह अपनी सब आय खर्च कर देते थे। सूरदासके पद गाते समय तो यह प्रेमकी मूर्ति बन जाते थे। दर्शक भी उनके स्नेहसने गीतको सुनकर बेसुध हो जाते थे।

बिना कृष्णके इन्हें एक पग चलना भी कठिन था। इनके छातेमें आँखोंके सामने कृष्णभगवान्‌की तसवीर लगी हुई थी—यह उसी तसवीरमें अपने प्रभुकी छबि निहारते चलते थे। श्रीबलदेवजी बड़े सरल, सीधे, प्रेमी और उदार भक्त थे। पर इनमें एक दोष था, वह था अपने गुणपर अभिमान। यह समझते थे कि उनके जोड़का पखावजी और गायनशास्त्रका जाननेवाला संसारमें कोई नहीं है। बात ऐसी ही थी! यह जहाँ भी गये इन्हें अपने टक्करका पखावजी कोई न मिला। इनके बजानेमें जादू था, चमत्कार था। पशु-पक्षी भी इनके वाद्यसे मोहित हो जाते थे, फिर मनुष्योंका तो कहना ही क्या? यह बड़े हँसमुख थे। बात-बातमें हास्यधाराएँ उनके प्रसन्न वदनसे स्रावित होने लगती थीं।

भगवान् अपने भक्तका अभिमान नहीं रखते। श्रीबलदेवजी खुदागंज गये हुए थे। गायकोंका जमघट था। दर्शक एकके ऊपर एक गिर रहे थे। बहुत-से गायनाचार्योंको बलदेवजीने बात-की-बातमें तालसे अलग कर दिया। जब गायक तालसे अलग हो जाते थे यह हुँकारकर उनको गानेसे रोक देते थे। विजयगर्वसे बलदेवजीका मुख खिला हुआ था।

अब खिलाड़ीबाबाने (एक बड़े महात्मा तथा योगी थे) गाना प्रारम्भ किया। बलदेवजीने बहुत चालें चलीं, पर बाबा टस-से-मस न हुए। दो एक चीजें गानेके बाद बाबाने ऐसा गीत प्रारम्भ किया कि बलदेवजी बजाना भूल गये। इनका मुँह फक् पड़ गया। यह

इनकी हारका पहला अवसर था। बलदेवजीको तब तो और भी लज्जा मालूम हुई जब एक साधारण-से व्यक्तिने उसी गीतपर ठीक-ठीक पखावज बजायी। बाबाने कहा-बलदेव! अभिमान अच्छा नहीं होता। बलदेवजी बाबाके चरणोंपर गिर पड़े। तबसे बलदेवजीका अभिमान जाता रहा।

(२)

उन दिनों न अधिक गरमी थी, न सरदी। बलदेवजीने स्त्रीसे कहा, 'कैसी यात्रा?'

पखावजी-'उस लोककी।'

स्त्री-'ऐसी हँसी मुझे अच्छी नहीं लगती।'

पखावजी-'हँसी नहीं, सच्ची बात है।'

बलदेवजी मसखरे प्रसिद्ध थे। इनकी स्त्रीने कुछ ध्यान न दिया। बलदेवजीने घर-घर जाकर मुहल्लेमें अपनी महायात्राका सन्देश सुनाया, पर किसीने विश्वास न किया। दोपहरका समय था, बलदेवजीने अपनी स्त्रीसे घर लीपनेको कहा।

स्त्रीने पूछा-'क्यों'

बलदेवजी-'अब समय निकट आ गया है।' तबतक मुहल्लेके कई व्यक्ति इनके घर इनके मरनेका स्वाँग देखनेको एकत्रित हो गये थे। स्त्रीने जब न लीपा तब बलदेवजीने स्वयं स्थानको गोबरसे लीपा-उसपर कुशासन बिछाया। तुलसी और गङ्गाजल अपने मुखमें डाला और उस स्थानपर दक्षिणको पैर करके लेट गये। उनकी स्त्री उनके इस कृत्यपर बहुत झुँझलायी, पर इन्होंने कुछ ध्यान न दिया। मुहल्लेके आदमी खड़े हँस रहे थे। तत्पश्चात् इन्होंने भगवान्‌की मूर्ति अपने वक्ष:स्थलपर रक्खी और एक रेशमी चद्दर ओढ़कर लेट गये। कुछ देर तो सब लोग इनको देखकर हँसते रहे, फिर इन्हें आवाज दी। पर बलदेवजीने कोई उत्तर न दिया। एकने इनका मुख उघाड़कर देखा तो उस समय बलदेवजी भगवान्‌के निकट पहुँच चुके थे। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। भक्तोंके कार्य बड़े आश्चर्यजनक होते हैं। उस समय बलदेवजीकी आयु लगभग ५०-५५ वर्षकी थी। इनको शरीरत्याग किये हुए ३० सालके लगभग हो गये।

(कल्याण वर्ष ९/१२/१४६९, श्रीगोपीवल्लभजी कटिहा)

******

अंगरेज-महिलाकी शिवभक्ति

मालवा-प्रान्तमें आगरा नामक शहरसे डेढ़ मीलकी दूरीपर बैजनाथ नामक शिवजीका एक स्थान है। उसके चारों ओर पहाड़ी प्रदेश है। पास ही छोटीसी बाणगंगा नदी सर्वदा बहती है।

प्राकृतिक सौन्दर्यसे घिरे हुए इस मनोहर स्थानमें, शिवजीका मन्दिर बहुत ही अच्छी हालतमें है। मन्दिरके शिरोभागपर सुवर्णके दो कलश चमकते हैं।

ईस्वी सन् १८८० में अंगरेज अफसर कर्नल मार्टिनकी धर्मपत्नीको श्रीबैजनाथजीके कृपा-प्रसादका अनुभव हुआ था। अतः उसीने भक्तिके साथ इस मन्दिरका जीर्णोद्धार कराया था। यह कथा बड़ी ही प्रभावोत्पादक है।

ईस्वी सन् १८८० के अफगान-युद्धमें कन्धार और झेलमके बीचके प्रदेशमें अयूबखाँकी फौजके साथ अंगरेज-सेनाका भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें अंगरेजोंको हारकर पीछे हटना पड़ा। इस पराजयसे चिढ़े हुए अंगरेज सेनापतियोंने फिरसे अच्छी तैयारी करके कन्धारपर चढ़ायी की। उस समय आगरकी अंगरेजी पलटनके अफसर कर्नल मार्टिन थे। उन्हें कन्धार जानेकी आज्ञा हुई, आज्ञानुसार सेनाको साथ लेकर वे कन्धार चले गये। परन्तु पत्नीको वहीं छोड़ना पड़ा।

कर्नल मार्टिनको रणभूमिमें गये बहुत दिन बीत गये; उनका पत्र या कुशल-समाचार न मिलनेके कारण श्रीमती मार्टिनको बड़ी चिन्ता हुई। उसके मनमें अनेक प्रकारकी कुशंकाएँ उत्पन्न होने लगीं। 'कहीं अफगानियोंके समान कठोर जातिके साथ लड़नेमें ब्रिटिश सेनाकी हार तो नहीं हो गयी? कर्नल मार्टिनको कहीं गहरी चोट तो नहीं लग गयी? वे कहीं शत्रुके हाथोंमें तो नहीं पड़ गये?' इस प्रकारकी अनेक शंकाओंके साथ ही 'युद्धमें कहीं मारे तो नहीं गये?' इस अति अमंगलमय कल्पनाने स्नेहमय पतिकी याद दिलाकर उसके हृदयको कँपा दिया। वह दिनभर व्याकुल रही। अन्तमें मनको दूसरी तरफ लगानेकी इच्छासे घोड़ेपर सवार होकर वह घूमनेको निकल पड़ी।

सौभाग्यवश वह आगर-शहरकी उत्तर-पूर्व दिशामें बाणगंगाके

किनारे जा पहुँची। उस नीरव-शान्त प्रदेशमें उसने मनुष्यकी आवाज सुनी; वह देखने लगी। वहाँ शिवजीके एक छोटे मन्दिरमें कुछ ब्राह्मण बैठे हुए अपना पूजा-पाठ कर रहे थे। यूरोपियन स्त्रीको मन्दिरके समीप देखकर उन लोगोंको भी आश्चर्य हुआ।

ब्राह्मणोंके साथ बातचीत करनेसे युवतीको मालूम हुआ कि 'जो इस शिवजीका भक्तिपूर्वक हृदयसे पूजन करता है उसकी सारी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं।' श्रीमती मार्टिन पतिके वियोगसे व्याकुल हो रही थी। पूजनविधि पूछकर उसने ब्राह्मणोंद्वारा नित्यप्रति रुद्राभिषेक आरम्भ करवाया। ब्राह्मणोंको दक्षिणा भी दी। इस दिनसे ठीक ग्यारहवें दिन कर्नल मार्टिनका पत्र उनकी पत्नीको मिला। लिखा था कि 'मैं सकुशल हूँ, मुझे बारम्बार यह आभास होता है कि कोई अदृश्य-शक्ति मेरी रक्षा कर रही है।'

पत्र पढ़कर श्रीमती मार्टिनको बड़ा आनन्द हुआ। अन्तिम वाक्यपर वह विशेष विचार करने लगी। उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि मेरे पतिकी रक्षा करनेवाली यह शिवजीकी ही अदृश्य शक्ति है। शिवजीके प्रति उसकी भक्ति बढ़ती ही गयी।

कर्नल मार्टिनके युद्धभूमिसे लौटनेपर उनकी पत्नीने उनसे बैजनाथ महादेवकी मूर्तिके प्रतापका वर्णन किया और उसी स्थानपर एक विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें बैजनाथजीकी मूर्ति स्थापन करवा दी। आज इसी मन्दिरपर चमकते हुए ये सुवर्णकलश श्रीमती मार्टिनकी भक्तिकी साक्षी देते हैं।

मन्दिरके द्वारके सामने बाईं तरफ एक स्तम्भपर कर्नल मार्टिनने यह लेख खुदवाया है—'कर्नल मार्टिन साहब बहादुरके हुक्मसे—नाम दफेदार प्यारेलाल, मिस्तरी भागाजी, संवत् १९३९ माह अगस्त सन् १८८२'।

इस वर्णनको पढ़नेसे यह आश्चर्यप्रद बात ध्यानमें आ जायेगी कि भगवान् शिवजी परधर्मी भक्तोंपर भी प्रसन्न होते हैं। उनके भक्तोंमें कर्नल मार्टन तथा श्रीमती मार्टिन जैसे भक्तोंका भी प्रवेश है।

(कल्याण वर्ष ६/३/६७७, श्रीगोपाल ब्रह्मचारी)

******

भक्त अम्बालाल

भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(४। ८)

अर्थात् 'मैं साधुओंकी रक्षा करनेके लिये, दुष्टोंके नाश करनेके लिये तथा धर्मकी स्थापना करनेके लिये युग-युगमें अवतार लेता हूँ।' भगवान्ने अपने इस कथनमें अवतारके तीन कारणोंको बतलाया है—साधु-हित, दुष्ट-विनाश तथा धर्म-स्थापन। इनमें 'साधुहित' के दोनों अभिप्राय हो सकते हैं। एक तो जब संसारमें कंस और रावण जैसे अत्याचारी पुरुष उत्पन्न हो साधु-सन्तोंको कष्ट देने लगते हैं तब भगवान् उनके कष्टोंको दूर करनेके लिये तथा उन अत्याचारी पुरुषोंका नाश करनेके लिये अवतार लेते हैं। दूसरे जब साधुपुरुष भगवान्की प्राप्तिके लिये विरह-व्याकुल हो दारुण तप करने लगते हैं तब भी वह दयामय प्रभु अपने भक्तोंके इच्छानुसार रूप धारण कर उन्हें दर्शन देते हैं। अपने इसी जीवनमें इन्हीं चर्म-चक्षुओंसे अपनी चाहनाके अनुरूप भगवान्का दर्शन करनेवाले धन्य-पुरुष इस जगत्में अनेकों हो गये हैं; और प्रभु-कृपासे आज भी ऐसे धन्य पुरुषोंसे यह जगती खाली नहीं है। भक्त अम्बालाल भी सम्भवतः ऐसे ही पुण्यकर्मा पुरुषोंमें एक थे। आज 'कल्याण' के पाठकोंके लाभार्थ उनके विषयमें कुछ लिखा जाता है।

भक्त अम्बालाल पटेलका जन्म गुजरातमें मेहसाना स्टेशनके समीप किसी गाँवमें हुआ था। उनका बचपन कैसे बीता था इस विषयमें मुझे कुछ विशेष जानकारी नहीं है। हाँ, यह तो निश्चित बात है कि सन् १९०३ ई० के लगभग वह अपनी सौतेली माताके व्यवहारसे असन्तुष्ट होकर घरसे निकल पड़े थे और मेहसाना स्टेशनपर जा पहुँचे थे। वहाँ उस समय मि० बेकर स्टेशनमास्टर थे। अम्बालालने उनसे अपनी जीविकाके लिये सहायताकी प्रार्थना की। स्टेशनमास्टरको अपने आफिसमें एक पत्रव्यवहार करनेके लिये किरानी (Correspondence Clerk) की आवश्यकता थी और अम्बालाल इन्ट्रेंस पास थे, इसलिये स्टेशनमास्टरने उन्हें १५) मासिकपर उस पदपर

अपने आफिसमें रख लिया और उसकी स्वीकृति डी०टी०एस० मि० रौबिन्सनसे ले ली।

अम्बालालजी कुछ दिनोंतक उसी कामपर लगे रहे और धीरे-धीरे उन्होंने वहाँ तारका काम भी सीख लिया। जब तारके काम करनेकी योग्यताका उन्हें पूरा अनुभव हो गया तब उन्होंने एक दिन स्टेशनमास्टरसे तारके कामकी परीक्षा दिलानेके लिये सिफारिश करनेकी प्रार्थना की। आफिसमें अम्बालालका काम बहुत ठीक होता था और स्टेशनमास्टर उनसे सदा सन्तुष्ट रहते थे, इसलिये उन्होंने डी०टी०एस० से सिफारिश करके उन्हें अजमेरमें तारकी परीक्षा देनेके लिये भेज दिया। अम्बालाल उसमें पास हो गये और मेहसानासे ही उन्हें २०) मासिकपर तारबाबूका काम मिल गया।

अबतक तो अम्बालालका भजन-पूजन कुछ वैसा नियमित न था, परन्तु तारबाबूका काम मिल जानेपर उनका भजनमें अधिक समय लगने लगा। अम्बालालका जीवन खूब ही सादगीसे बीतता था। वे जो २०) मासिक पाते थे उनमेंसे प्राविडेण्ट फण्ड काटकर उन्हें केवल अठारह रुपये कुछ आने ही मिलते थे। जिसमें दो रुपये कुछ आनेमें ही वह अपना महीनेभर निर्वाह कर लेते थे, शेष साधु-महात्माओंकी सेवामें खर्च कर दिया करते थे। भोजनमें वह बिना नमक-मसाले अथवा घीके केवल जौके आटेकी रोटी और चनेकी दाल खाया करते; उनके क्वार्टरमें एक चटाई, एक टीन, एक कम्बल, एक लोटा और एक बालटी, तथा पहननेके वस्त्रोंमें एक धोती, एक कमीज, दो कौपीन तथा रेलवेसे मिले एक कोट और टोपी, बस यही थे।

तारबाबूकी ड्यूटी सप्ताहमें ही बदला करती है। परन्तु अम्बालालने अपनी दिनचर्या ऐसी बना रक्खी थी कि आठ घण्टे रेलवेकी ड्यूटी, तथा अन्य नित्य कर्मोंके सिवा आठ घण्टे भजनके लिये उन्हें प्रतिदिन निर्विघ्न मिल जाया करते थे। ड्यूटीके बदलनेके साथ ही उनके भजनका समय भी बदल जाता परन्तु भजनके आठ घण्टोंमें कमी न आती थी। वह अपने भजनके घण्टे क्वार्टरमें नहीं; बल्कि समीपके साबरमती-नदीके बीच एक छोटा-सा दियरा पड़ गया था वहीं उन्होंने अपना साधन-स्थान बना रक्खा था। वहाँ

नित्यप्रति एक आसनपर बैठकर मुरलीमनोहरका ध्यान करना उनका प्रतिदिनका अनिवार्य कार्य था।

इस प्रकार उनके जीवनके कुछ ही महीने बीते थे। एक दिन रातको वह अपने नित्यनियमके अनुसार उसी साबरमतीके किनारेमें ध्यान जमाये बैठे थे। चाँदनी छिटक रही थी। अचानक उनकी आँखें खुलीं और देखते क्या हैं कि एक बूढ़ा आदमी नदीके किनारे हाथ-मुँह धो रहा है। परन्तु अम्बालालको इससे क्या, उन्होंने फिर आँखें बन्द कर लीं, इतनेमें वह बूढ़ा आदमी नजदीक आया और अम्बालालसे बोला-'बेटा! तुम किसके लड़के हो? यहाँ कबसे और क्यों बैठे हो? तुम्हें नदीके भयानक जानवरोंका डर नहीं? देखो, तुम तो आँखें मूँदे बैठे थे और उधर एक भयानक मगर मुँह बाये तुम्हारी ओर आ रहा था; वह तो मेरे डरानेसे नदीमें कूद गया है। यदि मैं न आया होता, तो तुम्हारी जान आज गयी ही थी!'

अम्बालाल बूढ़ेकी इन बातोंसे भयभीत नहीं हुए; उन्होंने उत्तर दिया-'महाराज! मैं एक पटेलका लड़का हूँ; यहीं स्टेशनपर तारबाबूका काम करता हूँ। यहाँकी ठण्डी हवा बहुत अच्छी लगती है, इसीलिये आकर बैठ जाया करता हूँ। आपने व्यर्थ ही उस भूखे मगरको लौटा दिया!'

वह बूढ़ा ब्राह्मण अम्बालालके इस उत्तरसे कुछ अप्रसन्न-सा हो उसे डाँटते हुए बोला-'जान पड़ता है तू इस बहुमूल्य शरीरको तुच्छ समझ प्राण देनेपर उतारू हुआ है। देख, यह शरीर बार-बार नहीं मिलता। इसकी रक्षाकर मनुष्यको परमार्थमें लगना चाहिये।' बूढ़ेके इन मार्मिक वचनोंको सुन अम्बालालका हृदय हिल गया और वह रुँधे स्वरसे हाथ जोड़कर बोले-'महाराज, मैंने अपनी तुच्छ बुद्धिसे समझा था कि यह शरीर मगरके काम भी आ जायगा तो इसका सदुपयोग ही होगा। यदि मेरा यह निश्चय धर्मविरुद्ध है तो कृपया मुझे क्षमा कीजिये।' अम्बालालके इस उत्तरसे बूढ़ा बहुत प्रसन्न हुआ।

अम्बालालको बूढ़ेके प्रभावशाली वचनोंको सुनते ही यह विश्वास हो गया कि निस्संदेह मुझे आज अपने भाग्य-भास्कर प्राप्त

हो गये हैं। इसलिये उसने हाथ जोड़कर निःसंकोचभावसे उनसे साक्षात् भगवान्‌का दर्शन करानेकी इच्छा प्रकट की। वह बूढ़ा ब्राह्मण पहले तो मुस्कराया, फिर अम्बालालको समझाने लगा—'बेटा, तुम्हें किसीने भ्रममें डाल दिया है। ईश्वर एक देशी नहीं है, वह तो सर्वव्यापक हैं। यह दृश्य-अदृश्य सब कुछ तो वही हैं। फिर उन सर्वव्यापकको तू इन चर्मचक्षुओंसे कैसे देख सकता है? यदि तू अपने आत्माका दर्शन कर लेगा तो अवश्य ही उन व्यापक परमात्माको भी देख लेगा। इस हठको छोड़ और सावधानीसे अपना धर्म पालन कर।' अम्बालालने अपनेको इस ज्ञानोपदेशका अधिकारी न पाया। उसे तो एक ही धुन लगी हुई थी। वह मुरलीमनोहरके दर्शन चाहता था। इसलिये वह बूढ़े महाराजके ज्ञानोपदेशकी अवहेलनास्वरूप चुप हो रहा। विवश होकर महाराजको पूछना पड़ा कि 'वह किस रूपका दर्शन करना चाहता है?' अम्बालालके तो रोम-रोममें मुरलीमनोहरकी छवि समायी हुई थी, वह अत्यन्त आनन्दित हो बोल उठा—'मोर-मुकुट पीताम्बरधारी मुरलीमनोहर शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज रूपका।' महाराजने पूछा—'क्या यही उनका एकमात्र रूप है?' अम्बालालने उत्तर दिया—'महाराज, यद्यपि शास्त्रोंमें ईश्वरके अनेकानेक रूपोंका वर्णन है, तथापि मेरी तृप्ति तो केवल इसी रूपमें है। यदि उनके अन्य रूप मुझे देखनेको मिलें तो उनसे मेरी तृप्ति नहीं होगी। और न मुझे यह भान ही होगा कि वह भगवान् हैं। यह है अनन्य भावना! सच है—

'जाको मन रम जाहि सन ताहि ताहि सन काम।'

अस्तु, अम्बालालने आश्चर्यचकित हो देखा कि वह वृद्ध ब्राह्मण तत्काल उसीके मनचाहे चतुर्भुजी रूपमें बदलकर अम्बालालके सामने खड़े हैं! जिसप्रकार बहुत दिनका बिछड़ा हुआ बछड़ा गायकी ओर दौड़ता है उसी प्रकार अम्बालाल प्रेममें उन्मत्त हो झटककर अपने उपास्यदेवके चरणोंमें गिर पड़ा और लगा अपने अश्रुजलके पाद्यसे भगवान्‌के चरणकमलोंको धोने। करुणामयने अम्बालालको उठा उसका आँसू पोंछते हुए हृदयसे लगा लिया और ढाँढ़स देते हुए उस धैर्यपूर्वक सांसारिक कृत्योंके करते रहनेकी आज्ञा देकर अन्तर्धान हो गये। अम्बालाल कृतार्थ हो गये। आज उनका जन्म सफल हो

गया। अब उन्हें क्या चिन्ता थी? वह भगवान‍्के उस मनोहर रूपका स्मरण करते हुए बारम्बार पुलकित होने लगे। कुछ ही देरके बाद उनका ध्यान भगवान‍्की आज्ञा-पालनकी ओर गया और वह प्रसन्न-मुख वस्त्र धारणकर स्टेशनकी ओर चल पड़े। आज उनकी कुछ निराली ही चाल है। कभी तो जल्दी-जल्दी चलते हैं और कभी रुक जाते हैं। कभी मुस्कराते हैं, तो कभी उनकी आँखोंसे अश्रुप्रवाह होने लगता है। भक्तकी इस अद्भुत अवस्थाके आनन्दका अनुभव केवल उन्हीं पुरुषोंको हो सकता है जो उस दयामय प्रभुकी असीम कृपाको प्राप्त करनेके अधिकारी हुए हैं।

अम्बालाल आनन्दमें भरे हुए निःशंकभावसे तारघरमें पहुँचे। परन्तु उनकी चाल आज अद्भुत ही थी इसलिये वह नियत समयसे तीस मिनट देरसे पहुँचे। वहाँ पहुँचनेपर (बाबू द्वारकादास जो आजकल पिलौंदा स्टेशनपर स्टेशनमास्टर हैं, उनके सहकारी थे तथा मि० प्राणशंकर सिंगनेलर इंचार्ज थे) इंचार्ज साहब उनपर बिगड़े और उनके देर करके आनेपर उन्होंने उनको बहुत डाँटा। परन्तु उनको क्या मालूम था कि अम्बालाल आज साधारण मनुष्य नहीं हैं, उन्हें सांसारिक वैभवोंसे परेकी वस्तु मिल गयी है। अम्बालालने मुस्कराते हुए उनकी फटकार सुन ली और अन्तमें अपनी टोपी तथा पेंसिलको, जो रेलवेसे मिली रहती है, इंचार्ज साहबकी टेबलपर रखकर और यह कहते हुए कि-'यह अपनी सम्पदा सँभालिये,' वह आफिससे चल दिये। बाबू द्वारकादास तथा प्राणशंकरजीने उनको बहुतेरा पुकारा परन्तु उन्होंने एक न सुनी और देखते-ही-देखते आँखोंसे ओझल हो गये।

उस दिन रातको अम्बालाल रेलवे स्टेशनसे चल देनेके बाद फिर अपने क्वार्टरमें नहीं गये और न उन्होंने स्टेशनमास्टर या और किसीसे भेंट की। वह सीधे आबू पहाड़पर चढ़ गये और फिर पाँच मीलकी तिरछी गहराईमें नीचे उतरकर एक पहाड़ी वृक्षपर अपना कोट, कमीज तथा धोती लटकाकर एक चौरस चट्टानपर दृढ़ आसन लगाकर बैठ गये।

इसप्रकार एक ही आसनपर बैठे हुए अम्बालालका सात दिन सात रात बीत गये। इस घोर तपसे भगवान‍्का आसन हिला

और वह फिर अपने भक्तके पास पहुँचे। परन्तु इस बार वह वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें न आकर एक लकड़िहारेके रूपमें दिखलायी दिये और उन्होंने प्यासे होनेका कारण पानी पीनेकी आतुरता प्रकट की। अम्बालाल उदारचेता तो थे ही, लकड़हारेकी व्याकुलता देख वह बड़े ही असमंजसमें पड़े। यद्यपि सात दिनसे निराहार बैठे रहनेके कारण उनके शरीरमें चलनेकी शक्ति न थी तथापि आतुरको सहायता करना भगवान्‌की परम सेवा समझकर भगवान्‌पर विश्वासकर वह उठ चले; परन्तु उन्हें जलाशयका पता तो मालूम नहीं था इसलिये उठकर जिस किसी ओर जलकी तलाशमें निकल पड़े। थोड़ी ही दूर जानेपर उन्हें झरना बहता हुआ दीख पड़ा। जल लेनेके लिये पात्र तो पास था नहीं अब वह पानी कैसे ले जाते? विवश हो उन्होंने एक युक्ति निकाली, धोतीका एक सिरा पकड़कर उसकी चार तह बनायी और उसे दोनों हथेलियोंमें मिट्टी रख ऊपरसे डाल लिया। इसप्रकार मिट्टीके ऊपर वस्त्रकी अञ्जलिमें वह कुछ पानी ले सके और उसे लाकर उन्होंने लकड़हारेको पिलाया। लकड़हारा उनकी श्रद्धाभक्ति देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और साबरमती नदीके किनारेपर कहे हुए वचनोंके न पालन करनेपर उन्हें डाँटा। अम्बालालने अब समझ लिया कि भगवान् ही लकड़हाराके रूपमें सामने आये हैं। बस, उसने फिर उसी रूपमें उनसे दर्शन देनेकी प्रार्थना की। भगवान् उनकी भक्ति-निष्ठापर सन्तुष्ट तो थे ही, किरीट मुकुट धारण किये चतुर्भुज रूपसे विराजमान हो गये। अम्बालाल पुनः अपने इष्टदेवका दर्शनकर आनन्दसिन्धुमें हिलोरें लेने लगे। भगवान् उन्हें एक बार पुनः अपनी नौकरीपर जाने और भजन तथा साधुसेवामें कुछ दिन बितानेकी आज्ञा देकर अन्तर्धान हो गये।

अम्बालालको यद्यपि बन्धन प्रिय न था, और वह यह भी जानते थे कि रेलवे नियमके अनुसार अब उनकी नौकरी छूट गयी है तथापि भगवान्‌की आज्ञा शिरोधार्य थी इसलिये वह वहाँसे उठ सीधे स्टेशनकी ओर चल दिये।

इधर सबेरे बाबू प्राणशंकरने अम्बालालके भाग जानेकी सूचना स्टेशनमास्टरको दी। स्टेशनमास्टरने पहले तो अम्बालालको बहुत ढुँढ़वाया परन्तु पीछे पता न लगनेपर उनके भाग जानेकी सूचना डी०टी०एस०

को कर दी, नियमानुसार उनका नाम नौकरीसे काट दिया गया। परन्तु अभी उस जगहपर कोई आदमी बहाल नहीं हुआ था। इतनेमें अम्बालाल स्टेशनमास्टरके पास आ पहुँचे। स्टेशनमास्टरने उनसे सिर्फ इतना ही कहा कि—'अरे भगतजी तुम कहाँ चले गये थे?' और उनके पुनः लौट आनेपर प्रसन्नता प्रकट करते हुए उनसे दरख्वास्त ले उसपर 'क्या मैं इन्हें नौकरीपर रहने दूँ?'—सिर्फ इतना लिखकर डी०टी०एस० के यहाँ भेज दी।

रेलवेके नियमानुसार कोई भी मनुष्य जो नौकरी छोड़कर चला जाता है, तीन महीनेके पहले उसे फिर काम नहीं मिलता और न उसकी नौकरी कायम मानी जाती है। डी०टी०एस० आफिसके चीफ क्लर्कने उसे डी०टी०एस० के सामने उपस्थित करना आवश्यक न समझकर भी न जाने क्यों उनके मेजपर दूसरे पत्रोंके साथ रख दी। तथा डी०टी०एस० साहब जो कानूनके बड़े पाबन्द थे उस पत्रको पढ़ लेनेके बाद कुछ देरतक सन्न रह गये और फिर उसपर 'हाँ' इतना लिखकर स्टेशनमास्टरके पास भेज दिया। डी०टी०एस० साहबकी इस असाधारण क्रियापर प्रायः सबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। सच कहा है—

जापै कृपा रामकी होई। तापै कृपा करै सब कोई॥

इस रहस्यपर जो लोग श्रद्धा रखते हैं उन्हें कुछ आश्चर्य नहीं होता। भगवद्भजन करनेवाले पुरुषोंके लिये रेलवेहीके क्यों, संसारके कोई भी नियम बाधक नहीं हो सकते, क्योंकि जब उसने सारे संसारके सम्राटको अपना स्वामी जान लिया और उसकी आज्ञाके पीछे अपने जीवनको अर्पण कर दिया तब उसके लिये कोई भी सांसारिक कामना अप्राप्य कैसे रह सकती है? परन्तु सच्चे भक्त अपनी भक्तिके बदले तुच्छ सांसारिक विभवोंकी कभी इच्छा ही नहीं करते।

अम्बालाल कुछ दिनोंतक निर्भीकतापूर्वक रेलवेकी नौकरीमें लगे रहे, अन्तमें हरद्वार-कुम्भके मेलेके अवसरपर गये और तबसे फिर न लौटे। भला, जिनपर भक्तिका गाढ़ा रङ्ग चढ़ जाता है वह मायाके फेरेमें कब पड़ सकते हैं? धन्य हैं वे माता-पिता जिनकी सन्तान इसप्रकार भगवद्भक्तिके द्वारा अपना जीवन सफल कर दूसरोंके

लिये उसको उदाहरणरूपमें छोड़ जाती है। तथा धन्य हैं वे पुरुष जिनकी रसना सदा साधुचरितकी चर्चामें लगकर भगवदाराधनका प्रसार करती है।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय।

(कल्याण वर्ष ६/६/९०९, श्रीमिश्रीलालजी गुप्त)

******

भक्त अनन्तदासजी

रीवाँ राज्यमें बरदाडीह नामक एक छोटा-सा गाँव है। भक्त अनन्तदासजीका जन्म इसी ग्राममें हुआ था, इनका घर बहुत ही गरीब था, बड़ी मुश्किलसे गृहस्थीका निर्वाह होता था। घरमें कठिनाई देखकर अनन्तदासजी नौकरीकी खोजमें बाहर निकले और नीमचमें जाकर उन्होंने एक अंगरेज अफसरके यहाँ नौकरी कर ली। नौकरीसे जो कुछ मिलता उससे अपना भरण-पोषण करते, घरको भेजते और कुछ बचाकर श्रद्धापूर्वक सन्तोंकी सेवा करते। इन्हें सन्तरीका काम करना पड़ता था। मालिकका काम करनेके बाद जो कुछ समय बचता, उसे ये भगवद्भजनमें लगाते। पहरा देते समय भी भरसक निरन्तर भगवान्‌का चिन्तन किया करते।

इसप्रकार कुछ समय बीत गया। भजन और साधु-सेवामें इनकी प्रीति अब बहुत बढ़ गयी। एक दिन सन्ध्याके समय इनके डेरेपर एक सन्त अतिथि आ गये। उधर उसी समय इनकी पहरेकी बारी थी। अनन्तदासजी बहुत असमञ्जसमें पड़े। घरमें और तो कोई था ही नहीं जो अतिथि सन्तको रोटी बनाकर खिला देता और ये पहरेपर जाते। अब साधु-सेवामें रहते हैं तो मालिकके कामसे चूकते हैं और यदि पहरेपर जाते हैं तो जीवनके व्रत साधु-सेवासे वञ्चित रहते हैं। मनमें बड़ी उथल-पुथल मची, परन्तु भक्तके हृदयने आखिर साधु-सेवाका ही निर्णय किया। अनन्तदासजीने रसोई बनायी। साधु महाराजको खिला-पिलाकर उनकी सेवा की और तदनन्तर सत्सङ्गमें लग गये। भगवच्चर्चामें बड़ा ही प्रेम उपजा और वह उसीमें तल्लीन हो गये।

दीनवत्सल भगवान् भक्तके भावी सङ्कटका ख्यालकर स्थिर न रह सके। रीवाँ-नरेश श्रीरघुराजसिंहजी लिखते हैं—

टोपी कुरती पहनके हाथ धरे संगीन।
दीनदयालु गोविन्द प्रभु पहरा दियो नवीन॥

भक्त अनन्तदासजीके बदले अनन्त जगदीश्वर हाथमें सङ्गीन लेकर सामान्य सन्तरीकी भाँति पहरा देने लगे। पहरा देते हुए प्रभु श्रवण-मधुर सोरठ-रागमें सूरदासजीका यह पद गाने लगे।

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो।
समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो।
इक नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भरो।
जब मिलिकै दोउ एक बरन भये, सुरसरि नाम परो॥
एक लोहा पूजामें राख्यो इक घर बधिक परो।
पारस गुन अवगुन नहिं चितवत, कंचन करत खरो॥
यह माया भ्रम-जाल कहावे, सूरदास सगरो।
अबकि बेर मोहिं पार उतारो, नहिं प्रन जात टरो॥

पहरेकी बदलीका समय आया, दूसरा सन्तरी आते ही भगवान् अन्तर्धान हो गये। भगवान्‌की इस लीलाको किसीने नहीं जाना।

इधर रातभर दोनों सन्त श्रीहरि-प्रेमके आनन्दोल्लासमें निमग्न रहे। प्रातःकाल सन्तके विदा होनेपर अनन्तदासजीको अपने पहरेका ख्याल आया। ये सोचने लगे आज नौकरीसे जरूर जवाब मिल जायेगा। डरते-डरते अनन्तदासजी जमादार साहेबके पास गये और कुछ दूरीपर चुपकेसे जाकर बैठ गये। जमादारने इन्हें उदास देखकर कहा—

'भाई अनन्तदास, उदास कैसे बैठे हो? यहाँ तो आओ।' अनन्तदासजी समीप आ गये, जमादार साहेबने बड़े प्रेमसे हँसते हुए कहा, 'भाई! रात तो तुम्हारे गानको सुनकर मैं मुग्ध हो गया। ऐसी सुरीली आवाज मैंने कभी नहीं सुनी थी। तभीसे मैं उसे फिर सुननेके लिये लालायित हो रहा हूँ। भैया! एक बार फिर गाओ तो।'

अनन्तदासने सोचा जमादार साहेब मुझसे व्यंग कर रहे हैं। उन्होंने डरते हुए कहा—'मुझसे बड़ा कुसूर हो गया, मैं रातको पहरेपर न आ सका। अब आप जैसा उचित समझें करें।'

जमादारने हँसकर कहा—'भैया! गाना चाहे न सुनाओ, पर झूठ क्यों बोलते हो? तुमने छः घण्टे लगातार पहरा दिया और तुम टहलते हुए बड़े सुरीले स्वरोंमें सूरदासजीका पद गा रहे थे, भला, आँखों-देखी बात कैसे मिथ्या हो सकती है?'

अनन्तदासजीने मन-ही-मन सोचकर निश्चय किया कि 'जरूर मेरे बदलेमें दीन-बन्धुने पधारकर पहरा दिया है। मैं कैसा नीच हूँ जो मेरे लिये त्रिलोकीनाथको इतना छोटा काम करना पड़ा?' यों विचारकर अनन्तदासजी गद्गद हो गये, उनका शरीर पुलकित हो उठा, नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए वे बोले—'जमादार साहेब, आप धन्य हैं, जो आपने मेरे नाथके दुर्लभ कण्ठ-स्वरको सुना। जिन प्रभुने मेरे लिये इसप्रकारका कार्य करना स्वीकार किया, उनको छोड़कर अब मैं किसी दूसरेकी नौकरी करना नहीं चाहता।' यों कहकर अनन्तदासजी डेरेपर आ गये और जो कुछ पास था सब लुटाकर फकीरी-बाना धारणकर श्रीरामके रंगमें रँगे हुए अकेले ही रामकी खोजमें निकल पड़े। मन-ही-मन यह प्रतिज्ञा कर ली कि जबतक भगवान् श्रीराम जगज्जननी जनकनन्दिनीसहित दर्शन देकर कृतार्थ न करेंगे, तबतक अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा।

सात दिन बीत गये। भक्तके विश्वास, दृढ़ निश्चय और प्राणोत्सर्गकारी उत्कण्ठापर रीझकर सातवें दिन रातको भगवान् श्रीरामने महारानी श्रीसीताजीसहित साक्षात् प्रकट होकर उन्हें दर्शन दिये और घर जानेकी आज्ञा दी। इसप्रकार मानव-जीवनको सार्थक कर भगवान्की आज्ञासे अनन्तदासजी घर लौट आये और भगवान्के प्रेम-रंगमें रँगे अपना शेष जीवन बिताने लगे। रीवाँ-नरेश इनके सम्बन्धमें लिखते हैं—

जब तब आवहिं भवन हमारे। कृपाकरहिं निज दास बिचारे॥
मम शरीरमें भो कछु रोग। सो लखि दीन्हौ मोहि नियोगू॥
कबहुँ न याकी औषध कीजै। याको गुरू मानि निज लीजै॥
यह विरागको बीज उदंडा। पहिहौ नहिं कबहूँ यमदंडा॥

जगते होय विराग अति, उपजे तब विज्ञान।
तब उपजे सिय-पिय-चरण, प्रेम-भक्ति परधान॥
अस निदेश प्रभु मोहिं करि, विचरत हैं सब देश।
रँगे हमेश रमेश-रँग, हरें अशेष कलेश॥

(कल्याण वर्ष ६/१२/१३९९)

******

भक्त जलारामजी

वस्तुतः सत्पुरुष इस कराल कालमें भी प्रायः प्रकट होते रहते हैं। भक्त, महात्मा और ज्ञानीजनोंका उद्गम-स्थान यह आर्यावर्त कभी इनसे सर्वथा खाली नहीं हो सकता। आज हम जिस वीतराग भक्तका चरित्र-चित्रण करने जा रहे हैं, इनका जन्मस्थान सौराष्ट्र-देशके वीरपुर गाँवमें था। इनका जन्म लोहाणा क्षत्रियकुलमें हुआ था। इनके पिताका नाम था प्रधान और माताका राजबाई। उन दम्पतिके बड़े पुत्रका नाम बोधाभाई था। प्रथम पुत्रके जन्मसे पाँच वर्ष पीछे ठाकुरके गृहमें रघुवरदास नामक एक महात्मा अतिथि आये। प्रधान ठाकुरने उन महात्माका खूब आतिथ्य किया। महात्माने प्रसन्न होकर ठाकुरसे वरदान माँगनेको कहा। ठाकुरने अपने वंशमें भी महात्माओंकी सेवा करनेवाला एक पुत्र वरदानमें माँगा। महात्मा प्रसन्नचित्तसे 'तथास्तु' कहकर यात्रार्थ निकल गये।

सत्पुरुषोंके वचन अन्यथा नहीं होते। प्रभुकी अगाध लीला है। संवत् १८५६ के कार्तिक शुक्ल ७, सोमवारको राजबाईके उदरसे एक पुत्रका जन्म हुआ। इनका नाम जलाराम रखा गया। बाल्यकालसे ही जलारामजी तेजस्वी थे। पुत्रके ऊपर माता-पिताका अद्‌भुत प्रेम था। महात्माके आशीर्वादसे उत्पन्न हुए भक्त जलारामजी बचपनसे ही सदाचार-पालन, सत्पुरुषोंकी सेवा, सत्सङ्ग और नामजप करने लगे।

थोड़े ही समय बाद जलारामजीके माता-पिताने परलोकप्रयाण किया। जलारामजीके पोषक-वर्गमें केवल वालाजी नामक एक चचा ही थे। उनके कोई पुत्र न था। इसलिये उन्होंने जलारामजीको अपने साथ रख लिया। जलारामजीको चचाने दूकानका काम सौंप रखा था। अतएव वह भगवच्चिन्तनपरायण होकर दूकानका काम करते हुए ही भगवत्सेवा भी किया करते थे। 'अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्' ही उनके जीवनका आदर्श था। इस कारण बालसूर्यकी किरणकी तरह जलारामजीका सुयश चारों ओर फैलने लगा।

एक दिनकी बात है, प्रातःकालका समय था। ब्राह्मण शिवालयमें वेदमन्त्रोंसे पूजन कर रहे थे, भक्तजन हरिनामका उच्चारण कर रहे थे, काम-धन्धेवाले मनुष्य अपने-अपने कार्यमें मस्त थे और वैश्यवर्ग अपनी-अपनी दूकानोंको झाड़ रहा था। इसी समय

साधुओंकी एक मण्डली गाँवमें आयी। अच्छे-अच्छे व्यापारियोंसे साधुओंने सीधेकी याचना की; परन्तु प्रातःकाल होनेके कारण किसीने उनकी बातपर ध्यान नहीं दिया। बोहनीके वक्त देनेका नाम किसको सुहाता है। साधु लोग अब निराश होकर जाने लगे। तब किसीने उनसे कहा—'महाराज! इस बाजारमें जलारामकी दूकान पूछो। वह भक्तोंकी सेवा किया करता है। यहाँ और कोई नहीं आपकी सुनेगा।'

साधुमण्डली पूछती हुई आखिर वहाँ पहुँची। मण्डलीके मुखियाने पूछा—'जला भगतकी दूकान यही है?'

'आपके दासकी यही दूकान है महाराज। क्या आज्ञा है?' जलारामजीने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

'जलाराम! अगर तेरी इच्छा हो, तो सब सन्तोंके लिये पक्का सीधा दे दो। हमलोग वृन्दावनसे आ रहे हैं और गिरनारकी यात्रा करने जा रहे हैं। यहाँसे भोजन करके चलनेका विचार है' सन्तने कहा।

साधु-महात्माओंको भोजन कराकर स्वयं भोजन करनेका जलारामजीका नित्यका नियम था। इसे देखकर बगलका एक बनिया इनको बड़ी क्रूर दृष्टिसे देखा करता और मन-ही-मन कुढ़कर कहा करता, 'यह जलिया बाला चाचाकी दूकानका सत्यानाश कर डालेगा।' फिर आज तो साधुओंकी इस जमातको देखते ही वह और भी जल-भुन गया। जलारामजीने अपने सहज स्वभावके अनुसार साधुओंके लिये आटा, दाल, चावल आदि सामान तौल दिया। साधुओंके पास घीका कोई पात्र नहीं था, इसलिये जलारामजीने अपने ही लोटेमें पाँच सेर घी भर दिया और वह घी तथा गुड़ स्वयं उठाकर साधुओंके ठहरनेकी जगह पहुँचानेके लिये चल पड़े। बगलका बनिया यह सब देख रहा था। जलारामजीको जाते देख वह तुरन्त बाला चाचाके पास पहुँचा और सारा हाल सुनाकर उसने कहा कि 'चाचाजी, जल्दी चलो और देखो, जलिया सारी दूकान साधुओंको लुटाये देता है।'

बाला चाचा शीघ्र दूकानकी ओर चल पड़े। मार्गमें ही उनकी मुलाकात जलारामजीसे हो गयी। चचाका स्वभाव जलारामजीसे छिपा नहीं था अतएव चचाको देखते ही जलारामजी सूख गये। उन्होंने मनमें सोचा, 'आज चचाजी अवश्य दण्ड देंगे। खैर, जैसी रामकी

इच्छा।' इतनेमें बाला चाचा पासमें पहुँच गये। उनके नेत्रोंसे क्रोधके मारे मानो अङ्गारे झर रहे थे। उन्होंने कड़ककर पूछा—'जलिया, इस धोतीमें क्या जलाया है?' सत्यवादी जलारामजीके मुखसे मानो किसीने जबरन् कहला दिया—

'काठके टुकड़ोंके अतिरिक्त और क्या जलाया जाता है चाचाजी?'

'और इस लोटेमें?'

'इसमें जल है।'

चचाजीने गुड़की गठरी खोलकर देखी तो उसमें सचमुच काठके टुकड़े ही थे और लोटा जलसे भरा था। इस दृश्यको देखकर उस बनिये तथा अन्य उपस्थित व्यक्तियोंको बड़ा विस्मय हुआ। चचाजीका क्रोध एकदम काफूर हो गया। उन्होंने पूछा—'कहाँ जा रहा है?'

'चचाजी! इस गाँवके बाहर एक साधु-मण्डली आयी है। उसके लिये यह सामान पहुँचाने जा रहा हूँ।'

'अच्छा' कहकर चचाजी दूकानपर चले गये और जलारामजी साधुओंके पास पहुँचे। कहना न होगा साधुओंके पास जानेपर घी और गुड़ अपने मूल स्वरूपमें ही बदल गये। भगवान् क्या नहीं कर सकते? जलारामकी वाणी भी झूठी नहीं हुई और चचाका सन्देह भी दूर हो गया।

इस घटनासे भक्तजीके हृदयमें कितना आनन्द हुआ होगा, इसका अनुमान स्वयं पाठक लगा सकते हैं। भक्तवत्सल भगवान्को अपने भक्तके लिये कितनी व्यवस्था करनी पड़ती है। जलारामजी तो और भी उत्साहके साथ साधु-सेवा करने लगे।

(२)

'जलाराम किसका नाम है?' आगन्तुक एक साधुने दूकानदारोंसे प्रश्न किया।

'बगलकी ही दूकान जलारामकी है।' उसी द्वेषी बनियेने उत्तर दिया। साधु जलारामकी दूकान पर आये। भक्तजीने उन्हें देखते ही नम्रतापूर्वक प्रणाम किया और पूछा—'क्या आज्ञा है महाराज?'

'भक्तराज! वस्त्रके बिना दुःख पा रहा हूँ। एक टुकड़ा वस्त्र साफीके लिये दे दे।'

जलारामजीने प्रसन्न होकर खादीके थानमेंसे पाँच हाथका टुकड़ा फाड़कर दे दिया। साधु प्रसन्न होकर बाजारमें 'जलारामकी जय' पुकारते हुए चले गये।

दुर्जन स्वयं दुःख उठाकर भी सत्पुरुषोंको बाधा पहुँचानेमें कोई कोर-कसर नहीं रखते। वे सदा इसी फिराकमें रहते हैं कि कब कोई मौका हाथ लगे और अपना यह दुष्ट काम बनाया जाय। आज उस द्वेषी बनियाको मौका मिला। उसने विचार किया—'अब देखें जलिया कौन-सा उपाय करता है? खादीका थान बीस हाथ था। बाला चाचाको प्रत्यक्ष दिखाऊँगा कि इसी तरह यह सब कुछ उड़ा देता है।'

दूसरे दिन बाला चचा दूकानपर आये। जलारामजी अभीतक साधुसेवासे निवृत्त नहीं हुए थे। वह बनिया भी आज और दिनोंसे पहले ही दूकान पर आ डटा था। आज अपनी सफलताकी उसे पूरी आशा थी। उसने बाला चचाको अकेले दूकानपर देखकर कहा—'चचाजी! आप कभी मेरा कहना नहीं सुनते। आज जरा खादीका थान तो देख लो। ऐसे ही आपका सब कुछ मुफ्तमें चला जाता है।'

तबतक जलारामजी भी आ गये। चचाने वस्त्र नापना शुरू किया। 'यह क्या?' आश्चर्यके साथ चचाने कहा, 'यह थान तो बीस ही हाथका था अब पचीस हाथ कैसे हो गया?' उन्होंने फिर नापा; किन्तु वही पचीस-का-पचीस हाथ निकला। उस बनियेने फिर भी दबती जुबानसे कहा—'चचाजी! चार-पाँच हाथ साधुको।'

'तू चुप रह; तू मेरे जलियासे द्वेष रखता है। चल यहाँसे।' बीचमें ही चचाजी बोल उठे। बनिया चुपचाप चला गया, उसने भक्तिका प्रभाव जाना और उस दिनसे जलारामजीको न सतानेकी उसने प्रतिज्ञा कर ली।

(३)

मनुष्य स्वयं गुणवान्, बुद्धिमान् और सावधान क्यों न हो, यदि उसकी धर्मपत्नी सद्गुणवती नहीं हो तो उसका यश संसारमें उतना नहीं बढ़ सकता। जिस तरह गाड़ीमें दोनों पहिये समान और दृढ़ होनेकी जरूरत है, उसी तरह संसार चलानेके लिये स्त्री-पुरुष दोनोंके योग्य होनेकी आवश्यकता है। ईश्वर-कृपासे जलारामजीको

पत्नी भी अपनी ही तरह धार्मिक बुद्धिवाली मिली थी। उनकी स्त्रीका नाम था वीरबाई। वीरबाई स्वभावसे सुशीला और पतिव्रता थीं। जिस तरह भक्तजी रामभजनमें मस्त थे उसी तरह वीरबाई भी भजनमें और पतिसेवामें लीन रहती थीं।

कुछ दिनोंसे भक्तजीके मनमें यह चिन्ता हो रही थी कि 'मेरा बर्ताव चचाजीको अच्छा नहीं लगता, ऐसी दशामें मैं क्या करूँ? क्या अलग हो जाऊँ? किन्तु मेरा निर्वाह कैसे होगा?' इसी बीच एक दिन गीता पाठ करते समय उनकी दृष्टि नवे अध्यायके इस श्लोकपर पड़ी—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(९। २२)

भक्तजी जाग उठे। हरि! हरि! यह क्या? स्वयं भगवान् ही आज्ञा दे रहे हैं। तो फिर मैं क्यों भ्रममें पड़ा हूँ? क्या प्रभु मेरे आधार नहीं? भक्तजी रोमाञ्चित हो गये। उनकी आँखोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे। दूसरे ही दिन जलारामजी बालजी चचासे अलग हो गये और अन्नदान, साधुसेवा और सत्संग निश्चिन्त होकर करने लगे।

एक दिन एक अत्यन्त वृद्ध साधुने दरवाजेपर आकर आवाज लगायी, 'क्यों जलाराम! क्या हो रहा है?' भक्तजी उस समय भजनमें तन्मय हो रहे थे, नेत्रोंसे आँसुओंकी धाराएँ बह रही थीं, वाणीसे भगवद्गुणगान हो रहा था।

आवाज सुनते ही वह उठ पड़े और बाहर आकर देखा, एक सफेद बालोंवाले कृशशरीर अत्यन्त वृद्ध सन्त लाठीके सहारे दरवाजेपर खड़े हैं, जलारामजी उन तेजपुञ्ज वृद्ध महात्माके चरणोंपर गिर पड़े। साधुने आशीर्वाद दिया, 'तेरा कल्याण हो।' भक्तजीने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज! भोजन तैयार है।'

'मैं भोजन नहीं चाहता।' साधुने कहा।

'किन्तु हमारे यहाँसे यदि कोई साधु बिना भोजन किये चले जाते हैं तो हम भी उस दिन भोजन नहीं करते।' भक्तजीने कहा।

परन्तु महात्माने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—'भक्त! मैं गिरनार जा रहा हूँ; तेरा नाम सुनकर आया हूँ। वृद्धावस्था है,

श्रम बहुत मालूम हो रहा है। नारायण-नारायण ......।'

इतना कहकर महात्माजी चलने लगे, चलते ही पैर अखड़ाकर गिर पड़े। वे मूर्छित हो गये।

भक्तदम्पति उनकी सेवामें लग गये। चार घड़ी बाद महराजको होश हुआ। तब जलारामजीने उनसे भोजन करनेके लिये फिर प्रार्थना की। 'मैं भोजन नहीं चाहता' वह बोल उठे।

युगल भक्त बिना अन्नजलके चार दिनोंतक महात्माजीकी सेवा करते रहे। आखिर जलारामजीने पुन: निवेदन किया, 'महाराज! दासका कोई अपराध हो तो कृपया क्षमा कीजिये और भोजन कर लीजिये। देखिये, चार दिनोंसे हमने भी भोजन नहीं किया है।'

फिर भी महाराजने जीभ नहीं हिलायी। 'मौनं सर्वार्थसाधनम्' के ही अनुसार आचरण किया।

फिर वीरबाईने प्रार्थना की, 'महाराज! भोजन किये बिना मैं आपको जाने न दूँगी।'

'देखो भक्तजनो! मुझे भोजन नहीं करना है। बस, मुझे जानेकी अनुमति दो।' इतना कहकर महात्माने झोली-डण्डा उठा लिया।

'आपको जो इच्छा हो वह खुशीसे माँगिये; यह दास आपकी इच्छा पूरी करनेके लिये प्राणपणसे चेष्टा करेगा। किन्तु इस तरह वापस न जाइये महाराज!' जलारामजीने कहा।

'क्या तू देगा? जलाराम! कहना सहज है, पर करना कठिन है। न बोलनेमें नौ गुण हैं।'

'महाराज! यह देह क्षणिक है। इस देहका कर्तव्य ही साधुसेवा है। इस देहसे यदि आपकी इच्छा पूरी न हो तो यह जन्म ही वृथा हो जाय।' 'देगा? अवश्य देगा?'

'अवश्य दूँगा महाराज!'

'भक्तराज! वृद्धावस्था बड़ी बुरी है। मैं न चल सकता हूँ और न भोजन कर सकता हूँ। अब मेरे भजनमें भी भङ्ग होनेकी सम्भावना है।'

'तो फिर यहाँ ही .... ठहर ...।'

'नहीं भक्त! मैं यहाँ रहना नहीं चाहता। एकान्त ही मुझे पसन्द है।'

'तो फिर क्या इच्छा है?' जलारामने आर्त्त स्वरमें पूछा।

'भक्तराज! मेरी सेवा करनेके लिये अपनी स्त्री दे दे, ईश्वर तेरा कल्याण करेगा। नारायण-नारायण!!'

-प्रसिद्ध दीवान रणछोड़जीका यह पद सहसा भक्तजीको याद हो आया। वह बोल उठे-'भगवान् करे सो भला।'

जलारामजीकी अवस्था उस समय केवल तीस वर्षकी थी। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपनी पतिव्रता पत्नीकी ओर देखकर कहा-'सती! यही कसौटी है। सुनार स्वर्णको अग्निमें तपाता है, पीटता है, छेदता है तब वह खरा समझा जाता है। अब तुम मेरी सेवा छोड़कर वृद्ध पितामहसदृश तेजपुञ्ज शरीर इन महात्माजीके साथ जाओ और इनकी सेवा करके भगवान्‌को प्रसन्न करो।'

'आपका आज्ञापालन ही मेरा धर्म है नाथ!' दृढ़तापूर्वक इतना कहकर वीरबाई वृद्ध साधुको हवा करने लगी।

बात फैलते कितनी देर लगती है? सारे गाँवमें इस बातका हल्ला मच गया। कोई उन साधुको दाम्भिक, कपटी और बदमाश बताने लगा, तो कोई जलारामको ही इस करनीके लिये धिक्कारने लगा। जो धार्मिक मनुष्य थे, उन्हें इसमें किसी ईश्वरी लीलाकी झलक दीखने लगी। परन्तु लोग क्या कहते हैं, इससे जलारामजीको क्या मतलब? उन्हें तो मतलब था उससे जो उन्हें करना था। उनकी आज्ञा हुई और वीरबाईने यह कहकर विदा माँगी-'नाथ! मेरा अपराध क्षमा करना। अब आपकी सेवाका अधिकार कब होगा? ....।' इतना कहते-कहते उसका गला भर आया और नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी।

'सती! चिन्ता मत करो। इन महात्माकी सेवा ही प्रभुसेवा है। आज ही तुमने अपने धर्मका पालन किया है।' भक्तराजने कहा।

भक्तजी वृद्ध साधुके चरणोंमें गिर पड़े और उन्होंने प्रेमाश्रुओंसे उनका पादप्रक्षालन किया। फिर उठकर पूछा-'और कुछ इच्छा है महाराज?'

'नहीं, नहीं जलाराम! मैं सन्तुष्ट हो गया। ईश्वर तेरा कल्याण करेगा। नारायण! नारायण!' करते हुए वीरबाईके साथ महात्माने वहाँसे प्रस्थान किया।

धन्य आर्यावर्त! धन्य है तेरी अचल टेक और तेरा सत्य! सीता, अनसूया, तारा, द्रौपदी और मीरा जैसी भक्त सती नारियोंसे ही तेरा मुख उज्ज्वल है। सती और यती (भक्त) के कारण ही जगद्वन्द्य है।

वृद्ध साधु और सती वीरबाई दोनों चलते-चलते एक गहन अरण्यमें पहुँचे। महात्माने सतीसे कहा-'सती! थोड़ी देर यहाँ ठहरो, मैं जल पीने जा रहा हूँ। मेरे डण्डे और झोलीका ख्याल रखना और जबतक मैं न लौटूँ तबतक किसी दूसरेको मत देना।'

सतीने कहा-'महाराज! कृपा करके शीघ्र लौटना, जङ्गल भयानक है।'

'तू निडर होकर बैठ।' इतना कह महात्माजी चल दिये।

एक, दो .... चार घण्टे बीत गये; पूर्णिमाका दिन था, आखिर सूर्यनारायणने अपनी जगहपर चन्द्रमाको नियुक्तकर अवकाश ग्रहण किया, पक्षिगण अपने-अपने घोंसलको लौटने लगे; परन्तु महात्माजी नहीं लौटे। वीरबाई उनका रास्ता देखते-देखते थक गयी और अन्तमें निर्जन वनमें बैठी करुण स्वरोंसे भगवान्‌का स्मरण करने लगी, उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगे।

'माता! आप इस स्थानपर कहाँसे आ गयीं?' गौओंको चराकर घर वापस जानेवाले एक चरवाहेने पूछा। वीरबाईने सारी घटना सुना दी। चरवाहेने पीछे लौटनेका आग्रह किया। किन्तु वीरबाईने स्वीकार नहीं किया। चरवाहा निरुपाय होकर वीरपुर गया और उसने सारा हाल जलारामजीको सुनाया। जलारामजी तथा गाँवके कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति उसके साथ जङ्गलमें आये और वीरबाईको अपने साथ वीरपुर ले आये। महात्माजीका झोली और डण्डा लेकर वीरबाई घर लौट आयी!

झोली और डण्डा छोड़कर महात्माजी तो अन्तर्धान हो गये; उस दिनसे पुन: जलारामजी वीरबाईके सहयोगसे साधुसेवा और सत्सङ्ग और भी उमङ्गके साथ करने लगे। किन्तु तबसे अन्ततक उन्होंने दृढ़तापूर्वक त्यागवृत्तिको ही धारण करना उत्तम समझा। और दोनों पति-पत्नी आजन्म शीलव्रतका पालन करते रहे।

वृद्ध महात्माकी दी हुई झोली और डण्डा अबतक वीरपुर गाँवमें मौजूद है। लोगोंका अनुमान है कि वह वृद्ध महात्मा और

कोई न थे, स्वयं श्रीहरि ही भक्त-दम्पति की परीक्षा करनेके लिये पधारे थे। वास्तवमें उन भक्तोंका जीवन पूर्ण धार्मिक, सत्यपरायण था, ईश्वरके प्रति उनमें अगाध श्रद्धा थी। 'निर्ममो निरहंकारः' की तो मानों वे सजीव मूर्ति ही थे। ऐसी दशामें यदि उन श्रेष्ठ भक्तोंकी परीक्षा स्वयं सरकारने आकर की हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

(४)

जलारामजीने अपने यहाँ एक अन्नसत्र-सदाव्रत खोल दिया, जहाँ अनेकों भूखे नरनारियोंको भोजन मिलने लगा। उसी समयमें संवत् १९३४ का भयङ्कर अकाल पड़ा था। ऐसे कठिन कालमें भी श्रीहरि कृपासे वह अन्नसत्र यथावत् चलता ही रहा।

अन्तमें अच्छा सुयश प्राप्तकर संवत् १९३७ में माघ कृष्ण दशमीके दिन भक्तराजने साकेत-निवास किया। परन्तु आज भी जनताको ज्ञान देनेके लिये उनकी कीर्तिमयी देह वर्तमान है और आगे भी रहेगी।

अब हम यह प्रार्थना करके इस चरित्रको समाप्त कर रहे हैं कि हम सब बराबर ऐसे महात्माओंके गुणानुवाद गाते रहें और ऐसे सन्त-महात्मा जगत्‌के कल्याणके लिये सदा इस पवित्र भारत-भूमिपर उत्पन्न होते रहें।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

(कल्याण वर्ष ९/१२/१४०८)

******

अद्भुत झलक

मैं आठ-दस वर्षका था, तभीसे श्रीमद्भागवत आदिकी कथा बड़े प्रेमसे सुनता था। एक समय काठियावाड़ गुजरात गया, वहाँ बहुत दिन रहना हुआ। मेरे गुरुदेव बुन्देलखण्डकी ओरके थे। झाँसीकी लड़ाईमें वे अंगरेजोंसे लड़े थे। उनके हाथसे अठारह अंगरेज मारे गये थे। उसके बाद वे वैष्णव हो गये। उनको बुन्देलखण्डमें जानेकी इजाजत नहीं थी। उनके साथ मेरा खूब सत्संग हुआ। वहाँसे वे श्रीद्वारिकाजी दर्शनके लिये गये। रास्तेमें उनका देहान्त हो गया। मैं अकेला ही श्रीद्वारिकाजीकी ओर चल पड़ा। रास्तेमें श्रीवृन्दावन या

श्रीअयोध्याजीका कोई मिलता तो मैं उससे प्रार्थना करता कि कोई ऐसा भजन कहो जिससे मुझे भगवान्के दर्शन हों, जब वे भजन कहते तब मैं खूब रोता। पहले भी प्रभुकी यादमें मैं बहुत रोया करता था। एक दिन एक जंगलमें दो-तीन मीलतक कोई गाँव नहीं था। जेठका महीना था। बड़े कड़ाकेकी धूप पड़ रही थी। एकादशीका दिन, मेरा व्रत था। आसपास ढाकके बहुतसे वृक्ष थे। मैं श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये रोता जाता था। उसी समय देखता हूँ तो आगे एक श्याम रंगका पुरुष पाँच-सात लड़कोंको साथ लिये कोई पाँच-छः सौ गौओंको चरा रहा है। एक फटा-सा कपड़ा लपेटे हुए है। मुझसे बोला, 'महाराज! हमारे तिलक कर दो, हम तुम्हारे चेले हो जायँगे।' फिर कहा कि, 'अपना यह लोटा हमें दे दो।' मैंने अपना लोटा उसे दिया। उसमें तीन सेर दूध आता था, तत्काल ही उसने वह लोटा दूधसे भरकर मुझे दे दिया और कुंजेकी मिश्री दी, तदनन्तर बोला, 'हम गौ ले आवें।' बस, इतना कहकर वह अदृश्य हो गया। मैंने देखा, न वहाँ गौएँ हैं और न वे पाँच-सात बालक ही। यह देखकर मैं बहुत ही पछताया-रोया।

(कल्याण वर्ष ७/१/५३४, ब्रह्मचारी श्रीरामशरणदासजी)

******

ईश्वरकी लीला

भक्त और भगवन्त दोनोंकी महिमा उसीके समझमें आ सकती है जिसमें श्रद्धा और भक्ति दोनों हों। मैं अयोध्यावासी हूँ। मेरे माता-पिता दोनों वैष्णव थे और अयोध्याके प्रसिद्ध महात्मा बाबा रघुनाथदासजीके शरणागत थे। ये महापुरुष पहले बादशाही सेनामें राबर्ट साहबकी पलटनमें सिपाही थे। मैं इनका बहुत मुँहलगा था। मैंने इनसे पूछा 'बाबाजी, मैंने सुना है कि एक बार आपके बदले भगवान्ने पहरा दिया था।' बाबाजी कहने लगे-'बच्चे, हम क्या जानें, किसीने हमारे बदले पहरा दे दिया होगा। हम तो दिनभर अपनी बारकमें बैठे 'सीताराम सीताराम' जपते थे। कुछ भक्त सिपाही भी हमारे पास आकर बैठ जाते थे और घण्टों रामधुन होती थी। एक बार हमने अपनी पलटनके कप्तान साहबके पास जाकर सलाम

किया और उनसे कहा कि 'हम आपकी नौकरी न करेंगे।' कप्तान बड़ा सज्जन था कहने लगा कि 'रघुनाथसिंह! हम तुमको जानते हैं, तुम बड़े भक्त हो। तुम जहाँ जी चाहे रहो, तुम्हारी तनख्वाह तुम्हारे पास भेजवा दी जायेगी' बाबाजीने उत्तर दिया—'मनुष मजूरी देत हैं कैसे राखैं राम।' इसका अर्थ यह है कि 'हम आपके नौकर हैं, काम भी पूरा नहीं करते तब भी आप हमको खानेको देते हैं। जब हम भगवान्‌की सेवा करेंगे तो वह हमको कैसे भूखा रख सकते हैं?' इतना कहकर बाबाजी जगन्नाथपुरीको चले गये। वहाँसे लौटनेपर कुछ दिन चित्रकूट रहे। फिर अयोध्यामें वासुदेव-घाटपर मौनीबाबाके शिष्य हुए और फिर आजीवन श्रीअयोध्यासे बाहर नहीं गये, मेरे माता-पिताको बाबाजीके चरणोंमें बड़ी भक्ति थी। मेरा नाम भी उन्हींका रक्खा हुआ है। मेरे जितने संस्कार हुए सब बाबाजीकी आज्ञासे किये गये। जब मुण्डनका समय आया, तो पिताजीने बाबासे निवेदन किया कि बच्चेका मूँडन करना चाहिये। बाबाजी बोले 'कल ले आओ नाई भी साथ लेते आना।' घर लौटते जब मेरी मातासे कहा तो माता कहने लगी कि 'साइत भी पूछ ली है?' पिताजीने कहा कि 'बाबाजीकी आज्ञासे बढ़कर साइत नहीं हो सकती।'

दूसरे दिन हमलोग गनेशी नाईको साथ लेकर छावनीमें पहुँचे। बाबाजी उस समय सरयू-स्नान कर रहे थे। पिताजीको दण्डवत् करते देखकर अपने शिष्यसे बोले कि 'वह कटोरी उठा लाओ जिसमें हम शालग्राम नहलाते हैं।' शिष्यने कटोरी लाकर नाईको दे दी और उसने उसमें सरयू जल भर लिया। बाबाजीने कहा 'अच्छा मूँड़ दो।' नाई पिताजीको देखने लगा और पिताजीने उसका अभिप्राय समझकर कटोरीमें कुछ रुपये डाल दिये। मुण्डन हो गया और हमलोग बाबाजीको दण्डवत् प्रणाम करके घर लौट आये। नाई इसके पीछे बहुत दिनोंतक जिया और सदा यही कहता रहा कि 'भइया, जबसे ई कटोरा मोरे घर आवा है, मेरे खायका नहीं घटा।'

इसके थोड़े ही दिन पीछे पाँचवें वर्षमें विद्यारम्भ निश्चय किया गया। हमलोग कायस्थ हैं, हमारे यहाँ मौलवी बुलाये जाते थे और फातिहा पढ़कर 'बिस्मिल्लाह' कराया जाता था। परन्तु पिताजीकी

भक्ति उन्हें फिर बाबाजीके चरणोंमें खींच ले गयी और बाबाजीकी आज्ञासे पाटी-बोरका लेकर हमलोग छावनी पहुँचे। बाबाजीने बोरकेमें सरयूजीका कीचड़ घोलवाया और कसेहरी (एक प्रकारकी कच्ची किलक) मँगवाकर उसकी लेखनी बनायी गयी। फिर महात्माजीने मुझे अपने पास बिठा लिया और पाटीके ऊपर विनयपत्रिकाका एक पद लिखा। बाबाजी बोलते जाते थे और मैं दोहराता जाता था। पद्य समाप्त होनेपर मुझसे कहा गया कि इसी लेखनीसे पाटीपर एक रेखा खींच दो। बाबाजीका पकड़ाया हुआ कमल सत्तर बरस हो गये, अबतक मेरे हाथसे नहीं छूटा।

जब स्कूलमें नाम लिखा गया तो जब-जब परीक्षा होती थी बाबाजीसे आज्ञा ली जाती थी। ५ बरस स्कूलकी और ४ बरस कालेजकी पढ़ायीमें कभी बिरला ही अवसर हुआ है जब दर्जेमें पहलेसे दूसरा नम्बर आया हो। अवधके स्कूलोंको मिलाकर जब परीक्षा हुई तो अवधमें सबसे ऊँचा नम्बर रहा। जब अवध और पश्चिमोत्तर देशके कालेजोंको मिलाकर इम्तिहान लिया गया तो उसमें भी अव्वल ही नम्बर रहा और जब बी०ए० की परीक्षा दी गयी तो उस समय अकेला कलकत्ता विश्वविद्यालय था जिसमें लंका (कोलम्बो), रंगून, पंजाब, मध्यप्रान्त और पश्चिमोत्तर देशके छात्र सम्मिलित थे, उसमें भी सबसे ऊँचा नम्बर मिला, जो इस प्रान्तके रहनेवालेको न पहले कभी मिला था और न उसके पीछे कभी मिला। कलकत्ता विश्वविद्यालयमें अबतक मेरी प्रतिष्ठा है और वहाँके सुप्रसिद्ध वाइस चांसलर सर आशुतोष मुखोपाध्याय मुझे One of my most distinguised fellow graduates for whom I have the highest respect लिखा करते थे।

तीसरी घटना इसीके कुछ दिन पीछेकी है। जून १८७९ में मेरा विवाह हुआ। जब बारात समधीके द्वार पर पहुँची और पालकी उतारकर रक्खी गयी, उन्हीं बाबाजीके दो चेले फूलकी एक माला और दो बड़े-बड़े आम लिये हुए पिताजीके पास पहुँचे और बोले कि 'बाबाजीने बच्चेके लिये यह माला और दो आम भेजे हैं, पिताजी उनको लेकर मेरे पास आये। माला मेरे गलेमें डाल दी गयी और दोनों आम जैसे ही वैरागी मेरे हाथोंपर रखने लगा,

पिताजी बोल उठे कि बाबाजीने तुझे इस विवाहसे दो पुत्र दिये। दोनों पुत्रोंमें ज्येष्ठ इस समय आबकारी कमिश्नरका परसनल असिस्टेन्ट है और उसका छोटा भाई रजिस्ट्रार डिपार्टमेण्टल इक्जामिनेशन्स है। इसके उपरान्त उनकी माताने त्रिवेणी वास लिया।'

मुझे भी वैष्णवी शिक्षाका प्रभाव पद-पदपर अनुभूत हुआ है। संसार काँटोंका वन है। बड़े-बड़े संकट झेलने पड़े हैं परन्तु इस शिक्षाने कवचका काम किया है। छोटे मुँह बड़ी बात है, परन्तु अनेक अवसरोंपर ऐसा अनुभव हुआ है कि धनुष-बाण लिये हुए सरकार मेरे पीछे खड़े हैं और कहते हैं कि 'सावधान, जबतक तू धर्मपथपर चलेगा, तेरी रक्षा की जायेगी और तू विचलित होगा तो तू भी मार खा जायगा।'

इस ७५ वर्षके जीवनमें अनेक घटनाएँ ऐसी हुई हैं जिनसे बचनेके लिये ईश्वरको धन्यवाद दिया गया है। साहित्यक्षेत्रमें ही एक महाशयने हमारा अपमान करनेमें कोई कसर नहीं रक्खी परन्तु हमने कभी उनकी ओर उनके साथियोंकी परवा न की। हमारे मित्रों और सहायकोंकी कमी नहीं थी परन्तु सबको रोक दिया और यही कहते रहे कि जो व्यर्थ द्वेष या ईर्ष्यावश हमपर वार कर रहा है उसके प्रत्युत्तरमें कोई लाभ नहीं है, क्योंकि ईर्ष्या एक ऐसी अग्नि है जिसे मनुष्य आप ही उत्पन्न करता और आप ही उसमें भस्म होता है। और ईश्वरकी दयासे हमारी हानिको कौन कहे लगातार उन्नति ही होती गयी। और हमें इस बातका सन्तोष है कि हम कुछ साहित्य जीवियोंकी सहायता कर रहे हैं। इसको हम ईश्वरकी दया न कहें तो क्या कहें।

एक घटना हम और लिखना चाहते हैं। मुरादाबादमें जब हम डिप्टीकलक्टर थे तो एक मण्डली ऐसी बनी हुई थी कि जो कहती थी कि हमसे मिलकर रहो, जितनी चाहो उतनी रिश्वत लो। उस मण्डलीमें नित्य रण्डियोंका जल्सा होता था। यह भी एक प्रलोभन था। परन्तु हमने अपने कर्तव्यके विचारसे उस मण्डलीमें सम्मिलित होना स्वीकार न किया। एक दिन २० वीं तारीखको सूर्य अस्त होने लगा जब हम कचहरीसे उठे। विक्टोरिया-फिटनकी सवारी थी। सईसने कहा कि टप गिरा दिया जाय, हमने कहा

नहीं, देर हो गयी घर चलो। जब हम शहरमें पहुँचे तो तहसीलके फाटकके सामने एक दुष्टने एक लाठी चलायी। लाठीका वार टपपर पड़ा और उसकी उछलती चोट हमारी बायें कनपटीपर लगी। इसके कारण वहाँ सूजन हो गयी। टप न उठा होता तो खोपड़ी चूर हो गयी होती। हमारा गूजर चपरासी कोचबकसपरसे कूद पड़ा और उस दुष्टको पकड़कर कोतवाली ले गया। दूसरे दिन जेंट मजिस्ट्रेटने उसे आठ महीनेका कारावास दिया। हम जानते थे कि उसने यह काम किसकी प्रेरणासे किया है परन्तु ईश्वरको धन्यवाद देकर चुप रहे। इसे ईश्वरकी दया न कहें तो क्या कहें?

आपने अपनी आँखों देखा है कि हमने अपने मकानमें एक कमरा रामायण-मन्दिर बना रक्खा है। उसमें अनेक प्रकारके रामायण-ग्रन्थ और रामचरित-सम्बन्धी चित्र हैं। हम उसीमें रहते हैं। चौकीके सामने श्रीरामजानकीका एक सुन्दर चित्र लगा हुआ है। उसके दर्शनसे लोचन तृप्त रहते हैं।

(कल्याण वर्ष ७/१/५८०, श्रीसीतारामजी)

******

भगवत्कृपाकी अनुभूति

१-प्राय: ३५से कभी मैंने रुपये-पैसेको हाथ नहीं लगाया, वस्त्र या भोजनके लिये किसीसे भी प्रार्थना नहीं की, फिर भी जंगलमें बर्फमें बर्फके पहाड़पर घूमते समय भी एक दिन भी भोजनकी असुविधा या कष्ट नहीं हुआ। बहुत बार तो लोगोंने इस तरह अन्न-वस्त्र लाकर दे दिया जैसे कोई स्वप्नमें ला दे। इसमें मैंने बहुत अच्छी तरहसे भगवत्कृपाका अनुभव किया।

२-असमयमें लोगोंने स्वप्न देखकर नौका और मोटरगाड़ी लाकर सहायता की है। इस प्रकारसे भगवत्-कृपाका अनुभव हुआ है कि उसके फलस्वरूप यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि माँ जिस तरह छोटे बच्चेके आवश्यक कामोंको किये बिना नहीं रह सकती, हमारे भगवान् भी उसी तरह अपने विधानके अनुसार सब अभाव दूर करनेके लिये बाध्य हैं। विश्वाससे सब होता है, सब प्राप्त होता है।

३–चित्त जितना शुद्ध और शान्त होता जाता है उतना ही जगत्, जीव सुन्दरसे सुन्दरतर मालूम होता जाता है। तत्पश्चात् जितना ही अपनेको, अपने संस्कार, कामना, ही सब कुछ एक प्रकारकी ज्योतिसे भरता जाता है। अन्तमें ऐसी अवस्था आ पहुँचती है जब 'तुम' भी नहीं रहता, 'मैं' भी नहीं रहता–कोई द्वन्द्वभाव नहीं रहता–रह जाता है केवल एक अनन्त ज्योतिका समुद्र, जिसके अन्दर अनन्त जीवजगत् ज्योतिके हिमखण्डकी तरह तैरता रहता है। समय-समयपर जब सर्वत्र इष्टदर्शन, देवमूर्ति आदिके दर्शन भी होते हैं। उस समय ऐसे अनेक अलौकिक अनुभव होते हैं जिनकी सत्यता समाधि टूटनेपर प्रमाणित होती है।

४–बहुत बार बर्फके पहाड़से गिरनेका मौका आते ही ऐसा अनुभव हुआ है मानो किसीने हाथ पकड़कर रोक लिया है और इस तरह जीवनकी रक्षा की है। अनेक समयोंमें आकाशवाणीकी तरह अत्यन्त मधुर शब्दने आकर विपत्तिसे मेरी रक्षा की है; वस्त्र पहनकर अपनी रक्षा करनेके लिये इशारा किया है।

५–स्वप्नमें अवतारविशेषके द्वारा गीता, वेदान्त आदिके सम्बन्धमें शंकाका निवारण हुआ है।

६–ध्यानकी परिपक्व अवस्थामें ज्योतिदर्शन, सब भूतोंके अंदर आत्मदर्शन और अनेक बार स्वप्नमें अलौकिक ढंगसे भगवद्विभूतिका दर्शन तथा उसके फलस्वरूप सब जीवोंके प्रति प्रेमभावकी वृद्धिका अनुभव प्रायः सभी सच्चे साधक करते हैं। बीच-बीचमें ऐसा दर्शन होने लगता है, जिससे सब पदार्थ, सब जीव ज्योतिर्मय मालूम होते हैं और फिर अपने और दूसरोंके भीतर सर्वत्र एक अलौकिक ज्योति सबके अंदर भरी हुई मालूम होती है, जिसके फलस्वरूप दिव्य आनन्दकी प्राप्ति होती है और समस्त जगत् आनन्दसे परिपूर्ण मालूम होता है।

७–मेरे प्राण मानो निकलनेही वाले हैं, ऐसी अवस्थामें विचित्र ढंगसे जंगलमें, बर्फके पहाड़पर ऐसी बहुत-सी चीजें मिली हैं, जिनके रहनेकी वहाँ कोई सम्भावना नहीं थी और इस तरह उनके द्वारा जीवनकी रक्षा हुई है। साधक भक्तोंके जीवनमें प्रायः सब घटनाओंमें भगवत्कृपाका आभास पाया जाता है। जिसे आँखें होती हैं, वह

देखता है; जिसके प्राण हैं, मन है, वह अनुभव करता है।
(कल्याण वर्ष १०/८/८८३)

******

भगवत्-कृपा

अभी उस रोज (२९-५-३७) की घटना है। मैं एक ताँगेपर, जिसमें एक अच्छा घोड़ा जुता था, सवार था। यकायक घोड़ा जोरोंसे भड़का। आव देखा न ताव, वह एकदम हवासे बातें करने लगा और ताँगा लेकर भागा। ताँगेपर मैं, कोचवान और एक साईस तीन आदमी थे।

घोड़ा इतने जोरोंसे दौड़ा कि दो-दो आदमियोंके रास खींचनेपर भी जरा भी न रुका। अचानक उसकी रास (लगाम) भी टूट गयी और वह काबूसे बाहर हो गया। थोड़ी दूर जाकर घोड़ा एक मकानकी दीवालसे टकरा गया। टक्कर इतने जोरसे लगी कि उसके फलस्वरूप घोड़ेका मुँह, नाक, गला और चेहरा आदि घायल हो गया। ताँगेके बम आदि टूट गये। कोचवान एक तरफ लुढ़क गया, साईस नालीमें गिर पड़ा और मैं ऊपरकी ओर फेंका गया और सिरके बल पक्की सड़कपर वृक्षसे टूटे हुए फलकी नाईं आ पड़ा। दर्शकोंने समझा कि हम लोगोंको अस्पताल या मृत्युका ही मुँह देखना पड़ेगा। पर-

जाको राखै साइयाँ, मारि न सकिहैं कोय।
बाल न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय॥

-के अनुसार हम लोग बहुत थोड़ी-थोड़ी चोट खाकर बाल-बाल बच गये।

जब ताँगेको लेकर घोड़ा भागा और टक्कर खा गया, तो मैंने सोचा कि 'हे भगवन्! तुम्हारी क्या इच्छा है। अब तो यह भँवरमें पड़ी नौका तुम्हारे ही बचाये बच सकती है।' जब मैं टक्कर खाकर सिरके बल सड़कपर गिर रहा था, मुझे अनुभव हुआ कि मानो किसीने मेरे सिरके नीचे कोई ऐसी मुलायम चीज रख दी जिससे मेरे सिरके थोड़े बाल तो रगड़से उखड़ गये पर न तो लहू बहा और न कहीं चोट की आयी। दर्शकोंको आश्चर्य

हुआ कि मैं इतने जोरोंसे गिरा और मुझे कुछ भी चोट न आयी। मैंने हँसते हुए उस दयालु पिताको धन्यवाद दिया और समझ गया कि यह तो उसीका हाथ था जिसने मुझे बचा लिया। इससे बढ़कर उसकी दयाका और क्या प्रमाण हो सकता है?

ठीक इसी प्रकारकी घटना पिछले साल भी हुई थी। टमटमका घोड़ा भड़का और पास ही एक गड्ढेकी ओर, जिसमें बरसाती पानी भरा था और जो काफी गहरा था, चला। मैं कोई भी सहारा न देख आँखें बंदकर उस प्रभुका स्मरण करने लगा और जब मेरी आँखें खुलीं तो मैंने अपनेको घुटनेभर जलमें खड़ा पाया। मेरे वस्त्र ज्यों-के-त्यों थे, जरा भी भीगे नहीं थे। जलसे बाहर आया और मैंने देखा कि केवल एक जगह कुछ छिल गया है। प्रभु! तुम धन्य हो!! जब-जब भक्तोंपर भीर पड़ी है तुमने नंगे पैर आकर उनकी रक्षा की है। मुझमें तो न विद्या है, न बल है और न तुम्हारी भक्तिका लेश ही है पर तुम तो बुराई करनेवालेकी भी भलाई ही करते हो। मुझ दीन-हीनपर तुम्हारी ऐसी अत्यन्त दयालुता इस बातका प्रमाण है। नाथ! इस दीनपर सदा दया बनी रहे, यही करबद्ध प्रार्थना है।

(कल्याण ११/१२/१५३६)

******

सतीत्वका तेज

सतियोंकी अग्निपरीक्षाकी बातें पुराने ग्रन्थोंमें बहुत पढ़नेको मिलती हैं, परन्तु आजका समाज उनपर विश्वास नहीं करता। आजकल लोगोंकी यही धारणा है कि ये सब कपोलकल्पित बातें हैं, ऐसा होना सम्भव नहीं। पर हालमें गत तारीख ६ दिसम्बर १९३८ को मुँगेर जिलेमें जो घटना हुई है उसे सुनकर तो चकित होना पड़ता है।

मुँगेर जिलेके प्रसिद्ध उलाव ग्राममें गोरखपुर जिलेके कुछ पथरकट्टे लोग कई महीनोंसे डेरा डाले आसपास गाँवोंमें चक्की आदि काटनेका काम कर अपना जीवन बिताते थे। जयपाल पथरकट्टेकी लड़की, नथुनी पथरकट्टेकी पत्नी, सुन्दरी नामक एक ३०-३२ वर्षकी

युवती उनमें थी। उसके दो छोटे-छोटे लड़के भी हैं। हालमें बाबूलाल नामक एक व्यक्तिने उसके पतिसे कहा कि तुम्हारी स्त्री बदचलन हो गयी है, इसे जो गर्भ है वह भी तुम्हारा नहीं है। युवतीने दोषारोपण करनेवालेसे नम्रतापूर्वक कहा, 'तुम झूठे हो, भगवान् साक्षी है, मैंने कभी पर-पुरुषका संग नहीं किया।' उसने कहा, 'अच्छा! तुम सच्ची हो तो अपनी जातिमें जो अग्निपरीक्षा होती आयी है वह तुम भी दो।' युवतीने हँसते हुए कहा, 'हाँ, हाँ, जब चाहो ले लो।' इसके फलस्वरूप मंगलवार तारीख ६-१२-३८ को निम्नलिखित प्रकारसे उस युवतीकी अग्निपरीक्षा हुई।

ग्राममें दक्षिण एक वट-पीपलका वृक्ष है, इस वृक्षके नीचे बहुत-से गोइठोंका ढेर लगाकर उसमें आग लगा दी गयी और उसमें लगभग दो सेरका लोहेका एक हथौड़ा रख दिया गया। हथौड़ा जब लाल हो गया, तब उस युवतीको स्नान कराकर उसके जुड़े हुए दोनों हाथोंकी हथेलियोंपर घी लगा दिया गया और उनपर घी लगे हुए पीपलके ढाई पत्ते रखकर कच्चे सूतसे हथेली बाँध दी गयी। धूनीसे लेकर सात डेगतक सात गाइठे रख दिये गये। युवतीको धूनीके पास खड़ा कर दिया गया। जातके मुखियाने सँड़ासेके द्वारा जलता हुआ हथौड़ा निकालकर युवतीके पास खड़े होकर उससे कहा—'यदि तुम निर्दोष हो तो इस जलते हुए लोहेको हथेलीपर ले लो और सात डेग चली जाओ।' इसपर युवतीने सूर्यभगवान्‌की ओर मुँह करके यह प्रार्थना की कि 'हे भगवान्! यदि मैं निर्दोष हूँ तो आप मेरा धर्म रखना।' इतना कहकर उसने बड़े हर्षसे जलते हुए लोहेको हथेलीपर रख लिया और सात डेग आगे जाकर उसे जमीनपर फेंक दिया। जिस जगह वह लोहा गिरा उस जगहकी घास जलकर जमीनकी मिट्टी भी दो इञ्च गहराईतक जल गयी। परन्तु बड़े आश्चर्यकी बात यह हुई कि भगवत्कृपासे न तो हथेलीपर सूत जला, न पीपलके पत्ते जले और न युवतीकी हथेलीपर जरा दागतक आया।

इस अग्निपरीक्षाको देखनेके लिये लगभग दो सौ स्त्री-पुरुषोंकी भीड़ लगी थी, जिसमें कुछ पथरकट्टे लोग थे और बाकी गाँवके लोग थे। सबने सतीका जय-जयकार किया। तदनन्तर इस पतिव्रता

देवीको श्रीमती सावित्री देवीजीको डेवढ़ीपर बुलाकर मिठाई, कपड़े तथा फूल-मालादिसे उसका सत्कार किया गया।
[शिवकरण उपाध्याय]

[उपर्युक्त घटनाकी जाँच करवायी गयी, जिससे पता लगा कि घटना सच है। असलमें यह बड़ा ही आश्चर्यप्रद है, इस बीसवीं शताब्दीमें भला इस आगसे भी नहीं जलनेकी बातपर कौन विश्वास करेगा। सतीत्वको वहम बतलावाले लोगोंको इससे जरूर शिक्षा लेनी चाहिये और हिन्दू-धर्मके गौरवस्वरूप इस सतीत्वका कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिये। हिन्दूजातिकी बेपढ़ी-लिखी गँवार स्त्रियोंमें भी इस प्रकारकी सती मौजूद है यह हिन्दू-जातिका गौरव है।

(कल्याण वर्ष १३/८/१४९१)

*****

भक्त भुवनसिंहजी चौहान

ठाकुर भुवनसिंह चौहान जातिके राजपूत थे। महाराजा उदयपुरके दरबारी थे। सालाना दो लाखका पट्टा था। ये अपनी वीरताके लिये प्रसिद्ध थे। उदयपुरके सामन्तोंमें इनकी बड़ी धाक थी। इतना होनेपर भी ये थे परम वैष्णव। श्रीकृष्णकी भक्तिसे इनका हृदय भरा था। प्रातःकाल सूर्योदयसे बहुत पहले शय्या त्यागकर शौच-स्नानादिसे निवृत्त हो ये भगवद्भजनमें लग जाते और दिनके ग्यारह बजेतक अनन्यचित्तसे भगवत्-सेवनमें संलग्न रहते। दुपहरको दरबारमें जाते; रातको फिर भगवद्भजनके लिये बैठ जाते। भुवनसिंहजी भजनानन्दी तो थे ही, आपके बड़े ही पवित्र आचरण थे। सत्य, दया, प्रेम, उदारता आदि सद्गुण आपमें भरे थे।

राजाओंमें शिकारका व्यसन होता है। यह राजधर्म न होनेपर भी कई राजा इसे राजधर्म मान बैठते हैं और गरीब पशु-पक्षियोंकी बड़ी नृशंसताके साथ हत्या करके अपनेको गौरवान्वित समझते हैं। महारानाको भी शिकारका व्यसन था। एक दिन अपने सब सामन्तोंको साथ लेकर महाराना शिकारको निकले। बहुत-से पशुओंका शिकार किया गया। महारानाने एक बहुत सुन्दर हरिनीको दौड़ते देखा। शिकारीका

मन अन्ततः शिकारके समय दयाशून्य हो जाता है। रानाने उसे मारनेके लिये घोड़ा पीछे दौड़ाया परन्तु वह भागकर कहीं छिप गयी। चौहान भुवनसिंह महारानाके साथ थे। महारानाको थके देखकर और उनका इशारा पाकर भुवनसिंह उस हरिनीकी खोजमें चले। कुछ दूर जाकर देखा—हरिनी दौड़ते-दौड़ते थककर एक पेड़की आड़में छिपी खड़ी है, डरके मारे उसका बदन काँप रहा है, जीवनसे निराश-सी होकर वह बड़े ही करुणापूर्ण नेत्रोंसे मानो जीवनभिक्षा माँग रही है। परन्तु भुवनसिंहको उसकी इस स्थितिको समझनेके लिये अवकाश कहाँ था? वे तो उस समय शिकारके नशेमें पागल थे। तत्काल ही उन्होंने अपनी विषैली तलवार निकाली और लपककर चट हरिनीके दो टुकड़े कर डाले। मृगी कटकर गिर पड़ी, साथ ही उसके पेटका बच्चा भी कट गया। क्षणमात्रमें वह अपने बच्चेके साथ ही परलोकको सिधार गयी। मरते समय उसने बड़े ही करुण नेत्रोंसे भुवनसिंहकी ओर देखा था। भुवनसिंहको उसकी दृष्टिमें करुणाके साथ ही ईश्वरीय कोप दिखायी दिया, उनका कलेजा काँप गया। उनको अपने इस कुकृत्यपर बड़ी घृणा हुई। वे मन-ही-मन अपनेको धिक्कारते हुए कहने लगे—'क्या इस प्रकार दयाके योग्य निर्बल मूक पशुओंको मारना ही क्षत्रियधर्म है? क्या इसीमें राजपूतीकी शान है। इस बेचारी निरीह गर्भवती हरिनीने मेरा क्या बिगाड़ा था, जो मैंने राक्षसकी तरह इसे काट डाला। धिक्कार है ऐसी जीवघातिनी शूरताको।' अरे, इतना निर्दय होकर भी मैं भगवद्भक्त हूँ! जो इस प्रकार भगवान्‌के पैदा किये हुए गरीब जीवोंको मारता है, उसे क्या अधिकार है भगवान्‌की भक्ति करनेका और अपनेको भक्त समझनेका। उसकी भक्ति तो ढोंगमात्र है। हाय! मैंने बड़ा पाप किया। दयालु भगवन्! इस अधमको अपनाओ—अब मैं ऐसा पाप कभी नहीं करूँगा। इस प्रकार आत्मग्लानियुक्त प्रार्थना करते-करते भुवनसिंहने मन-ही-मन प्रण कर लिया कि आजसे मैं लोहेकी तलवार ही नहीं रक्खूँगा। काठकी तलवार रक्खूँगा, जिससे किसी भी जीवकी हत्या नहीं हो सकेगी।

शिकारसे सब लोग लौट आये। भुवनसिंहने अपने निश्चयके अनुसार काठकी तलवार बनवा ली। किसी सूत्रसे इस बातका एक

सामन्तको पता लग गया, वह भुवनसिंहजीकी ख्याति और प्रतिष्ठासे जलता था। उसने इसको अपनी जलन बुझानेका बड़ा सुन्दर साधन समझा और मौका देखकर महारानासे कह दिया। उन्होंने सामन्तकी बात नहीं मानी। सामन्तको बड़ी निराशा हुई, उसने एक दिन छिपकर भुवनसिंहकी तलवार म्यानसे निकालकर देखी। तलवार काठकी थी ही। अब तो उसको अपनी बातका पक्का निश्चय हो गया। उसने फिर जाकर महारानासे कहा, परन्तु महारानाको उसकी बातपर विश्वास होता ही नहीं था। यों एक साल बीत गया। तब उसने एक दिन एकान्तमें महारानासे कहा—'मैंने इतनी बार आपसे प्रार्थना की परन्तु आप मेरी सच्ची बातपर ध्यान ही नहीं देते। एक बार म्यानसे निकलवाकर देख तो लीजिये। यदि मेरी बात झूठ हो तो उसी क्षण मेरा सिर उतरवा लीजियेगा।' महारानाने सोचा, 'यह इतने जोरसे कहता है तो एक बार तलवार देखनी तो चाहिये, परन्तु देखी जाय कैसे? मैं यदि अपना सन्देह प्रकट करके उनकी तलवार देखना चाहूँ और यदि तलवार काठकी न निकली तो फिर क्या उत्तर दूँगा। फिर किसी एकके कहनेसे ही भुवनसिंह-सरीखे सम्भ्रान्त पुरुषका यों अपमान करना भी तो अनुचित है। सम्भव है, यह उनसे द्वेष रखता हो और द्वेषवश ही उनको अपमानित करनेके लिये ऐसा कह रहा हो।' अन्तमें रानाके मनमें एक युक्ति आ गयी। उन्होंने एक दिन उपवनके समीप एक सुन्दर तालाबके तीरपर गोठ (भोज) का आयोजन किया। सभी दरबारी सामन्त बुलाये गये। भोजके पश्चात् रानाने बातों-ही-बातोंमें कहा, 'देखें किसकी तलवार अधिक चमकती है'—यों कहकर रानाने सबसे पहले अपनी तलवार म्यानसे निकालकर दिखायी। अब तो एक-एकके बाद सभी अपनी-अपनी तलवार म्यानसे निकालकर दिखाने लगे। भुवनसिंह उच्च श्रेणीके सामन्त थे, उनको पहले ही तलवार निकालकर दिखानी चाहिये थी परन्तु वे चुपचाप बैठे थे। इससे रानाके मनमें भी कुछ सन्देह पैदा हो गया। रानाने कहा, 'भुवनसिंहजी! आप चुप कैसे बैठे हैं, आप भी अपनी तलवार निकालिये।' इसके उत्तरमें भगवद्विश्वासी भुवनसिंहजी यह कहना ही चाहते थे कि 'मेरी तलवार तो दारु (काठ) की है, मैं क्या दिखलाऊँ' परन्तु भगवान्‌की न मालूम

किस अव्यक्त प्रेरणासे उनके मुखसे 'दार' (काठ) की जगह 'सार' (असली लोहा) निकल गया। इतना कहते ही भुवनसिंहने मानो बरबस तलवार म्यानसे खींच ली। भगवान् बड़े भक्तवत्सल हैं, वे अपने भक्तके मुखसे निकले हुए वाक्यको सत्य करनेके साथ ही उसकी प्रतिष्ठा भी बढ़ाना चाहते हैं। तलवार म्यानसे बाहर निकालते ही बिजली-सी चमकी। सबके नेत्र चौंधिया गये। उसकी ऐसी चमक देखकर सभी लोग चकित हो गये। भुवनसिंह स्वयं आश्चर्यमें डूब गये परन्तु दूसरे ही क्षण उनके समझमें आ गया कि यह सारी मेरे स्वामीकी लीला है। चुगली खानेवाले सामन्तका सिर नीचा हो गया, उसकी ऐसी दशा हो गयी कि काटो तो खून नहीं। रानाका चेहरा क्रोधसे तमतमा उठा—रानाने गर्जकर कहा! 'क्यों जी, भुवनसिंहजीपर झूठा आरोप करते आपको लज्जा नहीं आयी। अब तैयार हो जाइये, सिर उतरवानेके लिये। यों कहकर महारानाने उस सामन्तका सिर उतारनेकी आज्ञा दे दी।'

भुवनसिंहजी चुपचाप सब सुन रहे थे, अब उनसे नहीं रहा गया। उन्होंने खड़े होकर और सिर नवाकर महारानासे कहा, 'अन्नदाता! सामन्तका सिर न उतरवाया जाय। इन्होंने सत्य कहा था। मेरी तलवार काठकी ही थी। उस दिन गर्भिणी हरिनीको मारनेपर मेरे मनमें वैसी शूरताके प्रति घृणा हो गयी थी और मैंने तभीसे लोहेकी तलवारका त्याग कर दिया था। यह तो मेरे भगवान् श्रीश्यामसुन्दरकी लीला है जो उन्होंने मेरी लाज रखनेके लिये अकस्मात् काठको लोहेके रूपमें परिवर्तित कर दिया।'

महाराना उनकी बात सुनकर चकित हो गये। भगवान्‌की भक्तवत्सलता देखकर उन्हें रोमाञ्च हो आया। रानाने सामन्तको छोड़नेकी आज्ञा देकर कहा—'भुवनसिंहजी! आज मैं आप सरीखे भक्तके दर्शन करके कृतार्थ हो गया। दर्शन तो रोज ही करता था परन्तु आपका महत्त्व मैंने आज जाना। अब आपको मेरे दरबारमें नहीं आना पड़ेगा। अब तो आप उन महान् राजराजेश्वरके दरबारमें हाजिरी दीजिये। मैं खुद ही आपके चरणोंमें हाजिर हुआ करूँगा। आप धन्य हैं। आजसे आपकी जागीर दोके बदले चार लाखकी हुई।'

भुवनसिंहजीने कहा—'महाराज! मुझे दूनी जागीर नहीं चाहिये।

आप भी कृपा करके अब शिकार खेलना छोड़ दीजिये और श्रीभगवान्का स्मरण कीजिये। आपने मुझे दरबारसे अलग करके बड़ी ही कृपा की है। मैं सदा आप कृतज्ञ रहूँगा।'

गोठमें उपस्थित सभी सामन्त हर्षगद्गद हो गये। सबने एक स्वरसे भगवान् और भक्तका जयजयकार किया।

बोलो भक्त और भगवान्की जाय।

(कल्याण वर्ष १३/७/१४१७)

******

संतकी असहिष्णुता

एक संत नौकामें बैठकर नदी पार कर रहे थे। शामका वक्त था। आखिरी नाव थी, इससे उसमें बहुत भीड़ थी। संत एक किनारे अपनी मस्तीमें बैठे थे। दो-तीन मनचले आदमियोंने संतका मजाक उड़ाना शुरू किया। संत अपनी मौजमें थे, उनका इधर ध्यान ही नहीं था। उन लोगोंने संतका ध्यान खींचनेके लिये उनके समीप जाकर पहले तो शोर मचाना और गालियाँ बकना आरम्भ किया, जब इसपर भी संतकी दृष्टि नासिकाके अग्रभागसे न हटी, तब वे संतको धीरे-धीरे ढकेलने लगे। पास ही कुछ भले आदमी बैठे थे, उन्होंने उन बदमाशोंको डाँटा और संतसे कहा–'महाराज! इतनी सहनशीलता अच्छी नहीं है, आपके शरीरमें भी काफी बल है, आप इन बदमाशोंको जरा-सा डाँट देंगे तो ये अभी सीधे हो जायँगे।' अब संतकी दृष्टि उधर गयी। उन्होंने कहा– 'भैया! सहनशीलता कहाँ है, मैं तो असहिष्णु हूँ, सहनेकी शक्ति तो अभी मुझमें आयी ही नहीं है। हाँ, मैं इसका प्रतिकार अपने ढंगसे कर रहा था। मैं भगवान्से प्रार्थना करता था कि वे कृपाकर इनकी बुद्धिको सुधार दें, जिससे इनका हृदय निर्मल हो जाय।' संतकी और उन भले आदमियोंकी बात सुनकर बदमाशोंके क्रोधका पारा बहुत ऊपर चढ़ गया। वे संतको उठाकर नदीमें फेंकनेको तैयार हो गये। इतनेमें ही आकाशवाणी हुई–'हे संतशिरोमणि! ये बदमाश तुम्हें नदीके अथाह जलमें डालकर डुबो देना चाहते हैं,

तुम कहो कि इनको अभी भस्म कर दिया जाय।' आकाशवाणी सुनकर बदमाशोंके होश उड़ गये और संत रोने लगे। संतको रोते हुए देखकर बदमाशोंने निश्चित समझ लिया कि अब यह हम लोगोंको भस्म करनेके लिये कहनेवाला है। वे काँपने लगे। इसी बीचमें संतने कहा—ऐसा न करें स्वामी! मुझ तुच्छ जीवके लिये इन कई जीवोंके प्राण न लिये जायँ। प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और यदि मेरे मनमें इनके विनाशकी नहीं, परन्तु इनके सुधारकी सच्ची आकांक्षा है तो आप इनको भस्म न करके इनके मनमें बसे हुए कुविचारों और कुभावनाओंको, इनके दोषों और दुर्गुणोंको तथा इनके पापों और तापोंको भस्म करके इन्हें निर्मलहृदय बना दीजिये। आकाशवाणीने कहा—'संतशिरोमणि! ऐसा ही होगा। तुम्हारा भाव बहुत ऊँचा है। तुम मुझको अत्यन्त प्यारे हो। तुम्हें धन्य है।'

बस, बदमाश परम साधु बन गये और संतके चरणोंपर गिर पड़े।

(कल्याण वर्ष १५/६/११९०)

******

शिवाजीको पत्र

संत तुकारामजी लोहगाँवमें थे। छत्रपति शिवाजीने अपने खासआदमियोंके साथ बहुत-सी मशालें, घोड़े तथा बहुमूल्य जवाहिरात भेजे और उनसे पूना पधारनेके लिये प्रार्थना की। विरक्त-हृदय तुकारामजीने उनकी भेजी हुई चीजोंको छुआतक नहीं। उन्होंने सब चीजें लौटा दीं और नौ अभंगोंमें उनको नीचे लिखा पत्र लिख भेजा—

'मशाल, छत्र और घोड़ोंको लेकर मैं क्या करूँ। यह सब मेरे लिये शुभ नहीं है। हे पुण्ढरीनाथ! अब मुझे इस प्रपञ्चमें क्यों डालते हो? मान और दम्भका कोई भी काम मेरे लिये शूकरी-विष्ठा ही है। आप दौड़कर आइये और इससे मुझे बचाइये।'

'मेरा चित्त जिसको नहीं चाहता, वही तुम मुझको दिया करते हो, क्यों मुझे इतना तंग कर रहे हो?'

'मैं संसारसे अलग रहना चाहता हूँ, विषयका संग चाहता ही नहीं। मैं चाहता हूँ—एकान्तमें रहूँ और किसीसे कुछ भी न बोलूँ। मन चाहता है कि सब विषयोंको वमनके समान त्याज्य समझूँ। मैं

तो यह चाहता हूँ, परन्तु हे नाथ! करने-धरनेवाले तो तुम्हीं हो।'

मैं क्या चाहता हूँ सब तुम्हें पता है। परन्तु जान कर भी तुम टाल देते हो। यह तो तुम्हें आदत ही पड़ गयी है कि जो भी तुम्हें चाहता है, तुम उसके सामने ऐसी-ऐसी चीजें लाकर रखते हो कि जिससे वह उनमें फँसकर तुम्हें भूल जाय। परन्तु हे नाथ! तुकाने तो तुम्हारे चरणोंको जोरसे पकड़ लिया है। देखूँ तो सही, तुम इन्हें कैसे छुड़ाते हो।

[भगवान्‌से इतना कहकर अब तुकारामजी छत्रपति शिवाजीसे कहते हैं-]

'चींटी और सम्राट् दोनों ही मेरे लिये एक-से हैं। मोह और आशा तो कलिकालकी फाँसियाँ हैं। मैं इनसे छूट गया हूँ। मेरे लिये अब सोना और मिट्टी दोनों बराबर हैं। सारा वैकुण्ठ घर बैठे ही मेरे यहाँ आ गया है। मुझे किस बातकी कमी है।'

'मैं तो तीनों लोकोंके सारे वैभवका धनी बन गया हूँ। सबके स्वामी भगवान् मेरे माता-पिता मुझको मिल गये हैं, अब मुझे और क्या चाहिये? त्रिभुवनका सारा बल तो मेरे ही अंदर आ गया। अब तो सारी सत्ता मेरी ही है!'

'फिर, आप मुझे दे ही क्या सकते हैं? मैं तो विट्ठलको चाहता हूँ। हाँ, आप उदार हैं, चकमक पत्थर देकर पारस लेना चाहते हैं; प्राण भी दें, तो भी भगवान्‌की एक बातकी भी बराबरी नहीं हो सकेगी। धन क्या देते हैं? धन तो तुकाके लिये गोमांसके समान है। यदि कुछ देना ही चाहते हैं तो बस यह दीजिये मैं इसी से सुखी होऊँगा। मुखसे 'विट्ठल' 'विट्ठल' कहिये। गलेमें तुलसीकी कण्ठी पहनिये। एकादशीका व्रत कीजिये और हरिके दास कहलाइये। बस, तुकाकी आपसे यही आशा है।'

'बड़े-बड़े पर्वत सोनेके बनाये जा सकते हैं, वनके तमाम पेड़ोंको कल्पतरु बनाया जा सकता है, नदियों और समुद्रोंको अमृतसे भरा जा सकता है, मृत्युको रोका जा सकता है, सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। यह सब हो सकता है, परन्तु प्रभुके चरणोंका प्रेम प्राप्त करना परम दुर्लभ है। इन सब सिद्धियोंसे भगवच्चरणोंका लाभ नहीं होता। श्रीविट्ठलके ऐसे परम दुर्लभ, परम पावन, परमानन्द देनेवाले श्रीचरण बड़े भाग्यसे मुझको मिल गये हैं, इनके सामने अब

मैं इन मशालों, छत्रों और घोड़ोंको अपने हृदयमें कहाँ जगह दूँ?'

'आपने बड़े-बड़े बलवानोंको अपना मित्र बनाया है, परन्तु याद रखिये—अन्त समय ये कोई काम नहीं आवेंगे। पहले राम-राम लीजिये; इस उत्तम 'राम' को अपने अंदर भर लीजिये। यह परिवार, लोक, धन, सैन्य किसी काम नहीं आवेंगे। जबतक काल सिरपर सवार नहीं होता, तभीतक आपका यह बल है। तुका कहता है—प्यारे! लखचौरासीके चक्करसे बचिये!'

(कल्याण वर्ष १५/६/१९९०)

******

अन्धेर नहीं, देर है

इस अविश्वास तथा अश्रद्धाके युगमें सद्व्यवहार और पुण्यके कामोंसे लाभ-हानिका प्रश्न अक्सर उठ जाता है। लोगोंको अक्सर यह कहते हुए सुनते हैं कि 'पापी' ही आजकल उन्नतिपर हैं और बेचारे ईश्वरसे डरनेवाले तथा नित्य पूजा-पाठादिमें लगे रहनेवाले दुःख ही उठा रहे हैं। धूर्तों, चोरों, दगाबाजों और अन्यायियोंकी सब जगह रोब-दाब है और सीधे-सादे सच्चे और सरल व्यवहारवालोंको लोग मूर्ख समझते हैं। घोर पाप करनेवालोंकी धन-जन सब प्रकारसे उन्नति दिखायी देती है और साधु-स्वभाववालोंका जीवन एक-एक पैसे और सन्तानके लिये तरसते बीतता है। मैं भी कभी-कभी इस उलझनमें पड़ जाता था और सोचता था कि हमारे ऋषियोंका 'यतो धर्मस्ततो जयः' का सिद्धान्त—केवल पुस्तकोंके पन्नोंको ही सुशोभित करनेके लिये है अथवा इसमें कुछ रहस्य भी है? एक बार तो मेरे एक पुराने शिक्षकने बड़े जोरोंसे कहा भी 'यह खद्दरका कुरता और छः पैसेकी टोपी छोड़ो और जरा ठाटसे रहो।' नहीं जानते हो कि, 'नाचे गावे तोरै तान, तेहिकर दुनिया राखै मान' मैंने चुपचाप यह सलाह सुनी और मन-ही-मन सोचता रहा कि क्या वे ठीक कह रहे थे।

परन्तु सन् १९३४ की घटनाने कम-से-कम मेरे लिये इस उलझनको सदाके लिये सुलझा दिया। मुझे उसने इतना प्रभावित किया कि मैं सदैव उसे याद रखता हूँ और प्रायः लोगोंको सुनाया करता हूँ।

बिहारप्रान्तके किसी गाँवमें एक बड़े धनी पुरुष रहते थे। धन-सम्पत्ति पर्याप्त थी परन्तु उनके सन्तान नहीं थी। दोनों स्त्री-पुरुष सदा इसी शोकसे व्याकुल रहते थे। घरमें कोई भाई-भतीजा भी न था जिसे प्रेम करके वे सन्तान-सुख भोगनेका प्रयत्न करते। इसके लिये उन्होंने बहुत प्रयत्न किया, देवी-देवताकी पूजा और यज्ञ आदि किये, परन्तु सब विफल हुए।

एक समय पति बैठकमें खाटपर बैठा था और स्त्री दरवाजेसे लगी किवाड़के पास बैठी थी। दोनों बातें कर रहे थे कि एक फकीर उधरसे आ निकला। पुरुषने प्रणाम किया और खाटसे उतरकर खड़ा हो गया। फकीर अंदर आकर बैठ गया। जब फकीरने भिक्षा पा ली तो पूछा-'बाबा! तुम इतने उदास क्यों हो, तुम्हें कौन चिन्ता खा रही है?' पुरुषकी आँखें डबडबा आयीं और उसने कहा कि-'सन्तानकी चिन्ता मुझे दिन-रात व्याकुल रखती है।' फकीरने इधर-उधर ताककर कहा कि 'यह कौन बड़ी बात है। तुम्हें मौला अवश्य पुत्र देंगे।' इसपर उसकी आँखें चमक उठीं और आशासे चेहरा खिल उठा। उसकी स्त्री किवाड़के बहुत नजदीक चली आयी। फकीरने कहा कि 'यदि तुम अथवा तुम्हारी स्त्री अपने पड़ोसीके बच्चेको मारकर उसके खूनसे नहा ले तो तुम्हें अवश्य पुत्र होगा।' फकीर इतना कहकर चलता हुआ।

पुरुष-स्त्री कुछ देरतक चुप रहे। पुरुषने मन-ही-मन कहा-'पुत्रके लिये दूसरेकी सन्तानकी हत्या! नहीं, ऐसा मुझसे नहीं हो सकता।'

स्त्रीका हृदय कितना कोमल और कितना कठोर होता है या हो सकता है, कहना कठिन है। जिसे बलवान् पुरुष नहीं कर सका उसे कोमलाङ्गी स्त्रीने कर दिया। और किसीको पता भी नहीं चला। ईश्वरकी लीला! दसवें महीने उस बाँझके सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। [यहाँ यह नहीं मानना चाहिये कि पड़ोसीके पुत्रको मारनेसे यह पुत्र हो गया। पुत्र तो हुआ पूर्वजन्मकृत कर्मके प्रारब्धसे। इस पापका फल तो आगे भोगना पड़ेगा] जब उस सन्तानहीन पुरुषने यह समाचार सुना तो वह सन्न हो गया, उसके रोंगटे खड़े हो गये और वह चिल्ला उठा-'अन्धेर है! अन्धेर है!!'

अब वह कुछ खब्ती-सा रहने लगा। घरके किसी काम-

काजसे उसका कोई मतलब न था। जो मिल जाता, खा लेता—जो दे दिया जाता, पी लेता। जीमें आता तो घरसे निकल पड़ता और कई रोज इधर-उधर घूमता रहता। फिर घर आ जाता और चल देता। परन्तु अक्सर यही कहा करता; 'अन्धेर है!' कोई पूछता कि इसका क्या अर्थ तो केवल यही कहता कि 'अन्धेर है।'

उधर उसकी स्त्री बहुत प्रसन्न थी। वह बड़े लाड़-प्यारसे बच्चेका लालन-पालन करने लगी। समय बीतते देर नहीं लगती। लड़का बड़ा हुआ, कुमार हुआ। उसकी शादी हुई, घरमें बहू आयी। एक-एक करके उसके चार पुत्र हुए। बुढ़ियाकी खुशीका पार नहीं था, अब उसी घरमें रात-दिन चहल-पहल रहने लगी। जो बुढ़िया एक पुत्रके लिये तरसती थी अब वह पुत्रके पुत्रोंको देख-देखकर आनन्दसे फूली न समाती थी।

सन् १९३४ के भूकम्पके बाद वह पागल बूढ़ा कई दिनोंके बाद बाहरसे घूमता हुआ अपने गाँवोंको लौटा। जब अपने मकानके पास पहुँचा तो क्या देखता है कि पूरा मकान बैठ गया और लोगोंसे मालूम हुआ कि उसका सारा परिवार उसीमें दबकर मर गया है। यह सब हाल देख-सुनकर वह पागल बूढ़ा बड़े जोरसे हँसा और अपने मकानकी परिक्रमा करने लगा तथा कहने लगा 'अन्धेर नहीं, देर है।' गाँवके बहुतसे लोगोंको इकट्ठा करके उसने अपना पूरा हाल कह सुनाया। उसने कहा कि जब हत्याके बदले पुत्र मिला तो मैंने समझा कि ईश्वरके दरबारमें भी अन्धेर है और इसीलिये मैं कहा करता था कि 'अन्धेर है' परन्तु आज मैं उस हत्यासे फूले-फले पूरे वृक्षका सहसा सर्वनाश देखकर बहुत ही प्रसन्न हूँ और अब मैं समझ गया कि ईश्वरके दरबारमें अन्धेर नहीं हो सकता, न्याय होनेमें भले ही देर हो, और इसीलिये अब कहता हूँ कि 'अन्धेर नहीं, देर है।'

(कल्याण वर्ष १५/७/१२३७, श्रीरामइकबालजी श्रीवास्तव)

******

पापका फल

सन् १९३६ की बात है कृषि-विभागकी ओरसे मैं ढकिया नामक गाँवमें रह रहा था। यह गाँव मुरादाबाद जिलेमें अमरोहासे मुरादाबाद जानेवाली सड़कपर स्थित है। गाँव जमींदारीकी हैसियतसे एक मुसल्मान, जो पीरजादे कहलाते हैं, उनके पास ठेकेपर था। इन्हीं पीरजादेकी एक कोठी गाँवके बाहर ठीक सड़कपर थी। यहाँपर हिंदूके नामपर एक सुनार था। नहीं तो, गाँवमें केवल मुसल्मान ही बसते हैं, जो अपनेको तुर्क कहते हैं।

इस गाँवमें जब मैं पहले-पहल गया तो सौभाग्यसे एक हिंदू नौकर लेता गया था अन्यथा पानी आदिके लिये जो तकलीफ होती, उसे मैं ही जानता। कोठीके चारों ओर एक लंबा-चौड़ा बाड़ा भी था। इसमें माली भी मुसल्मान ही था। वहाँ अपना पूरा प्रबन्ध कर लेनेपर मैंने अपनी पत्नीको भी बुला लिया।

इस गाँवके मुसल्मान अपनेको बहुत हेकड़ समझते थे। ऐसी स्थितिमें, विशेषकर जब कि हिंदू मुस्लिमका प्रश्न जोरोंपर था, स्त्री-बच्चोंके साथ इस मुसल्मान प्रधान गाँवमें रहना कुछ अर्थ रखता था। इस समस्याको हल करनेका मेरे पास एक ही तरीका था और वह यह कि मैंने अपने मातहतोंमें एक मातहत ऐसा रख लिया जो स्वयं हेकड़ था। वह रामपुरका पठान था। अपने ऐसे-वैसे मौकेके लिये उसका रखना मैंने अच्छा समझा। मैंने उसे रहनेके लिये बाहरकी एक कोठरी दे दी। उसने मुझे आश्वासन दिया कि जबतक रामपुरके पठानोंकी एक हड्डी भी बची रहेगी, तबतक आपके ऊपर किसी तरहकी आँच नहीं आ सकेगी। हुआ भी वैसा ही।

वह मेरे कामके लिये अपने सुख तथा अपनी मर्यादाकी भी परवा नहीं करता था। मैं यदि उससे आधी रातमें भी कहता कि 'खाँ साहब! आपको अभी अमुक गाँवमें जाना है और वहाँसे अमुक दवा या अमुक चीज लानी है।' बस, वह तुरंत तैयार हो जाता था। बहुत आज्ञाकारी था वह।

कुछ दिनोंके बाद मेरी पत्नीने एक पुत्ररत्न प्रसव किया। यह बच्चा अत्यन्त सुन्दर था। उसकी सुन्दरताकी प्रशंसा मैं नहीं कर सकता। मैं दौरेसे आता और उसे अपने नौकरकी गोदमें खेलता

हुआ देखता तो तुरंत पुकार उठता 'कौशल!' वह मुझे देखते ही किलकारी मारकर हँसने लगता। यह बच्चा मुझे कितना प्रिय था—कैसे बताऊँ? उसकी सलोनी सूरत आज भी मेरी आँखोंके सामने है। यह घटना अपने उसी कौशल-प्यारेकी स्मृतिमें लिखी जा रही है। अब वह इस नश्वर जगत्में नहीं है। परमात्मा उसकी आत्माको शान्ति दें।

एक दिनकी बात है। मेरा दुर्भाग्य प्रबल था। मेरे एक मुसल्मान मित्र आये। वे मेरे यहाँ पहले-पहल आये थे। इसलिये उनकी अच्छी मेहमानदारीके लिये मैंने कुछ रुपये खाँ साहबको दे दिये और ताकीद कर दी कि इनके लिये आप जो कुछ अच्छे-से-अच्छा खाना तैयार कर सकें, कर दें। उसने झटपट तैयारी कर डाली।

मैंने देखा, वह मुर्गेका एक चूजा भी ले आया था। उस समय मुझे बहुत क्रोध आया, परन्तु मैं कुछ बोल न सका। मेहमानदारीके ख्यालसे मैंने चुप रहना ही अच्छा समझा। यों तो मैंने उसे पहलेसे ऐसी चीजें अपने यहाँ बनानेके लिये मना कर रक्खा था और वह मेरे डरसे बनाता भी नहीं था, परन्तु उस दिन मेहमानदारीके लिये उसने ऐसा कर लिया। मैं खड़ा-खड़ा देख रहा था। उसने निर्दोष मुर्गेके बच्चेपर अपनी तेज छुरी फेर दी। उसकी गर्दन एक ओर गिरी और धड़ दूसरी ओर फड़फड़ाने लगा, और कुछ देरतक फड़फड़ाता ही रहा। यह करुण दृश्य मुझसे देखा नहीं गया, मैं वहाँसे हट गया—कुछ समय बाद मैं यह बात भूल गया।

एक मास भी बीता नहीं होगा कि सहसा मेरा कौशल बीमार पड़ गया। हँसते-खेलते बालककी अस्वस्थतासे हमलोग घबरा गये। बेचारे खाँ साहब उसकी दवाके लिये रात-दिन दौड़ते फिरे। कभी किसी हकीमके पास जाते, कभी किसी डाक्टरके पास। तात्पर्य यह कि प्रत्येक सम्भव उपचार किया गया, परन्तु उससे उसे कोई लाभ नहीं हुआ। दो दिनकी ही बीमारीमें मेरा प्यारा रत्न कौशल चल बसा। घरमें रोना-चिल्लाना मच गया। जीवनमें पहला मौका था। जब मैं अपनेको सँभाल न सका, फूटकर रो पड़ा। बच्चेकी तरह खूब रोया। रोते-रोते हिचकी बँध गयी।

कौशलकी माताका क्या कहना? वह अपने पुत्रके वियोगमें अत्यन्त आकुल रहती थीं। विवश होकर उनके कहनेके अनुसार मैं उन्हें घर पहुँचा आया।

एक दिनकी बात है, रातके तीन या चार बजे होंगे—मैं सो रहा था। स्वप्नमें जैसे मुझसे कोई कह रहा था, 'उस दिन यदि तूने मुर्गेके बच्चेकी जान न ली होती तो तेरा प्यारा बच्चा कौशल नहीं मरता।' अचकचाकर मैं जाग गया। उस समय मुर्गेके बच्चेका फड़फड़ाता हुआ धड़ मेरी आँखोंके सामने दिखायी दिया। मैं जिधर भी दृष्टि घुमाता, वही मुर्गेका बेगुनाह बच्चा फड़फड़ाता हुआ दीखता। उसी समय कौशलको अपनी गोदसे छीने जानेकी बाद भी याद करता। यह था मेरे पापका फल।

उपर्युक्त घटनाको पढ़कर जगत् भले ही कहे कि मेरा हृदय निर्बल है या था। परन्तु मैं यह माननेको लिये तैयार नहीं हूँ कि किसी चोरको अपने अपराधकी सजा नहीं भोगनी पड़े, जबतक कि उसे कोई पुराना पुण्यकर्म हलका न कर दे।

इस घटनाके बाद मैंने शपथ कर ली कि अब अपने द्वारा ऐसा पाप कभी नहीं होने दूँगा। और परम पिता परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि मेरे जीवनमें ऐसा पाप बननेका अवसर ही न आने दे।

(कल्याण वर्ष २०/७/१०४८, श्रीआनन्दजी पाण्डेय)

******

ईमानदार मजदूर लड़का

किसी अमीरके घरमें एक दिन धुआँसी साफ करनेके लिये एक मजदूर लड़केको बुलाया गया। लड़का सफाई करने लगा, वह जिस कमरेका धुआँसा उतार रहा था, उसमें तरह-तरहकी सुन्दर चीजें सजायी रक्खी थीं। उन्हें देखनेमें उसे बड़ा मजा आ रहा था। उस समय वह अकेला ही था, इसलिये प्रत्येक चीजको उठा-उठाकर देखने लगा। इतनेमें उसे एक बड़ी सुन्दर हीरे-मोतियोंसे जड़ी हुई सोनेकी घड़ी दिखायी दी। वह घड़ीको हाथमें उठाकर देखने लगा। घड़ीकी सुघड़तापर उसका मन लुभा गया। उसने कहा—

'काश! ऐसी घड़ी मेरे पास होती।' उसके मनमें पाप आ गया, उसने घड़ी चुरानेका मन किया। परन्तु दूसरे ही क्षण वह घबड़ाकर जोरसे चिल्ला उठा-'अरे रे! मेरे मनमें यह कितना बड़ा पाप आ गया। यदि मैं चोरी करके पकड़ा जाऊँगा तो मेरी कितनी दुर्दशा होगी। सरकार सजा देगी। जेलखाने जाकर पत्थर फोड़ने पड़ेंगे और कोल्हूमें जुतना पड़ेगा। ईमान तो गया ही। फिर कौन मेरा विश्वास करके अपने घरमें घुसने देगा? यदि मनुष्यके हाथसे न भी पकड़ा गया तो भी क्या हुआ। ईश्वरके हाथसे तो कभी छूट नहीं सकता। मा बार-बार कहा करती है कि हम ईश्वरको नहीं देखते, पर ईश्वर हमको सदा देखता रहता है। उससे छिपाकर हम कोई काम कर ही नहीं सकते। वह घने अँधेरेमें भी देख पाता है। यहाँतक कि मनके अंदरकी बातको भी देखता रहता है।'

यों कहते-कहते लड़केका चेहरा उतर गया, उसका शरीर पसीने-पसीने हो गया और वह काँपने लगा। घड़ीको यथास्थान रखकर वह फिर जोरसे कहने लगा-'लालच बहुत ही बुरी चीज है। मनुष्य इस लालचमें फँसकर ही चोरी करता है। भला, मुझे धनियोंकी घड़ीसे क्या मतलब था? लालचने ही मेरे मनको बिगाड़ा। पर दयालु भगवान्ने मुझको बचा लिया, जो माकी बात मुझे वक्तपर याद आ गयी। अब मैं कभी लालचमें नहीं पड़ूँगा। सचमुच चोरी करके अमीर बननेकी अपेक्षा धर्मपर चलकर गरीब रहना बहुत अच्छा है। चोरी करनेवाला कभी निर्भय होकर सुखकी नींद नहीं सो सकता, चाहे वह कितना ही अमीर क्यों हो। अरे! चोरीका मन होनेका यह फल है कि मुझे इतना दुःख हो रहा है। कहीं मैं चोरी कर लेता तब तो पता नहीं मुझे कितना भयानक कष्ट उठाना और दुःख झेलना पड़ता।' इतना कहकर लड़का शान्तचित्तसे अपने काममें लग गया।

घरकी मालकिन बगलके कमरेसे सब कुछ देख-सुन रही थी। वह अब तुरंत लड़केके पास आ गयी और पूछने लगी- 'लड़के! तूने घड़ी ली क्यों नहीं?' लड़का इतना सुनते ही सुन्न हो गया। काटो तो खून नहीं। वह सिर थामकर दीनभावसे जमीनपर

बैठ गया और काँपने लगा। उसकी जबान बंद हो गयी और आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली।

लड़केकी दीन दशा देखकर मालकिनको दया आ गयी। उसने बड़े मीठे स्वरोंमें कहा—'बेटा! घबड़ा मत। मैंने तेरी सभी बातें सुनी हैं। तू गरीब होकर भी इतना भला, ईमानदार और धर्म तथा ईश्वरसे डरनेवाला है यह देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई है। तेरी माँको धन्य है जो उसने तुझको ऐसी अच्छी सीख दी। तुझपर ईश्वरकी बड़ी ही कृपा है जो उसने तुझको लालचमें न फँसनेकी ताकत दी। बेटा! सचेत रहना। कभी जीको लालचमें न फँसने देना। मैं तेरे खाने-पीनेका और किताबोंका प्रबन्ध कर देती हूँ। तू कलसे पाठशालामें जाकर पढ़ना शुरू कर दे। भगवान् तेरा मंगल करेंगे।' इतना कहकर मालकिनने उसे अपने हाथोंसे उठाकर हृदयसे लगा लिया और अपने आँचलसे उसके आँसू पोंछ दिये। फिर उसके हाथमें कुछ रुपये देकर कहा—'तेरी इस ईमानदारीका कुछ तो इनाम तुझे अभी मिलना चाहिये न।'

मालकिनके स्नेहभरे शब्दोंसे लड़केका हृदय खुशीके मारे उछल उठा। उसके मुखपर कृतज्ञताभरी प्रसन्नता छा गयी। वह दूसरे ही दिनसे पाठशालामें जाने लगा और अपने परिश्रम तथा सत्यके फलस्वरूप आगे चलकर बड़ा विद्वान् और प्रतिष्ठित पुरुष बना!

(कल्याण वर्ष २०/८/११२३)

******

जाको राखै साइयाँ मार सकै ना कोय

रामतारण चक्रवर्ती नामके एक सज्जन कलकत्तेमें किसी व्यापारी फार्ममें काम करते थे। उनके घरमें स्त्री और दस-बारह वर्षकी एक लड़कीके सिवा दूसरा कोई न था। एक दिन कार्यालयसे लौटनेपर उन्होंने देखा कि उनकी स्त्री और लड़की बड़े आनन्दसे एक पत्र पढ़ रही हैं। उन्होंने पूछा, 'किसका पत्र है, क्या बात है?' लड़की बोली—'क्या आपने नहीं सुना? छोटे मामाका विवाह है, उन्होंने आपको और हमलोगोंको देश जानेके लिये विशेष आग्रहपूर्वक पत्र लिखा है।' रामतारण बाबू प्रसन्न नेत्रोंसे अपनी स्त्रीकी ओर देखकर बोले—

'अच्छी बात है; चलो, इतने दिनों बाद तुम्हारे छोटे भाईकी एक व्यवस्था तो हुई। जरा पत्र तो देखूँ!' इतना कहकर वे पत्र पढ़ने लगे।

विवाहका दिन एक सप्ताह रह गया। रामतारण बाबू मालिकसे कुछ दिनोंके लिये छुट्टी लेकर देश जानेकी तैयारी करने लगे। धीरे-धीरे यात्राका दिन आ गया। विवाहोत्सवमे जानेके लिये उन्होंने सारे गहने तथा अच्छे-अच्छे कपड़े साथ ले लिये। हबड़ा स्टेशनपर जाकर यथासमय ट्रेनपर सवार होकर वे देशकी ओर चले। जिस स्टेशनपर उन्हें उतरना था, वहाँ गाड़ी दोपहरको पहुँची। स्टेशनसे उनकी ससुराल ११ मील दूर थी और बैलगाड़ीके सिवा वहाँ जानेके लिये दूसरी कोई सवारी न थी। रामतारण बाबू एक बैलगाड़ी भाड़ा करके भगवान्का नाम लेकर चल पड़े। गाड़ीवान उनके साथ तरह-तरहकी बातें करने लगा और सरलहृदय रामतारण बाबूने भी निष्कपट भावसे सारी बातें उससे कह डालीं। यहाँतक कि वे विवाहमें जा रहे हैं तथा साथमें गहने-कपड़े तथा रुपये-पैसे हैं—यह बात भी उनके मुँहसे निकल गयी। चक्रवर्ती महाशय यदि इन बातोंके बीचमें गाड़ीवानके मुँहकी ओर विशेष ध्यान देकर देख लेते तो उन्हें मालूम हो जाता कि उसके दोनों नेत्र कितने कुटिल और हिंस्रभावसे भर गये हैं। परन्तु अत्यन्त सरलहृदय होनेके कारण वे कुछ भी ताड़ न सके।

बैलगाड़ी धीरे-धीरे एक वनके बाद दूसरे वन, एक मैदानके बाद दूसरे मैदानको पार करती हुई चली। रामतारण बाबू अपनी स्त्री और लड़कीको नाना प्रकारके प्राकृतिक दृश्य दिखलाते हुए प्रसन्न चित्तसे विभिन्न प्रकारकी बातें करते रहे। इतनेमें गाड़ीवानने एक नदीके किनारे पहुँचकर गाड़ीको रोक दिया। नदीमें उस समय बड़ी भयानक धारा बह रही थी। गाड़ीसे पार करनेपर विपत्तिकी सम्भावना थी। नदी उतनी गहरी नहीं थी, लेकिन बहुत चौड़ी थी। अतएव चक्रवर्ती महाशय बहुत डर गये। गाड़ीवान चक्रवर्ती महाशयकी ओर देखकर कहा—'बाबूजी! समीप ही हमारा परिचित गाँव है। हम वहाँसे किसीको बुला लाते हैं। एक और आदमीकी सहायता मिलनेसे नदी पार होनेमें विशेष कष्ट न होगा।' चक्रवर्तीजी उसीमें

राजी हो गये। तब गाड़ीवानने उन लोगोंको गाड़ीसे उतरनेके लिये कहकर बैलोंको गाड़ीसे खोल दिया। बैल छुट्टी पाकर आनन्दसे नदीके किनारे घास चरने लगे।

लगभग आध घंटेके बाद गाड़ीवान एक दूसरे आदमीको साथ लेकर पहुँचा। उस दूसरे आदमीकी यमदूतके समान मुखाकृति तथा हिंसा-भरी क्रूरदृष्टि देखकर चक्रवर्तीजी मन-ही-मन डरने लगे; परन्तु उनके मुँहसे कोई बात न निकल सकी। गाड़ीवान और उसका साथी दोनों चक्रवर्तीजीके समीप आकर सामने खड़े हो गये और तड़ककर बोले कि तुम्हारे पास जो कुछ है, सो तुरंत दे दो; नहीं तो इस छुरेसे तुम्हारा काम तमाम करके नदीमें डुबो देंगे। इतना कहकर दोनोंने बड़ी तेज सान धराये हुए छुरे निकाल लिये। चक्रवर्ती महाशय, उनकी स्त्री और लड़की-सब डरकर चिल्ला उठे। दोनों डाकू छुरे हाथमें लिये उनकी ओर बढ़े। चक्रवर्ती महाशय बहुत अनुनय-विनय करने लगे और प्राण-रक्षाके लिये दोनों डाकुओंके चरणोंपर गिर पड़े। डाकुओंने कहा-'तुम्हारे पास जो कुछ गहने-कपड़े और रुपये-पैसे हैं, सब अभी हमारे हवाले कर दो। चक्रवर्तीजीने कोई उपाय न देखकर सारे रुपये तथा गहने दोनों डाकुओंको दे दिये। धन हथियानेके बाद दोनों डाकू बोले कि यदि तुम बचे रहोगे तो पुलिसमें खबर देकर हमको पकड़वा दोगे। अतएव तुमलोगोंको मारकर हम इस नदीमें डुबा देंगे।

इतना कहकर दोनों डाकू छुरे लिये उनकी ओर बढ़े। चक्रवर्तीजी और उनकी लड़की प्राणके भयसे भीत होकर रोते-रोते विपद्-विदारण भगवान् मधुसूदनको जोर-जोरसे पुकारने लगे। डाकू छुरे भोंक ही रहे थे कि अचानक एक अघटन घटना घटी।

दोनों बैल समीप ही घास चर रहे थे। कोई नहीं कह सकता कि क्या हुआ, पर दोनों बैल सींग नीचे करके आकर बिजलीकी तरह टूट पड़े और दोनों डाकुओंको सींगोंसे मारने लगे। सींगोंकी भयानक चोटसे दोनों डाकू घायल होकर दूर गिर पड़े। जहाँ-जहाँ सींग लगे थे, वहाँ-वहाँसे बहुत जोरसे खून बहने लगा। वे वेदनासे छटपटाते हुए मिट्टीमें लोटने लगे। सहसा उनकी स्त्री और लड़की विस्मयसे किंकर्तव्यविमूढ़ होकर पत्थरके समान स्तब्ध

रह गये। इसी बीच उसी मार्गसे दूसरे राही आ निकले। उन्होंने इस भीषण दृश्यको देखकर चक्रवर्ती महाशयसे पूछ-ताछ की। चक्रवर्तीजीने निष्कपट भावसे सारी बातें कह डालीं। उन राहियोंमें एक आदमी चौकीदार था। वह उसी समय उन दोनों डाकुओंको बाँधकर थानेमें खबर देने चला। चक्रवर्तीजीने दूसरे राहियोंकी सहायतासे एक दूसरी बैलगाड़ी ठीक करके अपने गन्तव्य स्थानकी राह ली।

अदालतमें मुकदमा चलनेपर दोनों डाकुओंको कठोर कारागारका दण्ड मिला। चक्रवर्तीजीने बहुत प्रयत्न करके उन दोनों बैलोंको खरीदकर अपने घरमें रक्खा और उनकी सेवा की। इसके बाद जब कभी भी कोई उस घटनाके विषयमें उनसे पूछता तो वे भक्तिसे गद्गदचित्त होकर कहते कि 'कौन कहता है भगवान् जीवकी व्याकुल प्रार्थना नहीं सुनते? नहीं तो, उनके बिना इन दो अबोध प्राणियों (बैलों) को दोनों डाकुओंका दमन करनेके लिये किसने प्रेरित किया? ये यन्त्र हैं, वे यन्त्री हैं'-इतना कहकर चक्रवर्ती महाशय भावावेशमें रो पड़ते!

(कल्याण वर्ष २०/६/९८१, श्रीयुत कृष्णधन)

******

सती

प्राचीन कालमें भारतकी पतिप्राणा सती स्त्रियाँ स्वेच्छासे स्वामीके साथ सहमरणका वरण करती थीं। आगे चलकर यह प्रथा-सी हो गयी और कहते हैं-बिना इच्छाके भी स्वार्थीलोग स्त्रियोंको मरे हुए स्वामीकी लाशके साथ जबरदस्ती जलाने लगे, जो वस्तुतः बड़ा पाप था। और इसीलिये सहृदय पुरुषोंकी चेष्टासे सती-प्रथाका निषेधक कानून बना। तबसे सतीप्रथा बंद हो गयी। परन्तु बीच-बीचमें ऐसे उदाहरण मिलते रहते हैं कि पतिव्रता स्त्री स्वेच्छासे सती हो जाती हैं और कहीं-कहीं तो बहुत चमत्कारकी बातें भी सुनायी देती हैं। उनमें कुछ अतिशयोक्ति होनेपर भी इतना तो निश्चय ही है कि पतिके साथ पतिलोक जानेमें इन देवियोंका दृढ़ विश्वास होता है और उस विश्वासके बलपर ही वे हँसते-हँसते प्राणोंको न्योछावर कर देती हैं। हालमें अलवर-राज्यमें ऐसी दो घटनाएँ हुई हैं। घटनाएँ,

जहाँतक पता लगा है, सत्य हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिये संक्षेपमें नीचे उन घटनाओंका उल्लेख किया जाता है। देखा-देखी सती होनेका साहस करना मूर्खता और जबरदस्ती सती करना पाप है; परन्तु जो वास्तवमें सती होनेके लिये मनके बलपर ही दृढ़प्रतिज्ञ हैं, उन्हें कौन रोक सकता है।

(१)

अलवर-राज्यमें लक्ष्मणगढ़ निजामतके अन्तर्गत मालाटोला ग्राममें श्रीमंशारामजीके पुत्र प्रभुदयालजी अग्रवालकी ता० १५-३-४६ को प्रात:काल मृत्यु हो गयी। प्रभुदयालकी उम्र लगभग २०-२२ सालकी थी। उनकी पत्नी श्रीकौशल्या देवीकी उम्र १७-१८ सालकी थी। कहते हैं कि प्रभुदयालने एक सप्ताह पहले ही अपने मरणकी तिथि तथा समय अपनी पत्नीको बता दिया था और पत्नी कौशल्याने सती होनेका अपना निश्चय पतिसे कह दिया था। पतिकी मृत्यु होनेपर कौशल्या देवी शृंगार करके रथीके साथ जानेको तैयार हो गयी। वृद्ध नंबरदारने रोका-डाँटा, परन्तु कौशल्याके क्रोधभरी दृष्टि देखनेपर वह चुप हो गया। बात-की-बातमें सब तरफ बात फैल गयी और हजारों नर-नारी इकट्ठे हो गये। रथीका जुलूस चला। हरिकीर्तन हो रहा था। रथीके हाथ लगाये कौशल्या देवी भी हरिकीर्तन करती हुई जा रही थी।

श्मशानमें चिता तैयार होनेपर कौशल्या उसपर आसन लगाकर बैठ गयी और पतिको गोदमें लिटाकर उसका मस्तक एक हाथसे थाम लिया। दूसरे हाथसे अपनी शृंगारकी चीजें उतार-उतारकर बाँटने लगी। कहते हैं कि चिताके जलनेपर जितना-जितना अङ्ग कौशल्याका जलता था, केवल उतना-उतना ही उसका कपड़ा जलता था। वह कण्ठ जलनेतक बराबर बातें कर रही थी। उस समय उसका चेहरा चमक रहा था। शृंगारकी सब चीजें दे दी थीं; परन्तु माथेका बोर, गलेका हार, हाथकी पहुँची-बँगड़ी तथा पैरोंके कड़े जो नहीं खुल सके थे, उनको रक्खा था। सतीने कुछ भविष्यवाणी की और भगवान्‌का नाम लेती हुई पतिके साथ पतिलोक सिधार गयी। सतीके स्थानपर मठ बनानेका निश्चय हुआ है। लोगोंमें बड़ा उत्साह है।

(कल्याण वर्ष २०/९/११८४, वैद्यभूषण लाला भँवरलालजी, अलवर)

******

(२)

अलवर-राज्यमें नारायणपुर नामक एक छोटा-सा गाँव है। इसमें ब्राह्मणोंके काफी घर हैं। इसी गाँवमें पं० ज्वालाप्रसादजी जोशीका बैशाख कृ० ४ को सायङ्कालके समय देहान्त हो गया। जोशीजीकी उम्र लगभग २६ सालकी थी और वे जयपुर-रियासतके भावरू गाँवसे उठकर यहाँ आ बसे थे। इसलिये भावरूवाले कहलाते थे। इनकी सहृदया पत्नी बादामी देवीकी उम्र लगभग १८ सालकी थी। पति कुछ समयसे बीमार थे और लगभग दो महीनेसे दूधपर रहते थे। इसलिये बादामी देवी भी दूध पीकर ही रहने लगी थी। पतिकी मृत्यु होनेपर घरमें जहाँ सब लोग रोने लगे, वहाँ बादामी हँसती रही और उसने लोगोंसे रोना बंद करके हरिकीर्तन करनेको कहा। खबर पाकर बादामीके पिता पं० शिवप्रसादजी तुरंत आ गये थे।

पालकीमें मृत जोशीजीका शव रक्खा गया और बादामी देवी शृंगार करके पतिको गोदीमें लेकर बैठ गयी। श्मशानतक हरिकीर्तन होता गया। कहते हैं चितामें बैठनेके बाद जब लोगोंने आग नहीं दी, तब देवीने पासहीसे हवनकी ओर देखा कि त्यों ही उसकी आग चितामें आकर लग गयी। कहते हैं कि जितना शरीर जलता था, उतनी ही साड़ी भी जलती थी। वह बराबर हँसती रही और गीताका पाठ करती रही।

श्मशानमें सती देवीके स्थानपर लोगोंका ताँता लग रहा है और हजारों आदमी यहाँ सदा मौजूद रहते हैं। देवीके स्मारकके लिये बहुत धन एकत्र हो गया है।

(कल्याण वर्ष २०/९/११८५, श्रीशान्तिस्वरूपजी शर्मा)

******

कैदी लड़केकी दया

एक जवान लड़केको किसी अपराधमें कैदकी सजा हो गयी थी। एक बार अवसर पाकर वह जेलसे निकल भागा। बड़ी भूख लगी थी, इसलिये समीपके गाँवमें उसने एक झोंपड़ीमें जाकर कुछ खानेको माँगा। झोंपड़ीमें एक अत्यन्त गरीब किसान-परिवार रहता था। किसानने कहा—'भैया! हमलोगोंके पास कुछ भी नहीं

है, जो हम तुमको दें। इस साल तो हम लगान भी नहीं चुका सके हैं। इससे मालूम होता है दो ही चार दिनोंमें यह जरा-सी जमीन और झोंपड़ी भी कुर्क हो जायेगी। फिर क्या होगा, भगवान् ही जानें।' किसानकी हालत सुनकर लड़का अपनी भूखको भूल गया और उसे बड़ी दया आ गयी; उसने कहा—'देखो, मैं अभी जेलसे भागकर आया हूँ, तुम मुझे पकड़कर पुलिसको सौंप दो तो तुम्हें पचास रुपये इनाम मिल जायँगे। बताओ तो, तुम्हें लगानके कितने रुपये देने हैं?' किसानने कहा—'भैया! चालीस रुपये हैं; परन्तु तुम्हें कैसे पकड़वा दूँ।' लड़केने कहा, 'बस, चालीस रुपये हैं तब काम हो गया; जल्दी करो।'

किसानने बहुत नाहीं की; परन्तु जवान लड़केके हठसे किसानको पचास रुपये मिल गये। लड़केपर जेलसे भागनेके अभियोगमें मुकदमा चला। प्रमाणके लिये गवाहके रूपमें किसानको बुलाया गया। 'कैदीको तुमने कैसे पकड़ा?' हाकिमके यह पूछनेपर किसानने सारी घटना अक्षरशः सुना दी। सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ और लोगोंने इकट्ठे करके किसानको पचास रुपये और दे दिये। हाकिमको लड़केकी दयालुतापर बड़ी प्रसन्नता हुई। पहलेके अपराधका पता लगाया गया तो मालूम हुआ कि बहुत ही मामूली अपराधपर उसे सजा हो गयी थी। हाकिमकी सिफारिशपर सरकारने लड़केको बिल्कुल छोड़ दिया। और उसकी बड़ी तारीफ तथा ख्याति हुई। पुण्य तो हुआ ही।

(कल्याण वर्ष २०/९/११९२)

******

स्वयं पालन करनेवाला ही उपदेश देनेका अधिकारी है

एक ब्राह्मणने अपने आठ वर्षके पुत्रको एक महात्माके पास ले जाकर उनसे कहा—'महाराजजी! यह लड़का रोज चार पैसेका गुड़ खा जाता है और न दें तो लड़ाई-झगड़ा करता है। कृपया आप कोई उपाय बताइये।' महात्माने कहा—'एक पखवाड़ेके बाद

इसको मेरे पास लाना, तब उपाय बताऊँगा।' ब्राह्मण पन्द्रह दिनोंके बाद बालकको लेकर फिर महात्माके पास पहुँचा। महात्माने बच्चेका हाथ पकड़कर बड़े मीठे शब्दोंमें कहा—'बेटा! देख, अब कभी गुड़ न खाना भला, और लड़ना भी मत।' इसके बाद उसकी पीठपर थपकी देकर तथा बड़े प्यारसे उसके साथ बातचीत करके महात्माने उनको विदा किया। उसी दिनसे बालकने गुड़ खाना और लड़ना बिल्कुल छोड़ दिया।

कुछ दिनोंके बाद ब्राह्मणने महात्माके पास जाकर इसकी सूचना दी और बड़े आग्रहसे पूछा—'महाराजजी! आपके एक बारके उपदेशने इतना जादूका काम किया कि कुछ कहा नहीं जाता; फिर आपने उसी दिन उपदेश न देकर पंद्रह दिनोंके बाद क्यों बुलाया? महाराजजी! आप उचित समझें तो इसका रहस्य बतानेकी कृपा करें।' महात्माने हँसकर कहा—'भाई! जो मनुष्य स्वयं संयम-नियमका पालन नहीं करता, वह दूसरोंको संयम-नियमके उपदेश देनेका अधिकार नहीं रखता। उस उपदेशमें बल ही नहीं रहता। मैं इस बच्चेकी तरह गुड़के लिये रोता और लड़ता तो नहीं था, परन्तु मैं भोजनके साथ प्रतिदिन गुड़ खाया करता था। इस आदतके छोड़ देनेपर मनमें कितनी इच्छा होती है, इस बातकी मैंने स्वयं एक पखवाड़ेतक परीक्षा की। और जब मेरा गुड़ न खानेका अभ्यास दृढ़ हो गया, तब मैंने यह समझा कि अब मैं पूरे मनोबलके साथ दृढ़तापूर्वक तुम्हारे लड़केको गुड़ न खानेके लिये कहनेका अधिकारी हो गया हूँ।'

महात्माकी बातको सुनकर ब्राह्मण लज्जित हो गया और उसने भी उस दिनसे गुड़ खाना छोड़ दिया। दृढ़ता, त्याग, संयम और तदनुकूल आचरण—ये चारों जहाँ एकत्र होते हैं, वहीं सफलता होती है।

(कल्याण वर्ष २०/९/१९८६)

******

विश्वासका फल

एक सच्चा भक्त था, पर था बहुत ही सीधा। उसे छल-कपटका पता नहीं था। वह हृदयसे चाहता था कि मुझे शीघ्र भगवान्‌के दर्शन हों। दर्शनके लिये वह दिन-रात छटपटाता रहता; और जो मिलता, उसीसे उपाय पूछता। एक ठगको उसकी इस दशाका पता लग गया। वह साधुका वेष बनाकर आया और उससे बोला-'मैं तुम्हें आज ही भगवान्‌के दर्शन करा दूँगा। तुम अपना सारा सामान बेचकर मेरे साथ जंगलमें चलो।' भक्त निष्कपट सरल हृदयका था और दर्शनकी चाहसे व्याकुल था। उसको बड़ी खुशी हुई और उसने उसी समय जो कुछ भी दाम मिले, उसीपर अपना सारा सामान बेच दिया और रुपये साथ लेकर वह ठगके साथ चल दिया। रास्तेमें एक कुआँ मिला। ठगने कहा, 'बस, इस कुएँमें भगवान्‌के दर्शन होंगे, तुम इन मायिक रुपयोंको रख दो और कुएँमें झाँको।' सरल विश्वासी भक्तने ऐसा ही किया। वह जब कुएँमें झाँकने लगा, तब ठगने एक धक्का दे दिया, जिससे वह तुरंत कुएँमें गिर पड़ा। भगवत्कृपासे उसको जरा भी चोट नहीं लगी और वहाँ साक्षात् भगवान्‌के दर्शन हो गये। वह कृतार्थ हो गया।

ठग रुपये लेकर चंपत हो गया था। भगवान्‌ने सिपाहीका वेष धरकर उसे पकड़ लिया और उसी कुएँपर लाकर अंदर पड़े हुए भक्तसे सारा हाल कहा, और भक्तको कुएँसे निकालना चाहा। भक्त उस समय भगवान्‌की रूपमाधुरीके सरस रसपानमें मत्त था; उसने कहा-'आप मुझको इस समय न छेड़िये। ये ठग हों या कोई, मेरे तो गुरु हैं। सचमुच ही इन्होंने मेरी मायिक पूँजीको हरकर मुझको श्रीहरिके दर्शन कराये हैं। अतएव आप इन्हें छोड़ दीजिये।' भक्तकी इस बातको सुनकर और सरल विश्वासका ऐसा चमत्कार देखकर ठगके मनमें आया कि सचमुच इसको ठगकर मैं ही ठगा गया हूँ। उसे अपने कृत्यपर बड़ी ग्लानि हुई और उसका हृदय पलट गया। भक्त और भगवान्‌के संगका प्रभाव भी था ही। वह भी उसी दिनसे अपना दुष्कृत्य छोड़कर भगवान्‌का सच्चा भक्त बन गया।

(कल्याण वर्ष २०/९/११८६)

******

महात्माका जीवन-चरित्र कैसे लिखना चाहिये?

एक बहुत बड़े विद्वान् एक महात्माके अनन्य भक्त थे। किसी मित्रने उनसे पूछा—'पण्डितजी! महात्माजी महान् योगी और पहुँचे हुए महापुरुष थे। उनके जीवनकी बहुत-सी छिपी हुई बातोंको भी आप जानते हैं, फिर आप उनका जीवन-चरित्र क्यों नहीं लिखते?' पण्डितजीने बड़ी गम्भीरताके साथ कहा—'मैं महात्माजीका जीवन-चरित्र लिखनेके प्रयत्नमें लग रहा हूँ, मैंने कुछ आरम्भ भी कर दिया है।' उस मित्रने फिर आतुरताके साथ पूछा—'जीवन-चरित्र कबतक प्रकाशित हो जायगा, पण्डितजी?' यह सुनकर पण्डितजीने मुसकराकर कहा—'आपने शायद यह समझा होगा कि मैं महात्माजीका जीवन-चरित्र कागजोंपर लिख रहा हूँ। ऐसी बात नहीं है। आप भूलते हैं। मेरे विचारसे तो महात्माजीका जीवन-चरित्र मनुष्यके जीवनमें लिखा जाना चाहिये, और मैं तो यथासाध्य उनके जीवनको अपने जीवनमें उतारनेकी ही कोशिश कर रहा हूँ।'

(कल्याण वर्ष २०/९/११८७)

******

बुढ़ियाकी झोंपड़ी

किसी राजाने एक जगह अपना नया महल बनाया। उसके बगलमें एक गरीब बुढ़ियाकी झोंपड़ी थी। झोंपड़ीका धुआँ महलमें जाता था, इसलिये राजाने बुढ़ियाको अपनी झोंपड़ी वहाँसे हटा लेनेकी आज्ञा दी। राजाके सिपाहियोंने बुढ़ियासे झोंपड़ी हटा लेनेको कहा, पर उसने कोई उत्तर नहीं दिया। तब वे लोग उसे डाँट-डपटकर राजाके पास ले गये। राजाने पूछा—'बुढ़िया! तू झोंपड़ी हटा क्यों नहीं लेती? मेरा हुक्म क्यों अमान्य करती है?' बुढ़ियाने कहा—'महाराज! आपका हुक्म तो सिर माथेपर; पर आप क्षमा करें, मैं एक बात आपसे पूछती हूँ—'महाराज! मैं तो आपका इतना बड़ा महल और बाग-बगीचा सब देख सकती हूँ, पर आपकी आँखोंमें मेरी यह टूटी झोंपड़ी क्यों खटकती है? आप समर्थ हैं, गरीबकी झोंपड़ी उजड़वा सकते हैं; पर ऐसा करनेपर क्या आपके न्यायमें

कलङ्क नहीं लगेगा?''

बुढ़ियाकी बात सुनकर राजा लज्जित हो गये और बुढ़ियाको धन देकर उसे आदरपूर्वक लौटा दिया।

(कल्याण वर्ष २०/९/११८७)

******

भगवत्-प्रसाद

श्रीवृन्दावनधाम भगवान् श्रीकृष्णकी नित्य लीला स्थली है। यहाँ अप्रकटरूपसे तो आपकी लीलाएँ नित्य ही हुआ करती हैं आज भी हो रही हैं, उनमें प्रवेशाधिकार तो किन्हीं विरले कृपाप्राप्त भक्तोंको है, किन्तु जीवोंको—मायामुग्ध जीवोंको अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिये वे दयामय नन्दनन्दन कभी-कभी अपनी किसी लीलाका भावुक भक्तोंके हृदयमें एक नवीन उत्साह जाग उठता है और वे दूने वेगसे उनके पाद-पद्मोंकी ओर लपक जाते हैं।

कुछ अधिक दिन नहीं हुए, अभी-अभी चैत्र शुक्ल एकादशीकी घटना है। उस दिन श्रीवृन्दावनमें सभी मन्दिरोंमें बड़ा उत्सव मनाया जाता है। श्रीबाँकेविहारीजीका फूलडोल सजाया गया था। आज श्रीबाँकेविहारीजी मन्दिरके अन्त:पुरसे निकलकर जगमोहनमें आ विराजते हैं।

बड़ी सुन्दर झाँकी थी, दर्शनार्थियोंकी बेशुमार भीड़ थी। रोजकी अपेक्षा आज कुछ देरसे दर्शनके पट खुले थे और शयनका समय विलम्बका रक्खा गया था। रात्रिके ९ बजे थे। एक वृद्ध माता दर्शन कर रही थी। और धीरे-धीरे कोई पद गाती जा रही थी। इतनेमें ही किसीने मातासे कहा—'अरी मैया! तेरी गैया छूट गई; जाय वाकों बाँधि दै, नातर काऊकों मारैगी।' माताको अब गायकी चिन्ता हो गयी। वह श्रीविहारीजीसे क्षमा-प्रार्थना कर घर आयी और उसने अपनी गायकी देख-भाल की। कुछ समय बाद वह फिर दर्शन करने चली गयी। जब लौटकर आयी, तब ठीक बारह बजे थे।

माताने जाने क्यों तीन दिनसे कुछ नहीं खाया था। दिनके तीन बजे जब वंशीवट गयी थी, तभी थोड़े-से चावल अँगीठीपर

रख गयी थी कि आनेतक तैयार हो रहेंगे, आज इन्हींको खाकर रह जाऊँगी। उसे ध्यान नहीं था आज तो एकादशी है। लौटते समय एकाएक उसे ध्यान आया कि आज तो एकादशी है; उसने सोचा—लो, मैंने आज चावल खाया होता तो व्रत भङ्ग हो जाता। चलो, कोई बात नहीं; गायको खिला दूँगी। घर आकर उसने वे चावल गायको खिला दिये और आज भी भूखी रह गयी।

रात्रिको विहारीजीकी शयन-आरतीके बाद जब वह घर लौटकर आयी तब, उसके साथ उसके पास-पड़ोसकी और भी दो-चार माताएँ, बहनें थीं। सब आकर स्वाभाविक ही माताके आँगनमें खड़ी हो गयीं और कुछ बातें करने लगीं। उनके पीछे ही एक बालक, जो बड़ा सुकुमार कोई दस वर्षकी अवस्थाका होगा, आया। उसके शरीरपर सुन्दर पीताम्बर था। एक ही धोतीको आधी पहने हुए और आधीको गलेमें लपेटे था। पैरोंमें कड़ूलोंके सिवा और कोई आभूषण न था। रंग सुन्दर, साँवला और घुँघराली अलकावली मुखके चारों ओर छिटक रही थी। उसके हाथमें एक कुल्हड़ (सकोरा) था, जिसमें लगभग सवा सेर मिठाई और कुछ फल थे। बालकने आते ही कहा—'अरी मैया! तूँ याकूँ खाय लै, तोकूँ भूख लगी होयगी। बिहारीजीने तोकूँ प्रसाद भेज्यो है।'

बालककी तोतली और मधुर वाणी सुनते ही माताका मन प्रसन्न हो गया। उसने पूछा—'लाला! तू कौनको छोरा है? का नत्थीको है?'

बालकने कहा—'ना! मैं तब बताऊँगो, जब तूँ याकों खा लेयगी।'

माताने कहा—'अरे लाला! देख तो सही, मेरे हाथ गैयाकी सानीसों बिगर रहे हैं; तूँ याकूँ भीतर घर आवै। मैं हाथ धोकर माला फेर लूँगी, तब खा लऊँगी।'

बालकने कहा—'ना मैया! माला पीछे कीजों, पहलें याकूँ खाय लै।'

माताने फिर पूछा—'लाला! तू बतावै क्यों ना है, कौनको है?'

तब भी बालक चुप ही रहा। माताने उसे फिर संकेत किया, तब वह मिठाईका कुल्हड़ा भीतर एक ताकमें रख आया। चलते-चलते फिर कह गया—'देख मैया! वाकूँ खाय लीजों।'

माताने सोचा, मेरे बेटेने कहा था कि 'माँ! नत्थीका एक लड़का है; यदि वह किसी दिन हमारे यहाँ आवे तो उसे खाली हाथ मत लौटा देना, उसके हाथोंमें एक दो रुपया रख देना।' माताको अपने लड़केकी कही हुई बात याद आ गयी और वह घरसे शीघ्र दो रुपये निकालकर बालकको पुकारती हुई उसके पीछे चली, 'अरे लाला! सुन तौ सही; तू कौनको छोरा है, नैक बतावै च्यों ना?'

बालक रुका नहीं, उसने चलते-चलते कहा-'तू नत्थीसों पूछ लीजो, वो मोकूँ अच्छी तरियाँ जानै है।'

बालक दानगलीमें जाते हुए थोड़ी देर तो दिखायी दिया। फिर जाने कहाँ गया। माता लौट आयी। उसने सोचा-कोई बात नहीं, नत्थी सुबह आवेगा ही; उससे पूछ लेंगे और तभी ये रुपये भिजवा देंगे।

सुबह नत्थी आया। माताने कहा 'तेरो लाला बड़ी रातकों बिहारीजीको प्रसाद लैके आयो। तैनें भेज्यो हो का?'

नत्थीने भेजा हो तब न! उसने साफ नाहीं कर दी, अब माताको आश्चर्य हुआ। यह बालक किसका था, इसका पता लगाने शहरमें निकली। जहाँ-जहाँ उसका परिचय था और उस अवस्थाके बालक थे, उसने सब जगह पूछा; पर कहीं पता न चला। सबने यही कहा-अरी बावरी! आधी रातको तेरी दानगलीमें कौन अपना बालक भेजेगा। तू अब भी नहीं समझ पायी वह कौन था?

बात धीरे-धीरे सब ओर फैल गयी। जो पड़ोसिनें माताके साथ आयी थीं, उन्होंने कहा कि 'हमने बालककी मीठी तोतली बोली तो अवश्य सुनी; पर उसे देखा नहीं कैसा था, यद्यपि हम सभी यहाँ उपस्थित थीं।'

बालकके दिये हुए प्रसादमेंसे फल तो माताने रात्रिको ही खा लिये थे। मिठाई रक्खी थी। उसे तो लोगोंने लिया ही पर वह मिट्टीका कुल्हड़ भी न बचा। भावुक भक्तोंने उसके टुकड़े-टुकड़े करके खा लिये।

जो लोग दर्शन करने जाते हैं, उनसे भी माता बताते-बताते विह्वल हो जाती है। माताजीके भजन, सरलता और भगवत्प्रेमको

देखकर यह बात कोई आश्चर्यकी नहीं जान पड़ती।

(कल्याण वर्ष २०/९/११८८)

******

नीचा सिर क्यों?

एक सज्जन बड़े ही दानी थे, उनका हाथ सदा ही ऊँचा रहता था; परन्तु वे किसीकी ओर नजर उठाकर देखते नहीं थे। एक दिन किसीने उनसे कहा–'आप इतना देते हैं पर आँखें नीची क्यों रखते हैं? चेहरा न देखनेसे आप किसीको पहचान नहीं पाते, इसलिये कुछ लोग आपसे दुबारा भी ले जाते हैं।' इसपर उन्होंने कहा–'भाई!
देनहार कोउ और है भेजत है दिनरैन।
लोग भरम हम पर धरैं याते नीचे नैनङ्क

देनेवाला तो कोई दूसरा (भगवान्) ही है। मैं तो निमित्तमात्र हूँ। लोग मुझे दाता कहते हैं। इसलिये शर्मके मारे मैं आँखें ऊँची नहीं कर सकता।'

(कल्याण वर्ष २०/९/१३००)

******

ब्रह्मज्ञानका अधिकारी

एक साधकने किसी महात्माके पास जाकर उनसे प्रार्थना की कि 'मुझे आत्मसाक्षात्कारका उपाय बताइये।' महात्माने एक मन्त्र बताकर कहा कि 'एकान्तमें रहकर एक सालतक इस मन्त्रका जाप करो; जिस दिन वर्ष पूरा हो, उस दिन नहाकर मेरे पास आना।' साधकने वैसा ही किया। वर्ष पूरा होनेके दिन महात्माजीने वहाँ झाड़ू देनेवाली भंगिनसे कह दिया कि जब वह नहा-धोकर मेरे पास आने लगे तब उसके पास जाकर झाड़ूसे गर्द उड़ाना। भंगिनने वैसा ही किया। साधकको गुस्सा आ गया और वह भंगिनको मारने दौड़ा। भंगिन भाग गयी। वह फिरसे नहाकर महात्माजीके पास आया। महात्माजीने कहा–'भैया! अभी तो तुम साँपकी तरह काटने दौड़ते हो। सालभर और बैठकर मन्त्र-जप करो–तब आना।'
साधकको बात कुछ बुरी तो लगी, पर वह गुरुकी आज्ञा समझकर चला गया और मन्त्रजप करने लगा। दूसरा वर्ष जिस दिन पूरा

होता था, उस दिन महात्माजीने उसी भंगिनसे कहा कि आज जब वह आने लगे, तब उसके पैरोंसे जरा झाड़ू छुवा देना। उसने कहा, 'मुझे मारेगा तो?' महात्माजी बोले, 'आज मारेगा नहीं, बककर ही रह जायगा।' भंगिनने जाकर झाड़ू छुवा दिया। साधकने झल्लाकर दस-पाँच कठोर शब्द सुनाये और फिर नहाकर वह महात्माजीके पास आया। महात्माजीने कहा-'भाई! काटते तो नहीं, पर अभी साँपकी तरह फुफ्कार तो मारते ही हो। ऐसी अवस्थामें आत्मसाक्षात्कार कैसे होगा। जाओ एक वर्ष और जप करो।' इस बार साधकको अपनी भूल दिखायी दी और मनमें बड़ी लज्जा हुई। उसने इसको महात्माजीकी कृपा समझा और वह मन-ही-मन उनकी प्रशंसा करता हुआ अपने स्थानपर आ गया। उसने सालभर फिर जप किया। तीसरा वर्ष पूरा होनेके दिन महात्माजीने भंगिनसे कहा कि 'आज वह आने लगे तब कूड़ेकी टोकरी उसपर उँड़ेल देना। अब वह खीझेगा भी नहीं।' भंगिनने वैसा ही किया। साधकका चित्त निर्मल हो चुका था। उसे क्रोध तो आया ही नहीं। उसके मनमें उलटे भंगिनके प्रति कृतज्ञताकी भावना जाग्रत् हो गयी। उसने हाथ जोड़कर भंगिनसे कहा-'माता! तुम्हारा मुझपर बड़ा ही उपकार है जो तुम मेरे अंदरके एक बड़े भारी दोषको दूर करनेके लिये तीन सालसे बराबर प्रयत्न कर रही हो। तुम्हारी कृपासे आज मेरे मनमें जरा भी दुर्भाव नहीं आया। इससे मुझे ऐसी आशा है कि मेरे गुरु महाराज आज मुझको अवश्य उपदेश करेंगे।' इतना कहकर वह स्नान करके महात्माजीके पास जाकर उनके चरणोंपर गिर पड़ा। महात्माजीने उठाकर उसको हृदयसे लगा लिया। मस्तकपर हाथ फिराया और ब्रह्मके स्वरूपका उपदेश किया। शुद्ध अन्त:करणमें तुरंत ही उपदेशके अनुसार धारणा हो गयी। अज्ञान मिट गया। ज्ञान तो था ही, आवरण दूर होनेसे उसकी अनुभूति हो गयी और साधक निहाल हो गया।

(कल्याण वर्ष २०/११/१३००)

******

नीच गुरु

एक सुन्दरी बालविधवाके घरपर उसका गुरु आया। विधवादेवीने श्रद्धा-भक्तिके साथ गुरुको भोजनादि कराया। तदनन्तर उसके सामने धर्मोपदेश पानेके लिये बैठ गयी। गुरुके मनमें उसके रूप-यौवनको देखकर पाप आ गया और उसने उसको अपने कपटजालमें फँसानेके लिये भाँति-भाँतिकी युक्तियोंसे आत्मनिवेदनका महत्त्व बतलाकर यह समझाना चाहा कि जब वह उसकी शिष्या है तो आत्मनिवेदन करके अपनी देहके द्वारा उसे गुरुकी सेवा करनी चाहिये। गुरु खूब पढ़ा-लिखा था, इससे उसने बहुत-से तर्कोंके द्वारा शास्त्रोंके प्रमाण दे-देकर यह सिद्ध किया कि यदि ऐसा नहीं किया जायगा तो गुरु-कृपा नहीं होगी और गुरु-कृपा न होनेसे नरकोंकी प्राप्ति होगी। विधवादेवी बड़ी बुद्धिमती, विचारशीला और अपने सतीधर्मकी रक्षामें तत्पर थी। वह गुरुके नीच अभिप्रायको समझ गयी। उसने बड़ी नम्रताके साथ कहा—'गुरुजी! आपकी कृपासे मैं इतना तो जान गयी हूँ कि गुरुकी सेवा करना शिष्याका परम धर्म है। परन्तु भाग्यहीनताके कारण मुझे सेवाका कोई अनुभव नहीं है। इसीसे मैं यथासाध्य गुरुके चरणकमलोंको हृदयमें विराजित करके अपने चक्षु-कर्णादि इन्द्रियोंसे उनकी सेवा करती हूँ। आँखोंसे उनके स्वरूपके दर्शन, कानोंसे उनके उपदेशामृतका पान आदि करती हूँ। सिर्फ दो नीच इन्द्रियोंको—जिनसे मलमूत्र बहा करता है, मैंने सेवामें नहीं लगाया, क्योंकि गुरुकी सेवामें उन्हीं चीजोंको लगाना चाहिये जो पवित्र हों। मल-मूत्रके गड्ढेमें मैं गुरुको कैसे बिठाऊँ? इसीसे उन गंदे अंगोंको कपड़ोंसे ढके रखती हूँ कि कहीं पवित्र गुरु-सेवामें बाधा न आ जाय। इतनेपर भी यदि गुरु-कृपा न हो तो क्या उपाय पर सच्चे गुरु ऐसा क्यों करने लगे? जो गुरु मल-मूत्रकी चाह करते हैं, जो गुरु भक्तिरूपी सुधा पाकर भी मूत्राशयकी ओर ललचायी आँखोंसे देखते हैं, जो गुरु शिष्याके चेहरेकी ओर दयादृष्टिसे न देखकर नरकके मुख्यद्वार-नरक बहानेवाली दुर्गन्धियुक्त नालियोंकी ओर ताकते हैं, ऐसे गुरुके प्रति आत्मनिवेदन न करके, उसके मुँहपर तो कालिख ही पोतनी चाहिये और झाड़ुओंसे उसका सत्कार करना चाहिये।' गुरुजी चुपचाप चल दिये।

(कल्याण वर्ष २०/११/१३०१)

******

पायंटमैनका कर्तव्यपालन

मद्रास-प्रान्तमें एक रेलका पायंटमैन था। एक दिन वह पायंट पकड़े खड़ा था। दोनों ओरसे दो गाड़ियाँ पूरी तेजीके साथ आ रही थीं। इसी समय एक भयानक काला सर्पको देखकर पायंटमैन डरा। उसने सोचा-'मैं साँपको हटानेके लिये पायंट छोड़ देता हूँ तो गाड़ियाँ लड़ जाती हैं और हजारों नर-नारियोंके प्राण जाते हैं। नहीं छोड़ता तो साँपके काटनेसे मेरे प्राण जाते हैं।' भगवान्‌ने सद्बुद्धि दी। क्षणभरमें ही उसने निश्चय कर लिया कि 'सर्प चाहे मुझे डँस ले, पर मैं पायंट छोड़कर हजारों नर-नारियोंकी मृत्युका कारण नहीं बनूँगा। वह अपने कर्तव्यपर दृढ़ रहा और वहाँसे जरा भी नहीं हिला। जिन भगवान्‌ने उसे सद्बुद्धि दी, उन्होंने ही उसे बचाया। गाड़ियोंकी भारी आवाजसे डरकर साँप उसका पैर छोड़कर भाग गया। पायंटमैनकी कर्तव्यनिष्ठासे हजारों मनुष्योंके प्राण बच गये। जब अधिकारियोंको यह बात मालूम हुई तो उन्होंने पायंटमैनको पुरस्कार देकर सम्मानित किया।

(कल्याण वर्ष २०/११/१३०१)

******

सच्चाईका सुन्दर परिणाम

दो छोटे बालक चले जा रहे थे। रास्तेके एक छोटे बगीचेमें रंग-बिरंगे फूल खिले हुए थे। फूलोंकी सुगन्धसे सारा रास्ता महक रहा था। यह देखकर एक लड़केने कहा-'इसमेंसे थोड़े-से फूल मुझे मिल जाते तो मैं ले जाकर अपनी बीमार बहिनको देता, वह बहुत खुश होती।' यह सुनकर दूसरेने कहा-'तो तोड़ क्यों नहीं लेते? तुम्हारा हाथ न पहुँचता हो तो लाओ मैं तोड़ दूँ, मैं तुमसे लंबा हूँ।' पहले लड़केने उसका हाथ पकड़कर कहा, 'नहीं; नहीं! ऐसा मत करना, चोरी बहुत बुरी चीज है। मैं मालिकसे माँग लूँगा।' इतनेपर भी दूसरे लड़केने गुलाबका एक गुच्छा तोड़ लिया। मालीने दूरसे उसे तोड़ते देख लिया और दौड़कर पकड़ लिया, मारा और ले जाकर कोठरीमें बंद कर दिया।

इधर पहले लड़केने दरवाजेपर जाकर पुकारा। अंदरसे एक दयालु बुढ़िया माईने आकर किवाड़ खोल दिये। लड़केने कहा– 'मा जी! कृपा करके मेरी बीमार बहिनके लिये मुझे दो-एक गुलाबके फूल दोगी?' वृद्धा स्त्रीने कहा–'बड़ी खुशीसे। बेटा! मैं तुम दोनोंकी बातें सुन रही थी, तू बड़ा अच्छा लड़का है, चल तुझे गुलाबका बढ़िया गुच्छा तोड़ दूँ।'

बुढ़ियाने गुलाब तोड़ दिये और कहा–'बेटा! जब-जब तेरी बहिन फूल माँगे; तब-तब आकर ले जाया कर। इतना ही नहीं, बुढ़िया लड़केकी बीमार बहिनसे और उसकी माँसे मिलने गयी और उस लड़केको पढ़नेका खर्च देने लगी। जब लड़का पढ़ चुका तब उसे अपने यहाँ नौकर रख लिया। सच्चाईका कितना सुन्दर नतीजा है!'

(कल्याण वर्ष २०/१२/१२५३)

******

महासती जीरादेई

जिस समय लिच्छविकुलोत्पन्न प्रबल और सुबल, युगलबन्धु अपने-अपने भाग्यकी परीक्षा करनेके हेतु अपनी माता हीरादेवीकी आशीष और अपनी कटार लेकर महलसे निकले, उस समय अपूर्व दृश्य उपस्थित हुआ। एक काक अपनी काकलीसे मार्गप्रदर्शक बना। प्रबलने उड़ते हुए काकके साथ अपना घोड़ा दौड़ाया। चलते-चलते वह चम्पारण्यमें प्रवेश कर गया। और सुबल शुभ शकुनकी प्रतीक्षा न करके नैर्ऋत्य-कोणकी ओर चल पड़ा। टेढ़ीका टौंबन थिरकता हुआ वह सारण्यमें विलीन हो गया।

संवत् ७०१ वै०में, मकरान (बलुचिस्तान) के राजा सहसराय एक बौद्धधर्मानुयायी भारतीय शूद्र थे। इनके पुत्र बड़े साहसी थे। जब छाछ नामक ब्राह्मणने इनका राज्य छीन लिया, राजा सहसराय लड़ाईमें मारे गये, तब उपर्युक्त दोनों राजकुमार महलसे निकल पड़े।

प्रबलरायने प्रतिष्ठानपुरके ज्योतिर्विद्के कहनेसे चम्पारण्यमें प्रवेश किया था। वहाँ एक साधु-तपस्वीसे भेंट होनेपर उन्हें अकीक नामक बहुमूल्य रत्न प्राप्त हुआ। उन्होंने जङ्गल कटवाकर प्रजा बसायी और

गुरौलमें जहाँ उसे रत्न प्राप्त हुआ था और तपस्वी बाबाकी कुटी थी, अपना गढ़ बनवाकर राज्य करने लगा।

सुबलरायने जब सारण्यमें प्रवेश किया तब उनके नेत्रोंके सामने बहुत दूरपर बीहड़ जङ्गलमें एक ज्योति झलकी। उसीको लक्ष्य करके वे घोड़ा बढ़ाते गये। वहाँ जानेपर पता चला कि वह ज्योति एक सुन्दरीके ताटंककी आभा और शोभा थी। वह सुन्दरी एक प्रबल डाकूकी बेटी थी। भू-गर्भालयके बाहर निकलकर टहल-फिर रही थी। अश्वारोहीको देखकर वह बहुत प्रसन्न हुई। वह उसपर मोहित हो गयी। सुबलराय भी रसिक राजकुमार था। युवतीकी असाधारण सुन्दरता और सहृदयतापर वह भी मुग्ध हो गया। प्रणयके चिह्न दोनोंके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे विकसित होने लगे। उस कन्याने राजकुमारको एक घने छायादार वृक्षके नीचे ठहराया। घोड़ा लम्बे रस्सेसे बाँधकर जङ्गलमें चरनेके लिये छोड़ दिया गया। भोजन और आवश्यक वस्तुएँ प्रदान कर कुमारीने अपने प्रेम एवं शीलका परिचय दिया। दूसरे-तीसरे दिन जब डाकू-सरदार बहुमूल्य सामानके साथ घर लौटा तब बेटीने अवसर पाकर एक राजकुमारके आनेकी बात बतायी और निष्कपटभावसे अपने प्रणयको भी सूचित कर दिया। यह सुनकर पहले तो वह डाकू बहुत बिगड़ा। उसने डाँटकर कहा-'जीरादेई! तुम्हारा यह आचरण मेरे उग्र स्वभाव और प्रतिष्ठाके प्रतिकूल है। मैं नहीं कह सकता कि इसका क्या परिणाम तुम्हें भोगना पड़ेगा। स्मरण रक्खो-मैं पक्का निर्दयी हूँ।' बेचारी जीरादेई काँपने लगी। उसके कोमल कण्ठसे एक शब्द भी न निकल सका। यह दशा देखकर उस निर्दयीको भी दया आ गयी। फर्शपर गिरती हुई कन्याको उसने सँभालकर बैठाया। आश्वासन भरे वचन कहकर उसने समझाया। इस प्रकार धीरज देकर वह उस वृक्षके नीचे गया, जहाँ राजकुमार ठहरा हुआ था। सरदारको देखते ही वह राजकुमार खड़ा हो गया और स्वागतपूर्वक आसनपर बैठाया। बातचीत हुई। राजकुमारने अपना पूर्ण परिचय देकर कहा-'मैं तो भाग्यकी परीक्षा करनेके लिये निकला हूँ। अनेक प्रकारके कष्टोंको झेलता हुआ यहाँतक पहुँचा हूँ।' सरदारने सब सुनकर सन्तोष प्रकट किया और कहा-'जिस कन्याने आपको ठहराया है, वह मेरी धर्मपुत्री है। वह भारतीय नरेश राजा रतिबलकी

कन्या है। संवत् ७५६ वै० में जब राजा रतिबलने शिशतानके आगे, ईरानियोंको घेरकर हराया था उसी समय वह कन्या मेरे अधिकारमें आयी। मैं उक्त राजाकी पासबानीमें था। राजा मुझे बहुत मानता था। परन्तु इसी कन्याके लोभमें आकर मैंने राजाके साथ विश्वासघात किया, अपने प्रिय परिवारको छोड़ा, कन्याको लेकर भागा और यहाँ इस जङ्गलमें आश्रय लिया। जब कन्या बड़ी हुई तब स्वभावतः मेरी इच्छा इसके विवाह करनेकी हुई। मैंने हिन्दूकुशसे लेकर अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग सब देशोंको छान डाला, परन्तु इसके योग्य कोई राजकुमार मिला नहीं। मैं ऐसा राजकुमार चाहता था, जो विवाह करके मेरे ही पास रहे और मेरा उत्तराधिकारी बने। ऐसा अबतक कोई मिला न था। भगवान्‌की लीला अपार है। उसने अनायास आपको यहाँ भेजकर मेरी इच्छा पूरी कर दी।'

अनन्तर सरदारने कुमारको साथ लेकर भूगर्भालयमें गुप्त मार्गसे प्रवेश किया। वह पाताल-भवन बड़ी कारीगरीसे बना हुआ था। उसमें सब तरहका सुपास था। इतने जवाहिरात उसमें धरे और भरे थे, जितने किसी प्रतापी राजाने भी न देखे होंगे। इसी तरह और सामान भी थे। यूनान जैसे विदेशोंके प्रसिद्ध पदार्थ भी वहाँ मौजूद थे। राजकुमार मन-ही-मन भगवान्‌को धन्यवाद देता था, जिसने इस अतुल सम्पत्तिका उसे उत्तराधिकारी बनानेका विधान किया। राजकुमार अब भवनमें ही रहने लगा। प्रतिदिन अपने घोड़ेपर सवार होकर आखेटके लिये निकल जाता था। कुमारीको यह क्षणिक वियोग भी अखर जाता था। जबतक वह लौटकर न आता, तबतक वह बेचैन रहती। सरदारने एक तरफसे जङ्गल कटाना और आबाद करना आरम्भ किया। थोड़े ही दिनोंमें वह प्रान्त आबाद हो गया। धानकी खेती होने लगी। बाग-बगीचे, कूप-तड़ाग पर्याप्तरूपमें निर्मित हुए। देश हरा-भरा हो गया।

अब विवाहकी ठनी। सरदार यद्यपि डाकूका काम करता था, परन्तु वह धर्मभीरु भी था। राजा रतिबलके साथ उसने जो विश्वासघात किया था, उसका पछतावा उसे था और अब वह स्वयं महाराज रतिबलको बुलाकर उन्हींके हाथसे कन्यादान कराकर उसका प्रायश्चित करना चाहता था। वह राजाके पास गया। उनसे

मिला। सब समाचार सुनाया और अपने अपराधके लिये क्षमा माँगी। राजाने उदारतापूर्वक क्षमा प्रदान की। दोनों वहाँसे तैयारीके साथ सारण्यके लिये चल पड़े। भूगर्भालयके पास ही बने हुए किलेमें ठहरे। शुभमुहूर्तपर कन्यादान हुआ। भाँवरे फिरीं। दान-पुण्य हुआ। तत्पश्चात् स्वयं राजा रतिबलने राजकुमार सुबलरायको अभिषिक्त करके अपने देशको प्रस्थान किया। राजा सुबलराय रानी जीरादेईके साथ सुरौलमें राजधानी स्थापित करके राज्य करने लगे और सरदार जङ्गलमें कुटी बनाकर भजन करने लगे।

कुछ दिनोंके पीछे गुरौलाधिपति राजा प्रबलरायने अपने भाई सुरौलाधिपति सबलरायके दरबारमें अपना दूत भेजा। उसका अच्छा स्वागत हुआ। नैसर्गिक सम्बन्ध-पत्र-व्यवहार, आना-जाना, आदान-प्रदान आरम्भ हुआ। उभय नृपति उच्च कोटिके मनुष्य थे। प्रजापालनमें सदा तत्पर रहते थे। प्रजाके सुख-दुःखका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये घोड़ेपर चढ़कर स्वयं गाँव-गाँवका चक्कर लगाया करते थे। दरबारमें साधारण-से-साधारण प्रजाकी पहुँच थी। वह आसानीसे राजासे भी मिल सकती थी। इस प्रकार उदार-नीतिके अवलम्बनसे दोनों रियासतें खूब फूलीं-फलीं।

प्रबलरायके दो पुत्र थे। परन्तु सबलराय सन्तानहीन थे। इसलिये गुरौलाधिपतिके छोटे राजकुमारको महारानी जीरादेईने अपना दत्तक पुत्र बनाया। वह सुरौलहीमें रहने लगा। उसकी अच्छी शिक्षा भी हुई। वह राज-काज भी सँभालने लगा। उसके राजोचित गुणोंसे सन्तुष्ट होकर सुबलराय उसे गद्दीपर बैठाकर राजधानीके बाहर अग्निकोणमें, सुन्दर आराममें, त्रिवटीके नीचे पर्णकुटी बनाकर महारानी जीरादेईसमेत उसमें वास करके तप करने लगे। राजाके तप और त्यागका प्रभाव प्रजावर्गके ऊपर भी पड़ा। प्रजामें भी सात्त्विक गुण भर गये। सब संयमी, सदाचारी नर-नारी अपने-अपने धर्म-कर्ममें निष्ठावान् हो गये। राजाका दर्शन किये बिना कोई अन्न-जल भी ग्रहण नहीं करता था।

इतनी सात्त्विकता होनेपर भी कलिप्रभावसे एक महान् दोष बन जानेके कारण सामूहिक दण्ड फलोत्पादक इस गुरुतर अपराधको क्षमामयी पृथ्वी तो क्षमा कर गयी, परन्तु दैवने उसे न सहन कर घोर दुर्भिक्ष देशमें उपस्थित कर दिया। पाँच वर्षतक लगातार एक

बूँद भी पानी नहीं बरसा। इस घोर दुष्कालसे प्रजाकी जान बचानेके लिये तपस्वी राजा सुबलराय अपनी रानी जीरादेईके साथ दरिद्र-नारायणकी सेवामें लग गये—तनसे, मनसे और धनसे। राज्यके बखारसे सदाव्रत बँटता। पक्का भोजन भी दिया जाता। राज्यके बखार सब रिक्त हो गये। तब सुदूर प्रान्तोंसे अन्न मोल मँगाकर बाँटा जाने लगा। जब खजाना भी खाली हो गया; तब राज-दम्पति बड़े सोचमें पड़े। यहाँतक कि शरीर त्याग करनेपर तुल गये। यह दुःखद समाचार तुरंत सर्वत्र फैल गया। राज्यके धनाढ्य लोगोंने आकर राजाको आश्वासन दिया कि हमलोग अपने धनसे प्रजाके प्राण बचानेमें कुछ उठा नहीं रक्खेंगे, आप प्राण विसर्जन न करें। राजाने मान लिया। कोई भूखों मरने न पाया। सत्यके प्रभावसे वृष्टि हुई। धानके खेत लहराने लगे। खूब उपज हुई। प्रजाका कष्ट दूर हुआ। परन्तु राजा सुबलरायकी अवस्था गिरती ही गयी। सँभल न सकी। प्रजापालनमें उनकी असमर्थताने उनके प्राणोंपर चोट की। उस चोटको सह न सकनेके कारण उनकी धुकधुकी एकदम बंद हो गयी। बड़ा शोक मनाया गया। महारानी जीरादेई उनके शवको गोदमें लेकर सती हो गयीं। उस समय लाखों नर-नारी एकत्र हुए थे। अपूर्व दृश्य था। महारानीके अञ्चलसे आप-से-आप अग्निकी लपट निकली। जलते-जलते सतीने वरदान दिया कि इस प्रान्तमें जब-तब सतियाँ उत्पन्न होती रहेंगी। सतीशिरोमणि श्रीजनकनन्दिनीकी जन्मस्थलीके प्रान्तमें ऐसा होना ही चाहिये।

रानी 'जीरादेई' जहाँ सती हुई थीं, उस ग्रामका नाम जीरादेई पड़ गया। यही नाम अबतक प्रसिद्ध है। सुरौल भी पासहीमें है, जिसको लोग 'सुरवल' कहते हैं। ग्राम जीरादेई बी०एन् डब्ल्यू० रेलवेके भाटापोखर स्टेशनसे एक कोस दक्षिण है। इसी ग्रामको देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसादजीकी जन्मभूमि होनेका सौभाग्य प्राप्त है।

(कल्याण वर्ष १६/९/१९७७)

******

व्रजकी मधुर लीला

श्रीजीकी कृपा हुई और चौदह वर्षोंके बाद पुनः श्रीव्रज-दर्शनकी आज्ञा मिली। मैं वृन्दावन होता हुआ श्रीलाड़िलीजीके बरसाने पहुँचा। सन्ध्या-समय साँकरी-खोर गया। सुन्दर लता-पत्ताओंसे आच्छादित दो छोटी-छोटी पहाड़ियोंके बीच केवल एक ही मनुष्यके चलने योग्य सँकरी गलीके पुण्य दर्शन हुए। यहींपर मनमोहन नटनागर व्रज-बालाओंको रोककर दहीका दान लेते और प्रेमका झगड़ा किया करते थे। एक डूँगरके छोटेसे वृक्षके नीचे पत्थरपर दही गिरनेके चिह्न देखकर मैं सोचने लगा कि यहाँपर दही कैसे गिरा। इसी बातपर विचार करता हुआ गहर-वन होकर वापस आया। दूसरे दिन प्रातःकाल फिर वहीं गया। देखा कि एक वृद्धा ग्वालिनी माई साधारण घाँघरा ओढ़नी पहने और माथेपर दो दहेड़ियाँ रक्खे चमोली गाँवकी ओरसे आयी। डूँगरके नीचे खड़ी होकर दहेड़ीसे एक कटोरी दही निकालकर पत्थरपर डाल दिया। मैंने उससे पूछा और जो कुछ उसने कहा उसको उसीके शब्दोंमें ज्यों-को-त्यों लिखनेका प्रयत्न करता हूँ—

मैं—माई! तूने यहाँ दही क्यों गिराया?

वृद्धा—मैंने वाके लिये दही दै दीनो है। वह ह्याँ पै दान लेय है—दान!!

मैं—क्या वह दान लेकर तुम्हारा दही खाता है?

वृद्धा—क्यों नायँ? बराबर तो वाको दर्शन होय नायँ। याही गैल मैं दह्यौ ले जायो करतो हो। एक बार वाने एक छोटो-सो छोरा-दसेक बरसकों, मोयँ याई ठाँ रोको। कह्यो कि तूँ मेरो दान दै के जा। मैंने कह्यो मैं तोयँ दान दूँगी। जब तूँने गूजरीन ते दान लीनों हैं तो मैं च्यों न दूँगी! चल परें तें चल मैं दऊँ हूँ। वाने कह्यौ—डोकरी! तूँ भग जायगी!! मोयँ ना देयगी!!! ऐसा कह, वा पत्थरपर बैठ बंसी बजान लग्यो! मैंने एक बेली दही निकारि, कह्यौ 'लै अपनो दान।'

वाने बंसी कूँ बगलमें दाब लीनी—दोनों हाँथन कूँ या तरियाँ सूँ जोरके दोना बनायो—वामें दह्यो ले; चाटते-चाटते वा गैल सूँ ऊपर चल्यो गयो। जब सों मैं वाकूँ यहाँ दान दै जाय करूँ हूँ।

या बाई कूँ दान दीनों है! वाई कूँ!!

इस सीधी-सादी वृद्धा ग्वालिनीकी बातें इतनी मधुर, स्वाभाविक और भावपूर्ण तथा सच्चाईसे ओत-प्रोत थीं कि मेरा हृदय प्रेम और आनन्दसे भर गया। जब उसने 'पत्थर' की ओर अपनी अँगुलीसे निर्देश किया तथा दोनों दोहड़ियोंको सिरपर रक्खे-रक्खे अपनी दोनों अँजलियोंको जोड़कर दोनाका आकार बनाया और ऊपरकी ओर उसके दही चाटते-चाटते चले जानेका मार्ग दिखलाया-मेरे हृदयका आनन्द रुक नहीं सका। प्रेमाश्रुके रूपमें नेत्रोंसे बाहर निकल पड़ा। मैं उस प्रेममयी बड़भागिनके दोनों चरणोंको पकड़कर प्रेम-जलसे धोने लगा। उसकी आँखोंको कृतकृत्य माना। श्रीजीकी कृपाका अनुभव हुआ। व्रजवासियोंका कथन सत्य ही है कि 'मेरो लाला, व्रज तें कहूँ बाहर नहीं गयो है।' आज भी ये व्रज-वासिनें धन्य हैं जो उस नटनागरकी लीलाका प्रत्यक्ष अनुभव करती हैं।

(कल्याण वर्ष १५/६/११७६)

******

प्रभु-कृपा

एक ब्राह्मणकन्याका बचपनसे ही प्रभुपर बहुत प्रेम था और उन्हींकी कृपासे वह विद्याभ्यासमें भी अच्छी प्रगति कर सकी। पूना मेडिकल कालेजमें भर्ती होनेके बाद इस बहिनको वातव्याधि हो गयी। वह दर्दके मारे बेचैन रहती। लिखना-पढ़ना सब छूट गया। वह दुःखके मारे रोज रो-रोकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे प्रार्थना करती-'प्रभो! मैं यदि पास न हो सकूँगी तो मेरा क्या होगा।' गरीब हालत थी। छात्रवृत्तिसे पढ़ती थी। परीक्षाके दस दिन पहले प्रातःकाल पाँच बजेके समय अर्धजाग्रत् अवस्थामें भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान् श्रीकृष्णने दर्शन देकर उससे पूछा-'बेटी! रोती क्यों हो?' उसने कहा-'प्रभो! मैंने कुछ भी अध्ययन नहीं किया। मैं कैसे उत्तीर्ण होऊँगी।' प्रभु मस्तकपर हाथ रखकर बोले-'बेटी! तू रो मत, तू जरूर पास हो जायगी।' फिर हाथ पकड़कर भगवान् उसे तीन सीढ़ी ऊपर ले गये। इसनेमें ही ब्राह्मण-कन्या जाग गयी। उसने अपनी सखी डा० मीरा चम्पूताई चाव्हाण-जो इस समय कोल्हापुरमें लेडी डाक्टर हैं-से यह सब हाल कहा, डा० चम्पूताईका विश्वास कम था, उन्होंने कहा-तू भोली है, ऐसे स्वप्न या ख्याल आ गया होगा। डा० चव्हाणने यह भी कहा कि अध्ययन किये बिना तू कैसे पास हो सकती है? परन्तु इसके मनमें बड़ी श्रद्धा हो गयी थी। इसने निश्चय किया कि प्रभुके वचन कभी असत्य नहीं हो सकते। इधर परीक्षाका समय आया। उधर ब्राह्मणकुमारीकी बीमारी बढ़ गयी। डाक्टरोंने विश्राम लेनेको कह रक्खा था। बहुत अनुनय विनय करनेपर परीक्षामें बैठनेकी इजाजत मिली। वह परीक्षामें बैठी और महान् आश्चर्यकी बात है कि वह बहुत अच्छे नम्बरोंसे पास हो गयी। अगले साल बम्बईकी परीक्षामें वह दूसरे नम्बरमें आयी और दो पुरस्कार भी मिले! उसका विश्वास अत्यन्त बढ़ गया।

तदनन्तर उसने अपनी सारी जिन्दगी भगवान् श्रीकृष्णको अर्पण कर दी। और समय-समयपर उसे भगवत्कृपाके बहुत विचित्र-विचित्र अनुभव भी हुए। प्रारब्धकी प्रेरणासे अब भी यह बहिन लेडी डाक्टरका काम कर रही है और वह अपने प्यारे प्रभुको सदा भजती रहती है।

(कल्याण वर्ष १५/६/१९४८, डा० सत्यवती एम० काम०)

******

एक योगीकी इच्छामृत्यु

यह सृष्टिका सनातन एवं दैवी सत्य है कि कोई भी प्राणी अपनी इच्छासे नहीं जन्मा है, अपनी इच्छासे नहीं जीता और न अपनी इच्छासे मरता है। जन्म और मृत्यु तो सृष्टिका विधान है। कोई जानबूझकर मरना नहीं चाहता और मरना चाहे भी तो सहजभावसे इच्छामात्रसे मर नहीं सकता, आत्महत्या करना दूसरी बात है। मृत्यु दो प्रकारकी होती है, एक पूरी, दूसरी अधूरी। संसारी प्राणी प्रायः अधूरी मृत्युसे ही मरते हैं—अर्थात् शरीर डूब या जल जानेसे, बिजली या विषके प्रभावसे, दिल या दिमाग 'फेल' हो जानेसे, अर्थात् शरीर जीर्ण होकर इन्द्रिय-संचालनशक्ति-शून्य हो जानेसे अथवा किसी आकस्मिक कारणसे अनिच्छापूर्वक जीनेकी इच्छा रहते हुए भी लाचारीसे मर जाना ही अधूरी मृत्यु है। पूरी मृत्यु है स्वस्थ सहज प्रयाण। यह बिरले योगियोंको ही प्राप्त होती है और यह योग किसी विशेष शास्त्र-अध्ययन अथा गुप्त कठोर साधनसे प्राप्त होनेवाला नहीं। योगीके लिये यह अत्यन्त आवश्यक नहीं कि वह विद्वान् हो। यहाँ हम एक निरक्षर योगीकी इच्छामृत्युका स्वल्प परिचय देंगे।

साधु-जीवनमें इनका प्रचलित नाम नागा (निर्मोही) महाबीरदास था। मध्यप्रदेशमें कटनीके पास विजय राघवगढ़ इनकी जन्मभूमि एवं निवासस्थान था। ये ब्राह्मण थे, विवाहित थे और इन्हें एक कन्या भी हुई थी; परंतु कालान्तरसे स्त्री एवं पुत्रीकी मृत्यु हो जानेके कारण, अथवा गृह-जंजाल चलाना अब व्यर्थ समझकर इन्होंने सब कुछ त्याग दिया और साधु हो गये। साधु-संगतिमें अनेक स्थानोंका भ्रमण करते हुए इन्होंने बम्बई, अहमदाबाद आदि स्थानोंमें काल बिताया। अबसे लगभग चालीस वर्ष पूर्व ये रमते-रमते डभौरा ग्राम (मध्य रेलवे स्टेशन डभौरा, जिला रीवाँ, विन्ध्यप्रदेश) आये और नदीकिनारे एक जीर्ण-शीर्ण शिवालयको देख उसीमें अपना डेरा लगाया। आस-पासके गाँवोंमें फसल तैयार होनेपर 'झोली' माँगकर गुजर करने लगे। समयान्तरसे प्रयत्न और उद्योगसे जीर्ण मन्दिरको सुधारा, एक सुन्दर बगिया लगायी, एक-दो शिष्य भी मिल गये और कुछ कृषिभूमि भी प्राप्त की। अब उनका अखाड़ा जम गया और स्वयंके परिश्रमसे एक नया मन्दिर बनाया। समय-समयपर भजन-

कीर्तन और दैनिक पूजा-आरती होने लगी।

बाबा वास्तवमें निरक्षर थे और उनकी बोल-चालकी भाषा भी ग्रामीण थी। वे योग-विषयमें कुछ जानते थे या नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता; क्योंकि उनसे कभी योग-चर्चा नहीं सुनी गयी।

मेधावी मानवने आकाश-पाताल चीरकर भयानक भौतिक ज्ञान और साधनोंका उपार्जन किया है; परंतु आश्चर्य और खेदका विषय है कि वह अपने जन्म, जीवन और मृत्यु कुछ भी नहीं जान पाया है। मनुष्य मनुष्यको अति निकट रहकर भी नहीं पहचान पाया है। हमारे जीवनमें कितने ही लोगोंका दीर्घकालिक अति निकट एवं घनिष्ठ सम्पर्क होता है; फिर भी हृदय एवं मनकी संकीर्णताके कारण हम परस्पर कोसों दूर एवं अपरिचितकी भाँति होते हैं। इस नगरमें बाबाके विषयमें यही बात चरितार्थ होती है कि चालीस वर्षके सम्पर्कमें कोई उन्हें न पहचान पाया, और अब मरनेके बाद समझदार लोगोंने जाना और कहा कि 'बाबा योगी था।'

उनकी आयु पचासी वर्षकी हो चुकी थी। यद्यपि वे आहार, संयम, व्यवहार और नियमके निष्पक्ष एवं कठोर पालक थे, फिर भी शरीर अपने धर्मके अनुसार जीर्ण हो चला था। इतनेपर भी वे चलते-फिरते-बोलते थे। उन्होंने अपने शिष्यसे कहा कि 'मठके अमुक-अमुक भाइयोंको तार भेज दो, वे जल्दी मेरी जगहपर आ जायँ; मेरा अन्तिम समय है, मैं अब इस शरीरको छोड़ूँगा।'

वास्तवमें ऐसी बात कोई कहे तो लोग विश्वास न करके उपहास करते हैं कि भला अपनी मृत्युको भी कोई जान सकता है। अपनी इच्छासे भी कोई मर सकता है! अस्तु, शिष्यने तार दे दिया और एक गुरुबन्धु वहाँसे आ भी गये।

मेरा उनसे घनिष्ठ प्रेम था और उनकी बात सुनकर मैं उनके दर्शन करने गया एवं कुछ उपचार बताने लगा, तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि 'अब तो 'तैयारी' है। उपचार या किसी भी बात या वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। जो कुछ करना या होना था, अबतक सब हो गया। हमने आपसे जो कुछ कहा-सुना हो उसके लिये क्षमा करना।'

वे बैठे हुए थे, प्रयाणकी तैयारीमें। उनका यह उपवासका छठा दिन था। उन्होंने मुझे सप्रेम बैठनेका आदेश दिया और प्रेमपूर्वक कुछ वार्ता करने लगे। मैं गम्भीरतापूर्वक उनकी इस 'प्रयाण'-तैयारीकी बात एवं साधनापर विचार करने लगा।

उपवासके दस दिन पूरे हो जानेपर, ग्यारहवें दिन, ठीक एकादशी (फाल्गुन शुक्ल, सं० २०१४ वि०) को ब्राह्म मुहूर्तमें उन्होंने अपने शिष्यसे कहा, 'मुझे बैठा दो और देखो क्या होता है।' शिष्यद्वारा बैठा दिये जानेपर उन्होंने 'आदौ राम तपोवनादि गमनम्' एवं 'आदौ देवकिदेव' इत्यादि सुनानेको कहा, फिर कुछ कीर्तन करनेको।

लोग बाबाके आदेशके अनुसार इसी पाठ एवं कीर्तनमें लग गये, उसी समय बाबाने 'प्रयाण' कर दिया। किसीको आभास न हो पाया कि बाबाके कथनका तात्पर्य क्या था और क्या 'देखना' है, 'क्या होगा।'

बाबा कई दिन पहलेसे कह रहे थे कि मुझे लेनेके लिये खाली विमान आते हैं, लौट जाते हैं; मेरा बुलावा है, मुझे जाना है, मुझे गङ्गाजी ले चलना, गङ्गाजी ले चलनेकी तैयारी करो।

परंतु उन्हें गङ्गाजी न ले जाया जा सका। यहाँसे यमुनाजी, मझधार ले जाकर वहाँ विसर्जन करना पड़ा। नाविकोंने कहा, 'नावमें मुर्दा ले जानेसे हमें जातिसे बहिष्कृत कर दिया जायगा, भोज लगेगा।'

बाबाके प्रयाणके पश्चात् तेरहवें दिन स्थानीय ब्राह्मण-परिवारोंमेंसे एक-एक व्यक्तिको मिष्ठान्न भोजकी व्यवस्था करके निमन्त्रण दे दिया गया। किंतु जहाँ गिने-गिनाये व्यक्तियोंके लिये परिमित भोजन-सामग्रीकी व्यवस्था की गयी थी, वहाँ एक घरसे एक व्यक्ति आनेके बदले, तीन-तीन, चार-चार आये। उनकी ऐसी योजना हो चुकी थी कि ऐसी दशामें सामग्री पूरी नहीं पड़ेगी और बाबाके नामपर अखाड़ेका उपहास हो जायगा। फिर भी सब लोगोंने पेटभर खाया और सामग्री दूसरे दिनके अन्य व्यक्तियोंके भोजके लिये काफी मात्रामें बच गयी। यह कोई चमत्कार था अथवा क्या रहस्य था, कोई न जान पाया।

अब कहते हैं, 'बाबा योगी था।'

संसारकी यह कितनी विचित्र बात है, अति निकट एवं घनिष्ठ सम्पर्कमें रहकर भी मानव मानवको नहीं पहचान पाता, वरं

तिरस्कार करता है, उपहास करता है और मर जानेके बाद उसकी पूजा करता है, उसके जीवनसे शिक्षा एवं प्रेरणा लेता है, उसका प्रचार करता है, उसकी समाधि बनाता है और उसपर फूल चढ़ाता, धूप जलाता है। विशेषकर महापुरुषोंके विषयमें यही होता है। मुहम्मद और ईसा इसके विशेष उदाहरण हैं।

बाबाके विषयमें कोई विशेष पूर्व-वृत्त अथवा उनका 'फोटो' प्राप्य नहीं है। उनकी आकृति, यदि किसीने इलाहाबादके स्वर्गीय 'हंडिया' बाबाको देखा हो, उन्हींकी-सी समझनी चाहिये।

(कल्याण वर्ष ३१/८/१९५०, श्रीविश्वामित्रजी वर्मा)

******

ईश्वरकी सत्ता

(१)

दक्षिणमें एक भक्त हुए हैं, उनका नाम धनुर्दास था। एक वेश्या थी-हेमाम्बा नाम था। बड़ी सुन्दरी थी। उसके रूपपर वे मुग्ध थे। भगवान्‌में भक्ति बिल्कुल नहीं थी। शरीर खूब हट्टा-कट्टा था। लोग उन्हें पहलवान कहते थे। बिचारेके अंदर कामवासना नहीं थी, रूपका मोह था। उसे रूप बड़ा प्यारा लगता था। दिन बीतने लगे। रङ्गजीके मन्दिरमें उत्सव प्रतिवर्ष हुआ करता था और वैष्णवाचार्य श्रीरामानुजजी महाराज मन्दिरमें आया करते थे। लाखोंकी भीड़ होती थी। कीर्तनका दल निकलता था। पहलवानजी और वेश्याके मनमें भी उत्सव देखनेकी एक साल इच्छा हुई। वे लोग भी आये। कीर्तनमें लोग मस्त थे। भगवान्‌की सवारी सजायी गयी थी। हजारों आदमी आनन्दमें पागल होकर नाच रहे थे। पर पहलवानजीको उस वेश्याके मुखकी शोभा देखनेसे ही फुरसत नहीं थी। वे वहाँ एकटक उस वेश्या हेमाम्बाको ही देख रहे थे। श्रीरामानुजाचार्यकी दृष्टि पड़ गयी। इतने बड़े महात्माकी दृष्टि पड़ी। भाग्य खुल गया। श्रीरामानुजाचार्य बोले-यह कौन है? उनको दया आ गयी थी। लोगोंमें यह बात प्रसिद्ध थी ही। सबने सारा हाल कह सुनाया। श्रीरामानुजाचार्यजी डेरेपर गये और कहा, उसे बुला लाओ। पहलवानजी आये। श्रीरामानुजाचार्यजीने पूछा-'भैया! लाखों आदमी भगवान्‌के आनन्दमें

डूब रहे थे, पर तुम मलमूत्रके भाण्डपर दृष्टि लगाये हुए थे। ऐसा क्यों?' पहलवानने बताया–'महाराजजी! मैं कामवासनाके कारण उस वेश्याको प्यार नहीं करता, मुझे तो सुन्दरता प्रिय है। हेमाम्बा-जैसी सुन्दरता हमने और कहीं भी नहीं देखी। इसीलिये मेरा मन दिन-रात उसीमें फँसा रहता है।' आचार्यजी बोले–'भैया! यदि इससे भी सुन्दर कोई वस्तु तुम्हें देखनेको मिले तो इसे छोड़ दोगे?' पहलवान बोले–'महाराजजी! इससे भी अधिक सुन्दर कोई वस्तु है, यह मेरी समझमें नहीं आता।' आचार्यजी बोले–'अच्छा, साँझको मन्दिरकी आरती समाप्त होनेके बाद आ जाना। केवल मैं रहूँगा।' पहलवानजी 'अच्छा' कहकर चले गये। श्रीरामानुजाचार्यजी मन्दिरमें गये, भगवान्से प्रार्थना की–'प्रभो! आज एक अधमका उद्धार करो। एक बारके लिये उसे अपने त्रिभुवनमोहन रूपकी एक हल्की-सी झाँकी दिखा दो।' इतने बड़े महात्माकी प्रार्थना खाली थोड़े ही जाती। अस्तु,

साँझको पहलवान आये। श्रीरामानुजाचार्यजी पकड़कर भीतर ले गये और श्रीविग्रह (मूर्ति) की ओर पकड़कर बोले–'देख, ऐसा सौन्दर्य तुमने कभी देखा है?' पहलवानने दृष्टि डाली। एक क्षणके लिये जनसाधारणकी दृष्टिमें दीखनेवाली मूर्ति मूर्ति नहीं रही, स्वयं भगवान् ही प्रकट हो गये और पहलवान उस अलौकिक सुन्दरताको देखते ही मूर्छित होकर गिर पड़े। बहुत देरके बाद होश हुआ। होश होनेपर श्रीरामानुजाचार्यजीके चरण पकड़ लिये और बोले–'प्रभो! अब वह रूप ही निरन्तर देखता रहूँ–ऐसी कृपा कीजिये।' फिर श्रीरामानुजाचार्यजीने उसे मन्त्र दिया। वे उनके बहुत प्यारे शिष्योंमें तथा एक बहुत पहुँचे हुए महात्मा हुए।

आज भी ऐसी घटनाएँ होती हैं, पर लोग जान नहीं पाते, यत्किञ्चित् जाननेपर भी अन्तःकरणकी मलिनताके कारण विश्वास नहीं कर पाते।

(२)

सूरदासके पूर्वजन्मकी एक विचित्र बात आती है। उद्धव जब व्रजसुन्दरियोंको ज्ञान सिखाने गये थे, तब अन्तमें खूब फटकारे गये। वहाँ फिर गोपियोंने दिखाया कि 'देखो श्यामसुन्दर यहाँसे एक

क्षणके लिये भी नहीं गये हैं।' जब उद्धवने यह देखा, तब वे दंग रह गये। फिर चेष्टा की कि भीतर निकुञ्जमें प्रवेश करें। पर ललिताजीके हुकुमसे रोक दिये गये। उद्धवने खीझकर शाप दे दिया कि जाओ मर्त्यलोकमें। ललिताजीने भी कहा कि तब तुम भी अंधे बनकर वहीं चलो। यह प्रेमका विनोद था। पर आखिर जबान तो उनकी सच होकर ही रहती थी। इसलिये एक अंशसे ललिताजीने अवतार धारण किया तथा उद्धवने भी एक अंशसे सूरदासके रूपमें जन्म लिया।

ये ललिताजी अकबर बादशाहके यहाँ एक हिंदू बेगमके पास पलीं। बेगम उन्हें बहुत छिपाकर रखती थीं। पर एक दिन बादशाहने देख लिया। उसने जीवनभरमें ऐसी सुन्दरता देखी ही नहीं थी। बेगम उस लड़कीको बहुत प्यार करती थी तथा सचमुच अपनी लड़कीके समान ही मानती थी।

एक दिन बेगमने उस लड़कीसे कहा कि 'बेटी! तू एक दिन मेरा शृङ्गार करना आता है, वैसा मैंने कभी नहीं देखा।' उस लड़कीने मामूली शृङ्गार कर दिया। बेगम बादशाहके पास गयी। उस दिन अकबरने बेगमको ऊपरसे नीचेतक देखा तथा उसके रूपको देखकर चकित हो गया। वह बोला—'बेगम! आज तो मैं तुम्हें देखकर हैरान हूँ; सच बताओ, आज तुमने कोई जादू तो नहीं किया है।' अन्तमें बेगमने सच बता दिया कि 'मेरी एक बेटी है, उससे मैंने शृङ्गारके लिये प्रार्थना की। उसने मुझे मामूली ढंगसे सजा दिया। यदि मनसे सजाती तो पता नहीं क्या होता।' बादशाहके मनमें पाप आ गया। बेगम उसे लड़की मानती थी, पर बादशाहने एक नहीं सुनी। किंतु मनमें पाप आते ही अकबरके सारे शरीरमें जलन शुरू हो गयी। बड़े-बड़े हकीम उपचार करके हार गये, पर कोई भी लाभ नहीं हुआ। फिर बीरबलने कहा कि यह दैवी कोप है, किसी महात्माकी कृपासे बिना यह दूर नहीं होगा। उस समय सूरदास सबसे बड़े महात्मा माने जाते थे। वे बुलाये गये। सूरदासने कृपापरवश होकर जाना स्वीकार कर लिया। वे आये तथा अकबरको देखकर कहा—'तुम्हारे पापोंके कारण ही यह हुआ है; तुमने जिस बालिकापर बुरी दृष्टि की है, उसीके कारण यह हुआ है।' फिर सूरदासने

कहा, 'अच्छा, तमाशा देखो।' उस बालिकाके पास खबर भेजी गयी कि एक सूरदास आया है, वह बुलाता है। बालिका हँसी और राजसभामें पहुँची। दोनों एक दूसरेको देखकर हँसे तथा बालिका देखते-ही-देखते अपने-आप जलकर खाक हो गयी। सबको बड़ा अचम्भा हुआ। अकबरने प्रार्थना की। उसीपर सूरदासने एक पद गाकर उसे सारा रहस्य बतलाया कि 'यह बालिका ललिताजीके अंशसे उत्पन्न हुई थी और मैं उद्धवके अंशसे।'

पता नहीं, यह घटना कहाँतक सत्य है; पर सिद्धान्ततः यह सर्वथा सत्य है कि दिव्यलोकके प्राणी एवं भगवान्‌की लीलाके परिकर इस युगमें भी अपने अंशसे भगवदिच्छासे जन्म धारण करते हैं। इसलिये यह कहा नहीं जा सकता कि किस भेषमें कौन है; सबको साक्षात् भगवान् मानकर सम्मान करनेमें ही लाभ है।

(३)

जो ईमानदार नास्तिक होते हैं अर्थात् ठीक-ठीक जैसा भीतर मानते हैं वैसा ही कहते हैं, दम्भ नहीं करते, उनपर भगवान्‌की कृपा दाम्भिकोंकी अपेक्षा शीघ्र प्रकाशित होती है।

हालकी बात है। वृन्दावनमें एक महात्मा हैं। वे इस समय भी हैं। खूब भजन करते हैं। पर पहले बहुत नास्तिक थे। कलकत्तेमें रहते थे। दलाली करते थे। श्रीकृष्णकी लीला एवं रासलीलाका मजाक उड़ाया करते थे। बुरी तरह नास्तिक थे। कलकत्तेमें किसीके घरपर रासलीला हो रही थी। वे भी मजाक उड़ानेके लिये देखने गये। रासलीला हो रही थी। कौन-सी लीला थी, यह हमें याद नहीं है। मुझे एक अत्यन्त विश्वासी आदमीने सब बातें बतायी थीं। पर अब पूरी तरह याद नहीं। जो हो, रासलीला देखते-देखते हठात् श्रीजी जो बने थे, उनकी जगह एक क्षणके लिये वास्तविक राधारानी प्रकट हो गयीं और केवल उन्हींको दर्शन हुआ। बस, उसी क्षणसे सब छोड़-छाड़कर वृन्दावन चले आये और माला फेरते हैं।

(४)

वृन्दावनके वृक्षोंकी भी बड़ी विचित्र बात है। एक महात्माने अत्यन्त विश्वासपूर्ण स्वयं जाँच की हुई कई घटनाएँ हमको एवं भाईजीको सुनायी थीं।

एक पेड़ था। उसे काटनेकी तैयारी हुई। रातमें एक मुसल्मान दारोगाको स्वप्न हुआ कि 'देखो मैं काशीमें एक विद्वान् ब्राह्मण था, बहुत तपस्या करनेपर मुझे व्रजमें पेड़ होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। लोग कल मुझे काटनेकी तैयारी कर रहे हैं, तुम बचाओ।' वह मुसल्मान था, पर सब पता ठिकाना—आदमीका नामतक, स्वप्नमें बताया गया था। इसलिये उसे जाँचनेकी इच्छा हुई। जाँचनेपर सब बातें ज्यों-की-त्यों मिलीं। उसे पहले कुछ भी इस विषयमें ज्ञात नहीं था।

दूसरी घटना उन्होंने सुनायी थी—एक साधु जङ्गलमें एक लताके नीचे शौच होने जाते थे। वहाँ कुछ आवाज आती, पर वे समझ नहीं पाते। फिर उनको या शायद उनके साथीको स्वप्न हुआ या दर्शन हुआ—ठीक याद नहीं, जिससे पता लगा कि उस लताके रूपमें कहींकी एक चमारिनने बड़ी भक्तिसे उसके फलस्वरूप जन्म धारण किया था। उसने बताया कि तुम्हें स्त्रीके पास जाकर शौच होनेमें लाज नहीं आती। मैं रोज तुम्हें चेतावनी देती हूँ, पर तुम समझते नहीं। देखो, व्रजके लता एवं वृक्षोंके नीचे शौच मत जाया करो। भागवतमें तो स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने यह बात कही है कि यहाँके पेड़ प्रायः बड़े-बड़े ऋषि हैं, जो वृक्ष बनकर मेरा और श्रीबलरामजीका दर्शन करते हैं।

(५)

व्रजमें अब भी बहुतोंको बहुत सुन्दर-सुन्दर अनुभव होते हैं। एक साधु थे। भगवान्‌के दर्शनके लिये सब जगह घूमे, पर कहीं कोई अनुभव नहीं हुआ। सोचा, अब अन्तिम जगह गिरिराज चलें। वहाँ किसी-न-किसी रूपमें दर्शन देनेकी भगवान् अवश्य कृपा करेंगे। व्रजमें आये। न जान, न पहचान। एकादशीका दिन था। फलाहार कहाँ मिले? एक बालक आया। बोला, 'बाबाजी! मेरी माँ एकादशी करती है, ब्राह्मण जिमानेके लिये आपको बुला रही है।' बाबाजी गये, बुढ़ियाने प्रसाद बड़े प्रेमसे दिया। भरपेट खाकर फिर बोले—'वह बालक कहाँ गया माई?' बुढ़िया बोली—'मेरा तो न कोई लड़का है, न मैंने किसीको भेजा था। आप आ गये। मैंने अतिथि समझकर आपका सत्कार कर दिया।' ऐसी बहुत सी घटनाएँ होती रहती हैं।

(६)

महाप्रभु संन्यासके बाद जब शान्तिपुरसे नीलाचल रहनेके लिये चलने लगे, तब सब कोई रो-रोकर बेहोश होने लग गये। बड़ा विचित्र दृश्य था। सभी धूलिमें लोटकर छाती फाड़कर रो रहे थे। आँखोंसे आँसूका फव्वारा छूट रहा था। एक श्रीअद्वैताचार्य ऐसे थे कि उनकी आँखोंमें आँसू नहीं थे। ये अद्वैताचार्य कोई साधारण पुरुष नहीं थे। ऐसा इतिहास मिलता है कि चालीस-पचास वर्षतक लगातार इन्होंने तुलसी गङ्गाजलसे भगवान्की पूजा की थी और केवल यही वर माँगते रहे थे कि 'हे नाथ! जीवोंका दुःख देखा नहीं जाता, अवतार लेकर जीवोंको भक्त बनाओ और सबका दुःख मिटा दो।' कहा जाता है कि इनकी प्रार्थनासे ही चैतन्य-महाप्रभुका अवतार हुआ था। सब रो रहे थे, पर इनकी आँखोंमें आँसूकी एक बूँद भी नहीं निकली। महाप्रभु सबको छोड़कर आगे बढ़ गये। केवल अद्वैताचार्य पीछे चलते रहे। महाप्रभु सबसे अधिक इनकी बात मानते थे। महाप्रभुने कहा—'आचार्य! अब लौट जाइये।' अद्वैताचार्यने कहा—'प्रभो! साथ जानेके लिये नहीं आया हूँ; केवल यह कहनेके लिये आया हूँ कि मेरे जैसा अधम प्राणी, पत्थरके हृदयवाला प्राणी, नीरस प्राणी संसारमें दूसरा आपको नहीं मिलेगा। आप देखिये, आपके जाते समय ऐसा कोई भी नहीं कि जिसकी आँखोंसे आँसूकी धारा न बह रही हो; पर मेरी आँखोंमें एक बूँद भी आँसू नहीं।'

चैतन्य महाप्रभु हँसे और बोले—'देखिये, आपको इसका रहस्य बता देता हूँ, मुझे आपसे काम लेना था। मैंने देखा कि सब लोग तो बेहोश-से होकर गिर जायँगे। कोई एक आदमी ऐसा चाहिये, जो सबको सम्हाल सके। इसलिये यह देखिये मैंने अपने कौपीनमें एक गाँठ बाँधकर आपके प्रेमको रोक रखा है। पर अब जब आप रोना चाहते हैं तो लीजिये, जी भरकर रो लीजिये।' यह कहकर महाप्रभुने गाँठ खोल दी। खोलते ही अद्वैताचार्य बेहोश होकर पछाड़ खाकर गिर पड़े और रोने लगे।

देखें, भगवान्की लीला कोई भी नहीं समझ सकता। पर यह ठीक है कि जो प्रेममें रोना चाहेगा, नहीं रोनेके कारण जिसके

हृदयमें पीड़ा होती है, उसे भगवान्‌का प्रेम मिलेगा ही और वह रोयेगा ही। पर सम्भव है, उन्हें किसीसे कुछ काम कराना हो, कुछ लीला करानी हो—इसके कारण ही हृदयको सूखा बनाये रखते हों। उनके रहस्यको कौन जाने। मनुष्यको अपनी ओरसे एक ही काम करते रहना चाहिये—अत्यन्त प्रेमसे निरन्तर उनका स्मरण।

(७)

कुछ साल पहले एक प्रेमी सज्जन वृन्दावन गये थे। नावपर घूमते हुए वृन्दावनकी सैर कर रहे थे। वर्षाका मौसम था। यमुनाजीमें खूब पानी था। संध्याका समय था। इतनेमें खूब वर्षा हुई। टीले, जमीन, रास्ता दीखना बंद हो गया। नावसे उतरकर वे बिचारे अकेले एक किनारे जंगलके पास खड़े थे। इतनेमें देखा कि कुछ गायें आ रही हैं तथा दो बच्चे काली कमली ओढ़े हुए पीछे-पीछे आ रहे हैं। मुझे घटना ठीक-ठीक याद नहीं है। वे शायद रास्ता भूल गये थे। बच्चोंसे पूछा। एक बच्चा बड़ा सुन्दर था। मन बरबस उसकी ओर खिंचता चला जा रहा था। कुछ बात होनेके बाद उसने रास्ता बता दिया और आगे चलने लगा। ये पीछे-पीछे चले। उसने मना किया, पर ये माने नहीं। उसी समय गाय, बच्चे आदि सभी अन्तर्धान हो गये।

कहनेका भाव यह है कि भगवान्‌का दर्शन तो वे जब ठीक समझेंगे, आवश्यक समझेंगे, तब हो जायगा। आपको तो केवल प्रेमपूर्वक भजन करते रहना चाहिये।

(८)

एक ब्राह्मण थे। ऐसी घटना हुई—एक सालके भीतर परिवारमें जितने थे, सभी मर गये, वे अकेले बच गये। श्राद्ध आदि करनेमें ऋण हो गया, मकान गिरवी रखकर रुपया लिया। फिर एक जगह आठ-दस रुपये महीनेकी नौकरी कर ली, इसीसे पाँच-सात रुपये बचाकर किस्तका रुपया भरते जाते थे और बहुत कम खर्चमें काम चलाकर बिहारीजीके मन्दिरमें भजन करते रहते थे।

यह नियम है कि तमस्सुककी पीठपर किस्तका रुपया चढ़ा दिया जाता है। पर उस महाजनके मनमें बेईमानी थी; वह मकान हड़पना चाहता था; इसीलिये चढ़ाता नहीं था। जब रुपया करीब

सब भर गया, केवल आठ-दस रुपये बाकी बचे थे, तब उसने पूरे रुपयेकी सूदसहित नालिश कर दी। सम्मन आया, बिचारे ब्राह्मणदेवता विहारीजीके मन्दिरमें बैठे थे। सुनकर बहुत दुखी हुए, बोले—मैंने तो सब रुपये भर दिये हैं, केवल आठ-दस रुपये बाकी हैं। उसकी विकलता देखकर सम्मनवाले चपरासीको दया आ गयी। उसने कहा—'कोई गवाह है?' ब्राह्मणने कहा—'कोई नहीं।' वह बोला—'तो बड़ी दिक्कत है।' ब्राह्मण बोला—'हाँ, एक गवाह विहारीजी हैं।' भगवान्‌की कुछ ऐसी लीला कि चपरासीकी समझमें यह आ गया कि सचमुच कोई विहारीजी नामका एक व्यक्ति इसका गवाह है। उस चपरासीने जाकर मुन्सिफसे कह दिया कि हुजूर ब्राह्मण ईमानदार है। महाजन बेईमान है। उस ब्राह्मणका एक गवाह है विहारजी। उसके नामसे सम्मन निकाल दें। मुन्सिफ भी भला आदमी था। उसने सम्मन निकाल दिया। वही चपरासी फिर आया। ब्राह्मण वहीं बैठे थे। बोले, 'यहीं कहीं होगा। तुम यहीं कहीं साटकर चले जाओ।' भगवान्‌की लीला थी। उसने समझा क्या हर्ज है। लोगोंको तो पता था कि विहारीजीका अर्थ ये विहारीजी हैं। इसलिये सब लोग हँस रहे थे कि यह कितना मूर्ख है।

तारीख आयी। उसके पहले दिन रातमें ब्राह्मण मन्दिरमें जाकर रहनेकी आज्ञा माँगी; पर पुजारी आदि तो हँसते थे, उसके बहुत रोनेपर उन सबने आज्ञा दे दी। वह रातभर रोता रहा। सुबह उसे नींद आ गयी। देखता है कि विहारीजी आये हैं और कह रहे हैं—'रोते क्यों हो, तुम्हारी गवाही मैं जरूर दूँगा।' नींद खुलते ही वह तो आनन्दमें भर गया और उसे तनिक भी संदेह नहीं रहा—पूरा विश्वास था कि ये मेरी गवाही जरूर देंगे।

लोगोंमें हलचल मच गयी। उसने कहा—'तुमलोग देखना मेरी गवाही विहारीजी जरूर देंगे।' बहुत-से आदमियोंने सोचा—चलकर कोर्टमें आज तमाशा देखेंगे। पर भगवान्‌की लीला! आँधी-पानी आ गया, फलतः बहुत कम आदमी जा सके, फिर भी कुछ-कुछ पुण्यात्मा भाग्यसे चले गये।

कोर्टमें मुन्सिफके सामने मामला पेश हुआ। मुन्सिफने पूछा—'गवाह आया है?' ब्राह्मण बोला—'हाँ, हुजूर आया है।' चपरासीने

आवाज लगायी—'विहारी गवाह हाजिर हो!' पहली बार कोई जवाब नहीं, दूसरी बार कोई जवाब नहीं। तीसरी बार जवाब आया—'हाजिर है।' इतनेमें लोगोंने देखा—एक व्यक्ति अपने सारे शरीरको काले कम्बलमें ढाँके हुए आया और गवाहके कठघरेमें जाकर खड़ा हो गया। उसने जरा-सा मुँहका पर्दा हटाकर मुन्सिफको देख लिया। बस, मुन्सिफके हाथसे कलम गिर गयी; वह एकटक कई मिनटतक उसकी ओर देखता रहा। उसकी ऐसी दशा हो गयी, मानो वह बेहोश हो गया हो।

कुछ देर बाद मुन्सिफ बोला—'आप इसके गवाह हैं?' वह काले कम्बलवाला बोला—'जी, हाँ।' आपका नाम? 'विहारी।'—आपको मालूम है, इसने रुपये दिये हैं?—इसपर बड़ी सुन्दर उर्दू भाषामें विहारी गवाह बोले—'हुजूर! मैं सारे वाक्यात अर्ज करता हूँ।' इसके बाद बताना शुरू किया। अमुक तारीखको इतने रुपये, अमुक तारीखको इतने रुपये—तारीखवार करीब सौ तारीखें बता दीं। मुद्दईका वकील उठा और बोला—'हुजूर! यह आदमी है कि लायब्रेरी, कभी आदमीको इतनी तारीखें याद रह सकती है?' विहारी गवाह बोले—'हुजूर! मुझे ठीक-ठीक याद है, जब यह रुपये देने जाता था, तब मैं साथ रहता था।' मुन्सिफ—'क्या रुपये बहीमें दर्ज हुए हैं?' विहारी गवाह—'जी हाँ, सब दर्ज हुए हैं, पर कहीं नाम नहीं है। रोकड़ बहीमें उन-उन तारीखोंमें रकम जमा है, पर इसका नाम नहीं है। दूसरे झूठे नामसे जमा है।' मुन्सिफ—'तुम बही पहचान सकते हो?'

विहारी—'जी हाँ।'

मुन्सिफने उसी समय कोर्ट बर्खास्त किया और दो-चार चपरासियोंके साथ मुद्दईके मकानपर चला गया। साथ-साथ विहारी गवाह थे। किसीने गवाहका शरीर नहीं देखा, केवल मुन्सिफने मुँह देखा था।

वहाँ पहुँचकर विहारी गवाहने आलमारी बता दी। बहीका इशारा कर दिया कि उस बहीमें है। मुन्सिफने बही निकलवाकर मिलाना शुरू किया। गवाहने जो तारीखें बतायी थीं, उन्हीं-उन्हींमें उतनी-उतनी रकम दूसरे उचन्तके नामसे जमा थी। अन्तिम तारीख कई पन्नोंके बाद थी। पन्ने उलटनेमें देरी हो गयी। पर वह भी

ठीक मिली। पर इतनेमें ही लोगोंने देखा कि विहारी गवाहका पता नहीं। क्या हुआ, कहाँ गये, कुछ पता नहीं चला। मुन्सिफ कोर्टमें आया। मुकदमेंको डिसमिस कर दिया और स्वयं त्यागपत्र लिखकर साधु हो गया। वे ब्राह्मण और मुन्सिफ शायद दोनों अभी तक वृन्दावनमें जीवित हैं। यह घटना कहीं शायद दोनों छपी भी है। सम्भव है, मुझे कुछ हेर-फेरसे सुननेको मिली हो। पर घटना सर्वथा सच्ची है तथा इसमें कुछ भी आश्चर्यक बात नहीं है। यदि मनुष्यका भगवान्पर सच्चा विश्वास हो तो आज भी ऐसी, इससे भी अद्भुत घटना हो सकती है, होती है।

सांसारिक कार्योंमें सहायता देना और अपना प्रेम देना भगवान्के लिये तो दोनों ही समान हैं। असलमें भगवान् भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु हैं; उनसे हम जो चाहें, वही वे करनेको तैयार हैं। हाँ, चाह सच्ची और दृढ़ विश्वासयुक्त होनेसे ही काम होता है।

(९)

चटगाँवमें एक कृष्णानन्दजी साधु हैं। इस समय भी हैं। उनका भगवान् श्रीकृष्णके प्रति सखाका भाव है। उन्होंने पूजा करनेके लिये एक श्रीकृष्णकी पत्थरकी प्रतिमा मँगवायी। मँगानेपर उनको पसंद नहीं आयी, बोले—'तुम गड़बड़ करते हो, यह नहीं चल सकती। मैं तुमको तीन दिनका समय देता हूँ; तो मूर्ति मेरे हृदयमें है, वही मूर्ति मुझे चाहिये। नहीं तो तीन दिन बाद मैं तुम्हें गङ्गामें फेंक दूँगा।' भगवान्को तो विश्वास चाहिये। वे देखते हैं केवल सच्चा विश्वास। उनका विश्वास ठीक था। तीन दिनमें पत्थरकी वही मूर्ति बदलकर इतनी सुन्दर हो गयी कि क्या पूछना है। इस बार गोरखपुरमें उस मूर्तिके फोटोका हमने दर्शन किया था। ऐसा जान पड़ता है मानो जीवित पुरुषका फोटो हो। ऐसे ही आपके ध्यानकी मूर्ति भी विश्वाससे साक्षात् बन सकती है।

(कल्याण वर्ष ३१/१२/१३५७)

******

विश्वासी भक्त श्रीमानसिंहजी

मानसिंहजीका जन्म कुचोली नामक ग्राममें शीशोदवंशीय उच्च राजपूत घरानेमें हुआ था। आपने किसी प्रकारकी डिग्री हासिल नहीं की, न कोई विशेष अध्ययन ही किया। गीताका पाठ आप अवश्य करते। ठाकुरजीकी मूर्तिके दर्शन करते समय उनकी आँखोंमें आँसू उमड़ उठते। वे मन्दिरमें दो क्षणके लिये मस्त हो जाते। बस, उनका एक ध्येय था—सच्चाईसे कार्य करना।

आप मेवाड़ महाराणा श्रीफतहसिंहजीके यहाँ साधारण पदपर थे। महाराणासाहब सच्चाईकी परख करनेवाले थे। मानसिंहजीकी सच्चाईको उन्होंने पहचाना तथा उन्हें एकदम 'गिराई-हाकम' अर्थात् चोरों और डकैतोंको पकड़नेका कार्य सौंप दिया। उस समय मेवाड़में एक अंग्रेज रेजीडेन्ट था। उसने मानसिंहजीको बुलाया तथा उपर्युक्त कार्य सौंपता हुआ वह बोला—'क्या आप इतने पढ़े-लिखे हैं कि आप यह कार्य सँभाल लेंगे?' मानसिंहजीने कहा—'मैं पढ़ा-लिखा कुछ नहीं, पर इतना अवश्य जानता हूँ कि मेवाड़में चोरी नहीं होने दूँगा।' अंग्रेज बहुत खुश हुआ तथा उसने सहर्ष उन्हें वह कार्य सौंप दिया। मानसिंहजीने कुछ ही दिनोंमें अपनी कार्य-कुशलतासे मेवाड़में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर ली।

आपको ईश्वरपर अटल विश्वास था। आप महान्‌से महान् विपत्तिको इष्टदेवका स्मरण करते हुए सहर्ष सह लेते। भगवान् अपने प्रेमी भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करते हैं, यह आपके जीवनमें कुछ घटित घटनाओंसे स्पष्ट होता है।

एक बार आप उदयपुरसे एकलिङ्गजी ताँगेमें पधार रहे थे। साथमें आपका इकलौता छोटा पौत्र था। अकस्मात् ताँगेके दोनों घोड़े चमक उठे। बाग टूट गयी, संचालक उन्हें सम्हालनेमें असमर्थ हो गया, बचनेकी कोई आशा नहीं थी। घोड़े सरपट दौड़ रहे थे। ऐसी अवस्थामें मानसिंहजीको अपने पौत्रके लिये चिन्ता होना स्वाभाविक था। लेकिन वे शान्त रहे और एकलिङ्गजीका नाम जपने लगे।

भगवान् अपने भक्तकी दर्दभरी आवाज सुनते हैं। अकस्मात् एक गाय सड़कपर दौड़ती हुई ताँगेके घोड़ोंके सामने आ गयी।

बाग टूटनेसे जमीनपर घसीटी जा रही थी। भगवान्‌की कृपासे बाग गायके सींगमें उलझ गयी। बागके खिंचनेसे घोड़े तुरंत वहीं रुक गये, तथा संचालकने तुरंत वापस नियन्त्रण कर लिया। इस प्रकार भगवान्‌ने अकस्मात् आपकी आपत्तिका विध्वंस किया।

इसी प्रकारकी एक घटना और सुनिये। एक बार श्रीएकलिङ्गजीके मन्दिरसे कुछ सोनेका जेवर चोरी चला गया। पुलिस उसे प्राप्त करनेमें असमर्थ रही। तब मानसिंहजी इसका पता लगाने एकलिङ्गजी पधारे। कुछ दिन वहाँ ठहरे, लेकिन कोई पता नहीं लगा; आप हताश नहीं हुए। एक दिन दोपहरको बारह बजे इसी विषयमें चिन्ता करते-करते आपको निद्रा आ गयी। स्वप्नमें एकलिङ्गजीके नन्दिकेश्वरने अपने सींगसे जगाया। आप तुरंत बिस्तरपर उठ बैठे। स्वप्नका रहस्य जरा भी नहीं समझ सके। कुछ सोचकर मन्दिरमें दर्शन करने चले गये। ज्यों ही आप एकलिङ्गजीके मन्दिरमें प्रवेश होनेको थे कि उधरसे एक औरतने आकर आपको इशारा करके ठहराया, उसने चोरीका सब समाचार कह सुनाया। जेवरका स्थान भी बता दिया तथा उसी समय मन्दिरका चोरीमें गया हुआ सारा जेवर मिल गया।

******

भगवान्‌की दयालुता पर विश्वास

जब तक मनुष्य परमात्माको नहीं प्राप्त कर लेता, तबतक नित्य नये जालों में फँसता ही रहता है। हम लोग अनन्त जन्मों से यही करते आ रहे हैं। परन्तु यह नहीं मानना चाहिए कि उबरनेकी कोई सूरत नहीं है। तुम्हें भगवान्‌पर श्रद्धा रखनी चाहिए कि वे उबारनेवाले हैं, उनकी शरण लेते ही सारे जाल सदाके लिए कट जाते हैं। घबराओ नहीं, 'अटकी नाव' भगवत्कृपाके – अनुभवरूपी अनुकूल वायुका एक झोंका लगते ही चल पड़ेगी। भगवान्‌की दयालुता पर विश्वास करो। जो दुःख, कष्ट और विपत्तियाँ आ रही हैं, उन्हें भगवत्कृपाका आशीर्वाद समझो और प्रत्येक कष्ट के रूपमें कृष्ण-कन्हैयाके दर्शन कर उन्हें अपनी सारी सत्ता समर्पण करनेकी चेष्टा करो, कष्टोंको कृष्णारूपमें वरण करो, सिर चढ़ाओ, आलिंगन करो। परन्तु उनसे छूटनेके लिए कभी भूलकर भी कुमार्गपर चलने की कायरताके वश मत होओ; लड़ते रहो – मनकी बुरी वृत्तियोंसे – ऐसा करोगे तो श्रीकृष्णाकृपासे तुम्हारी एक दिन अवश्य विजय होगी, तुम सुखी होओगे। शरीर और मनसे प्रसन्न रहने की निरन्तर चेष्टा करते रहो। भगवान्‌के नामका जप सदा करते रहो और उसे उत्तरोत्तर बढ़ाओ।

.........हनुमानप्रसाद पोद्दार

भगवत्कृपासे कठिनाइयोंका अन्त

भगवान्‌के कृपाबलसे जीवनकी सारी कठिनाइयाँ वैसे ही दूर हो जाती हैं जैसे सूर्यके प्रकाशसे अन्धकार।

कठिनाइयाँ सारी मनमें होती हैं, बड़े घने अन्धकारका निर्माण संसारको इसी रूपमें सत्य माननेवाला तुम्हारा विषयासक्त मन ही करता है। भगवान्‌के कृपाबलसे मनकी वह भ्रान्ति मिट जाती है। मलिन मन धुल जाता है। फिर किसी कठिनाईकी कल्पना भी नहीं रहती, सर्वत्र सर्वदा सरलताके साथ सदानन्दमयी प्रभुकृपाकी झाँकी होती रहती है।

फिर जीवन-मरण, संयोग-वियोग, लाभ-हानि, मान-अपमान, स्तुति-निन्दा, जय-पराजयके कोई भी द्वन्द्व किसी प्रकारका असर नहीं करते; सभी कृपामयकी कृपा-लीलाके मधुर दृश्य बन जाते हैं।

जब तुम अपनेको भाग्यहीन, दुर्दशाग्रस्त, दुःखी, निराश्रय, निराश, असहाय मानते हो, तबतक तुमने भगवान्‌के परम कृपाबलको नहीं अपनाया है। भगवान्‌के कृपाबलका आश्रय लेते ही भाग्य चमक उठता है, दुःखके बादल तितर-बितर हो जाते हैं, परम आश्रय पाकर चित्त उल्लसित हो उठता है, 'निराश और असहाय' माननेकी वृत्ति ही नष्ट हो जाती है। जिसको भगवत्कृपाका आश्रय हो, उसमें निराशा और असहायताकी भावना क्यों रहने लगी?

हनुमानप्रसाद पोद्दार

'रस–सिद्ध संत श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी जीवन झाँकी'

भगवान्‌के विशेष कार्य हेतु १७ सितम्बर १८९२ ई०, दिन शनिवारको आपका जन्म शिलांगमें हुआ। कुल देवता श्रीहनुमानजीकी कृपासे जन्म होनेके कारण आपका नाम 'हनुमानप्रसाद' पड़ा। युवावस्थामें देशसेवा–समाजसेवाकी प्रवृत्ति प्रबल होनेके कारण स्वदेशी आन्दोलनमें शुद्ध खादी प्रयोगका व्रत ले लिया। आपके क्रान्तिकारी गतिविधियोंमें सक्रिय भाग लेनेके कारण शिमलापालमें २१ माहतक नजरबन्द किया गया। बंगालके क्रांतिकारियों अरविन्द घोष आदिसे आपका निकट सम्पर्क हुआ। १९१८में आप बम्बई आ गये। वहाँ लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, महात्मा गाँधी, पं० मदनमोहन मालवीय, संगीताचार्य विष्णु दिगम्बरजीसे घनिष्ठ सम्पर्क हुआ। सभीके द्वारा प्रेमपूर्वक आपको भाई सम्बोधन करनेके कारण आपका उपनाम 'भाईजी' पड़ गया।

भगवन्नामनिष्ठाके फलस्वरूप वनवेषधारी भगवान् सीतारामके दर्शन हुये तदनन्तर पारसी प्रेतसे साक्षात् वार्तालापके परवर्तीकालमें अनेक दिव्यलोकोंसे सम्पर्क स्थापित किये। सुप्रसिद्ध हिन्दी मासिक पत्रिका 'कल्याण'के १९२६ ई०में प्रकाशन प्रारम्भ होनेपर उसके सम्पादनका गुरुतर दायित्व आपने सफलतापूर्वक निर्वाह किया और अपने भगीरथ प्रयत्नोंसे उसे शिखर पर पहुँचाया।

श्रीभाईजीमें अपने यश प्रचारका लेश भी नहीं था इसी कारण उन्होंने 'रायबहादुर', 'सर' एवं 'भारत–रत्न' जैसी राजकीय उपाधियोंके प्रस्तावको नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा उनकी अमूल्य हिन्दी–सेवाके सम्मानार्थ प्रदत्त 'साहित्य–वाचस्पति'की उपाधिका अपने नामके साथ कभी प्रयोग नहीं किया। हालाँकि भाईजीकी शिक्षा पारिवारिक, पारम्परिक ही रही लेकिन यह चमत्कार है कि कई भाषाओंपर उनका असाधारण अधिकार था। उनके द्वारा हिन्दी साहित्यको मौलिक शब्दोंका नया भण्डार मिला। उनकी गद्य–पद्यात्मक रचनायें अपने विषयकी मीलकी पत्थर है। पोद्दारजीके प्रमुख काव्य 'पद–रत्नाकर'की कुल पंक्तियाँ १९६७० है जो गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा विरचित श्रीरामचरितमानस, विनय पत्रिका और गीतावलीकी कुल पंक्तियों क्रमशः १२५८२, ३२२९ और ३४०२ के योग १९२०५ से अधिक है। इसके अतिरिक्त उनके गद्य साहित्यका विपुल भण्डार है। इनकी ८० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिसमें 'राधा–माधव–चिन्तन' प्रमुख है। उनके द्वारा सम्पादित 'कल्याण'के ४४ विशेषांक अपने विषयके विश्वकोष हैं। हमारे आर्ष ग्रन्थोंको विपुल मात्रामें प्रकाशित करके विश्वके कोने–कोनेमें पहुँचा दिया जिससे वे सुदीर्घ कालके लिये सुरक्षित हो गये। हिन्दी और सनातनधर्मकी उनकी सेवा युगोंतक लोगोंके लिये प्रेरणाश्रोत रहेगी।

भगवद्दर्शनकी प्रबलोत्कण्ठा होनेपर १९२७ ई० में भगवान् विष्णुने दर्शन

देकर उन्हे प्रवृत्तिमार्गमें रहते हुये भगवद्भक्ति तथा भगवन्नाम प्रचारका आदेश दिया। क्रमशः दिव्यलोकोंसे सम्पर्कके साथ ही अलक्षित रहकर विश्वभरके आध्यात्मिक गतिविधियोंके नियामक एवं संचालक दिव्य संत–मण्डलमें अन्तर्निवेश हो गया। कृपाशक्तिपर पूर्णतया निर्भर भक्तपर रीझकर भगवान्‌ने समय–समयपर उन्हे श्रीराम, शिव, शक्ति, गीतावक्ता श्रीकृष्ण, श्रीव्रजराजकुमार एवं श्रीराधाकृष्ण दिव्य युगलरूपमें दर्शन देकर तथा अपने स्वरूप तत्त्वका बोध कराकर कृतार्थ किया। १९३६ ई० में गीतावाटिकामें प्रेमभक्तिके आचार्य देवर्षि नारद और महर्षि अंगिरासे साक्षात्कार हुआ और उनसे प्रेमोपदेशकी प्राप्ति हुई। अपने इष्ट आराध्य रसराज श्रीकृष्ण और महाभावरूपा श्रीराधा किशोरीकी भाव साधना, स्वरूप चिन्तनसे उनकी एकाकार वृत्ति इष्टके साथ प्रगाढ होती गयी और वे रसराजके रस–सिन्धुमें निमग्न रहने लगे। भागवती स्थितिमें स्थित होनेसे उनके स्थूल कलेवरमें श्रीराधाकृष्ण युगल नित्य अवस्थित रहकर उनकी सम्पूर्ण चेष्टाओंका नियन्त्रण–संचालन करने लगे। सनकादि ऋषियोंसे उनके वार्तालाप अब छिपी बात नहीं है।

भगवत्प्रेरणासे भाईजीने अपने जीवनके बाह्यरूपको अत्यन्त साधारण रखते हुये इस स्थितिमें सबके बीच ७८ वर्ष रहे। कुछ श्रद्धालु प्रेमीजनोंको छोड़कर उनके वास्तविक स्वरूपकी कोई कल्पना भी नहीं कर सका। जो उनके निकट आये वे अपने भावानुसार इसकी अनुभूति करते रहे। किसीने उन्हे विद्वान देखा, किसीने सेवा–परायण, किसीने आत्मीय स्नेहदाता, किसीने सुयोग्य सम्पादक, किसीने सच्चा सन्त, किसीने उच्चकोटिका व्रजप्रेमी और किसीको राधा हृदयकी झाँकी उनके अन्दर मिली। किसी संतकी वास्तविक स्थितिका अनुमान लगाना बड़ा कठिन है तथापि भाईजी निर्विवाद रूपसे उस कोटिके सन्त थे जिनके लिये नारदजीने कहा है **'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्'**—भगवान् और उनके भक्तोंमें भेदका अभाव होता है।

हमारी भावी पीढ़ियोंको यह विश्वास करनेमें कठिनता होगी कि बीसवी सदीके आस्थाहीन युगमें जो कार्य कई संस्थायें मिलकर नहीं कर सकतीं वह कल्पनातीत कार्य एक भाईजीसे कैसे सम्भव हुआ। राधाष्टमी महोत्सवका प्रवर्तन और रसाद्वैत—राधाकृष्णके प्रति नयी दिशा एवं मौलिक चिन्तन इस युगको उनकी महान देन है। उनके द्वारा कितने लोग कल्याण पथपर अग्रसर हुये, वे परमधामके अधिकारी बने इसकी गणना सम्भव नहीं है। महाभाव–रसराजके लीलासिन्धुमें सर्वदा निमज्जन करते हुये २२ मार्च १९७१ को इस धराधामसे अपनी लीलाका संवरण कर लिये।

'वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्'

नोट :—विस्तृत जानकारीके लिये गीता–वाटिका प्रकाशन, गोरखपुरसे प्रकाशित 'श्रीभाईजी—एक अलौकिक विभूति' पुस्तक अवश्य पढ़े।

श्रीमद्‌भागवत–कथा

१ से ४४ श्रीकृष्ण बाललीला कैसेट सेट

१ से ११ वेणुगीत प्रवचन माला कैसेट सेट

१ से १० रासपंचाध्यायी प्रवचनमाला

अन्य प्रवचन

१. भागवत्कृपा का आश्रय लीजिये
२. प्रेमका सच्चा स्वरूप
३. शरणगति और प्रेमके भाव
४. गोपीप्रेमका स्वरूप
५. भगवान्‌की गोद सबके लिये सुलभ
६. साधकका लक्ष्य और मार्ग
७. भगवत्कृपाकी अनूठी व्याख्या
८. प्रेमके भावोंकी अनोखी व्याख्या
९. आँखोंमें श्याम समा जायें
१०. वैराग्य और प्रेमका रिश्ता
११. अपनी साधनाके अनुकूल संग करें
१२. "भगवान् हमारी सारी जिम्मेदारी लेनेको तैयार
१३. शान्ति कैसे मिले ?
१४. भगवत् अनुराग और विषयानुराग
१५. रस और आनन्दमें चूर हो जावें
१६. हमारी चिन्ता कैसे दूर हो ?
१७. भगवान्‌पर विश्वास कर, उनके हो जावें
१८. व्यवहारकी बातें
१९. प्रेपी बननेके अमोघ साधन
२०. भगवन्नामकी अनुपम महिमा
२१. शरणगति–सरल साधन
२२. साधनकी उपयोगी बातें
२३. असली प्रेम त्यागमें ही है सुंदर व्याख्या
२४. साधनाके विघ्न: भय–प्रलोभन
२५. अन्तरंगता का स्वरूप और साधना
२६. चेतावनी–बहुत गई थोड़ी रही
२७. भोगोंसे मन हटाकर भगवान्‌में लगाओ
२८. हमारा काम तुरंत कैसे बनें
२९. भक्तिके पाँच रस सुंदर व्याख्या
३०. भगवान्‌की प्रेम परवशता
३१. भगवत्प्राप्तिका सुख
३२. दिन भर कार्य भगवान्‌की सेवा–भावसे करें
३३. इन्द्रियोंका संयम एवं परहित
३४. मानव जीवनके लक्ष्यकी प्राप्ति
३६. श्रीकृष्ण–जनमाष्टमी प्रवचन सं० २०१७ एवं श्रीगोस्वामीजी द्वारा पदगायन
३७. जन्माष्टमीके दूसरे दिनका प्रवचन २०१७
३८. सारे कर्मोसे भगवान् की पूजा करें
४१. अपने सदाचरणों द्वारा दूसरोंमें सद–भावों का उन्नयन
४२. श्रीकृष्णके वन भोजन लीलाका ध्यान
४३. श्रीराधाष्टमी प्रवचन सुबह सं० २०१७
४४. श्रीराधाष्टमी प्रवचन शाम सं० २०१७
४५. भगवान् हमारे अपने हैं
४६ए. असली प्रेमकी पहचान
४६बी. निरन्तर भगवत्स्मृति कैसे हो सकती है
४७ए. भजन और भगवान्‌की आवश्यकता
४७बी. अच्छे व्यवहारकी महत्ता
४८. शरद पूर्णिमापर प्रवचन
४९. शरद पूर्णिमापर पू० राधाबाबा का संदेश
५०. प्रेम मार्गमें बढ़नेके सहायक सूत्र
५१. सुदामाकी प्रेम कथा एवं अपनेमें दैन्यता
५२. कल ही निष्पाप कैसे हो
५३. शान्ति मिलने के उपाय
५४. श्रीराधाष्टमीका षष्टी महोत्सव
५५. श्रीराधाष्टमीके दिन का प्रवचन
५६. श्रीराधाष्टमीके बाद का प्रवचन
५७. भगवद्विश्वासकी चमत्कारी घटनाएँ
५८. साधनाको साध्यसे अधिक महत्त्व दें
५९. जीवनकी सच्ची सफलता किसमें है
६०. बुराईसे बचने के उपाय

● ये सभी कैसेट बिक्रीके लिये हमारे यहाँ उपलब्ध हैं। विस्तृत सूची पत्र भी यहाँसे प्राप्त किये जा सकते हैं। भजन एवं पदोंके कैसेट भी उपलब्ध हैं।

भाईजी पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार 'कल्याण' (गीताप्रेस) के आदि-सम्पादक के चुने हुए भावपूर्ण, प्रवचनों एवं पत्रों की कैसेट सूची।

[illegible]

हमारे प्रकाशन

१.	श्रीभाईजी—एक अलौकिक विभूति *(पू. श्रीभाईजी एवं श्रीसेठजीकी संक्षिप्त जीवनी) संयोजन श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारी*		१०.००
२.	भाईजी चरितामृत *(पू० भाईजीके शब्दोंमें उनके जीवन प्रसंग)* *(संयोजन श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारी)*		५०.००
३.	सरस पत्र	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
४.	व्रजभावकी उपासना	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	२५.००
५.	परमार्थकी पगडंडियाँ	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
६.	सत्संगवाटिकाके बिखरे सुमन	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
७.	वेणुगीत	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३५.००
८.	समाज किस ओर जा रहा है	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
९.	प्रभुको आत्मसमर्पण	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
१०.	भगवत्कृपा	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	५.००
११.	श्रीराधाष्टमी जन्म-व्रत महोत्सव	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	५.००
१२.	शान्तिकी सरिता	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	२०.००
१३.	रासपञ्चाध्यायी	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३५.००
१४.	पारमार्थिक और लौकिक सफलताके सरल उपाय	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	२५.००
१५.	आस्तिकताकी आधार-शिलाएँ	श्रीराधाबाबा	३५.००
१६.	महाभागा व्रजदेवियाँ	श्रीराधाबाबा	३०.००
१७.	केलि-कुञ्ज	श्रीराधाबाबा	७०.००

हमारे प्रकाशन एवं कैसेट प्राप्तिके अन्य स्थान

कलकत्ता :— श्रीसुशीलकुमार मूँधड़ा, फोन० ४६४०६००, ४६६२६४१
८, इण्डिया एक्सचेंज प्लेस, (८वाँ तल्ला)

वाराणसी :— श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार स्मृति सेवा ट्रस्ट, दुर्गाकुण्ड रोड

मुंबई :- भारतीय ग्रामोद्योग वस्त्र भण्डार, १८७, दादीसेठ अगयारी लेन-२

दिल्ली :— श्रीमोहनलाल दुजारी फोन : ६४३८९०५, ६४६५२८४
५०४, स्काईलार्क, ६० नेहरू प्लेस, दिल्ली-१९

गाजियाबाद :— श्रीशिवकुमार दुजारी फो० :४७०३११३, ४७०२८६८
के० आई० १५५, कविनगर, गाजियाबाद-२

वृन्दावन :— श्रीविमल प्रकाश रहेजा, ४९, कालिन्दी कुञ्ज,
बाँके बिहारी कॉलोनी (हरि निकुंजके पास) वृन्दावन

बीकानेर :— श्रीमगनलाल गाँधी, नाहट्टा मोहल्ला

पुस्तक विक्रेताओंके लिये सूचना

हमारे यहाँ प्रकाशित पुस्तकोंका कम-से-कम रु० १००० मूल्यकी पुस्तकोंके आर्डरपर १५ प्रतिशत डिस्काउन्ट देनेकी व्यवस्था है एवं रु० २००० एवं उससे अधिक मूल्यकी पुस्तकोंके आर्डर पर २० प्रतिशत डिस्काउन्ट देनेकी व्यवस्था है पैकिंग खर्च तथा रेलभाड़ा भी बाद दिया जाता है।

गीतावाटिका प्रकाशन

पो०—गीतावाटिका, गोरखपुर—२७३००६

फोन : (०५५१) २८४७४२, २८४५८२, २८२१८२

E-Mail:- rasendu@vsnl.com

हमारे प्रकाशन

१. श्रीभाईजी—एक अलौकिक विभूति (पू० श्रीभाईजी एवं श्रीसेठजीकी संक्षिप्त जीवनी) संयोजन श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारी		६०.००
२. भाईजी चरितामृत (संयोजन श्रीश्यामसुन्दजी दुजारी)	(पू० भाईजीके शब्दोंमें उनके जीवन प्रसंग)	५०.००
३. सरस पत्र	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
४. व्रजभावकी उपासना	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	२५.००
५. परमार्थकी पगडंडियाँ	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
६. सत्संगवाटिकाके बिखरे सुमन	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
७. वेणुगीत	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३५.००
८. समाज किस ओर जा रहा है	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
९. प्रभुको आत्मसमर्पण	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
१०. भगवत्कृपा	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	५.००
११. श्रीराधाष्टमी जन्म—व्रत महोत्सव	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	५.००
१२. शान्तिकी सरिता	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	२०.००
१३. रासपञ्चाध्यायी	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३५.००
१४. पारमार्थिक और लौकिक सफलताके सरल उपाय	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	२५.००
१५. क्या, क्यों और कैसे?	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	३०.००
१६. साधकोंके पत्र		३०.००
१७. भगवन्नाम और प्रार्थनाके चमत्कार		३०.००
१८. रोगोंके सरल उपचार		३५.००
१९. मेरी अतुल सम्पत्ति		
२०. श्रीशिव—चिन्तन		२५.००
२१. आस्तिकताकी आधार—शिलाएँ	श्रीराधा बाबा	३५.००
२२. महाभागा व्रजदेवियाँ	श्रीराधाबाबा	३०.००
२३. केलि—कुञ्ज	श्रीराधाबाबा	७०.००
२४. परमार्थका सरगम	(श्रीराधाबाबा)	३०.००

भाईजी पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार "कल्याण" (गीताप्रेस) के आदि–सम्पादक के चुने हुए भावपूर्ण, प्रवचनों एवं पदों की कैसेट सूची।

श्रीमद्‌भागवत–कथा

१ से ४४ श्रीकृष्ण बाललीला कैसेट सेट

१ से ११ वेणुगीत प्रवचन माला कैसेट सेट

१ से १० रासपंचाध्यायी प्रवचनमाला

अन्य प्रवचन

१. भागवत्कृपा का आश्रय लीजिये
२. प्रेमका सच्चा स्वरूप
३. शरणगति और प्रेमके भाव
४. गोपीप्रेमका स्वरूप
५. भगवान्‌की गोद सबके लिये सुलभ
६. साधकका लक्ष्य और मार्ग
७. भगवत्कृपाकी अनूठी व्याख्या
८. प्रेमके भावोंकी अनोखी व्याख्या
९. आँखोंमें श्याम समा जायें
१०. वैराग्य और प्रेमका रिश्ता
११. अपनी साधनाके अनुकूल संग करें
१२. 'भगवान् हमारी सारी जिम्मेदारी लेनेको तैयार
१३. शान्ति कैसे मिले ?
१४. भगवत् अनुराग और विषयानुराग
१५. रस और आनन्दमें चूर हो जावें
१६. हमारी चिन्ता कैसे दूर हो ?
१७. भगवान्‌पर विश्वास कर, उनके हो जावें
१८. व्यवहारकी बातें
१९. प्रेमी बननेके अमोघ साधन
२०. भगवन्नामकी अनुपम महिमा
२१. शरणगति–सरल साधन
२२. साधनकी उपयोगी बातें
२३. असली प्रेम त्यागमें ही है सुंदर व्याख्या
२४. साधनाके विघ्न: भय–प्रलोभन
२५. अन्तरंगता का स्वरूप और साधना
२६. चेतावनी–बहुत गई थोड़ी रही
२७. भोगोंसे मन हटाकर भगवान्‌में लगाओ
२८. हमारा काम तुरंत कैसे बनें
२९. भक्तिके पाँच रस सुंदर व्याख्या
३०. भगवान्‌की प्रेम परवशता
३१. भगवत्प्राप्तिका सुख
३२. दिन भर कार्य भगवान्‌की सेवा–भावसे करें
३३. इन्द्रियोंका संयम एवं परहित
३४. मानव जीवनके लक्ष्यकी प्राप्ति
३६. श्रीकृष्ण–जनमाष्टमी प्रवचन सं० २०१७ एवं श्रीगोस्वामीजी द्वारा पदगायन
३७. जन्माष्टमीके दूसरे दिनका प्रवचन २०१७
३८. सारे कर्मोंसे भगवान् की पूजा करें
४१. अपने सदाचरणो द्वारा दूसरोंमें सद–भावों का उन्नयन
४२. श्रीकृष्णके वन भोजन लीलाका ध्यान
४३. श्रीराधाष्टमी प्रवचन सुबह सं० २०१७
४४. श्रीराधाष्टमी प्रवचन शाम सं० २०१७
४५. भगवान् हमारे अपने हैं
४६ए. असली प्रेमकी पहचान
४६बी. निरन्तर भगवत्स्मृति कैसे हो सकती है
४७ए. भजन और भगवान्‌की आवश्यकता
४७बी. अच्छे व्यवहारकी महत्ता
४८. शरद पूर्णिमापर प्रवचन
४९. शरद पूर्णिमापर पू० राधाबाबा का संदेश
५०. प्रेम मार्गमें बढ़नेके सहायक सूत्र
५१. सुदामाकी प्रेम कथा एवं अपनेमें दैन्यता
५२. कल ही निष्पाप कैसे हो
५३. शान्ति मिलने के उपाय
५४. श्रीराधाष्टमीका षष्टी महोत्सव
५५. श्रीराधाष्टमीके दिन का प्रवचन
५६. श्रीराधाष्टमीके बाद का प्रवचन
५७. भगवदविश्वासकी चमत्कारी घटनाएँ
५८. साधनाको साध्यसे अधिक महत्त्व दें
५९. जीवनकी सच्ची सफलता किसमें है
६०. बुराईसे बचने के उपाय